हिन्दी साहित्य को
हिन्दीतर प्रदेशों की देन

हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेशों की देन

सम्पादक
डॉ० मलिक मोहम्मद, डी० लिट्०
आचार्य और अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कालिकट विश्वविद्यालय

भारत सरकार द्वारा नियन्त्रित मूल्य
पर प्रदत्त किए कागज पर मुद्रित।

मूल्य तीस रुपये (30 00)

पहला सस्करण 1977
HINDI SAHITYA KO HINDITAR PRADESHON KI DEN (Collection of essays), edited by Dr Malik Mohammad

भारत-भारती के वरद पुत्र
भारतीय संस्कृति के सशक्त व्याख्याता
तथा
अहिन्दी-भाषी हिन्दी-सेवियों में अग्रणी
माननीय डॉ० कर्णसिंह जी को
सादर समर्पित

निवेदन

राष्ट्रवाणी के रूप मे हिन्दी का विकास अधिकाशत उन चिन्तको, मनीषियो और भविष्य द्रष्टाओ द्वारा किया गया जो अधिकतर हिन्दीतर प्रदेशो के थे। किसी भी भाषा की राष्ट्रभाषा के रूप मे कल्पना तभी रूपाकार हो सकती है, जबकि उसके बोलने-समझनेवाले सभी प्रान्तो क्षेत्रो मे विद्यमान हो और उस भाषा के साहित्य-समुद्र मे सभी प्रान्तीय भाषाओ की नदिया जल अर्पित करती हो। भारतीय भाषाओ मे हिन्दी का एक विशिष्ट स्थान है। आज हिन्दी केवल हिन्दी-प्रदेश की भाषा नही है, पूरे देश की भाषा है। हिन्दी की प्रगति और विकास मे और उसको राष्ट्रवाणी का स्वरूप प्रदान करने मे अहिन्दी-भाषी हिन्दी-सेवियो का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दी राष्ट्रीय एकता की बडी सशक्त कडी रही है और आगे भी रहेगी। इसका उदय और विकास राष्ट्रीय जागरण के समानान्तर इस कारण हुआ कि यह एक जोडनेवाली भाषा है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओ की तुलना मे हिन्दी सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करती रही है और सभी क्षेत्रो, धर्मों, वर्गों, जातियो एव श्रेणियो के लोगो ने इसे अपनाया और अर्घ्य-दान दिया है। इसीलिए यह किसी सम्प्रदाय-विशेष अथवा प्रदेश विशेष की भाषा न होकर सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा है और इसपर सबका समान अधिकार है। भारतीय सामासिक संस्कृति की जितनी स्पष्ट अभिव्यक्ति हिन्दी भाषा और साहित्य के माध्यम से हुई है, उतनी किसी भी दूसरी भारतीय भाषा के माध्यम से नही। इसलिए भारतीय सविधान मे हिन्दी की स्वीकृति भारतीय सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति की सशक्त वाहिका के रूप मे हुई है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रारम्भ से ही हिन्दी का विकास एक अखिल भारतीय भाषा-माध्यम के रूप मे हुआ है। इसकी सवृद्धि मे हिन्दीतर प्रदेशो के विभिन्न साहित्यकारो, लेखको और राष्ट्रीय नेताओ ने बहुत बडा योगदान दिया है। आज हिन्दी का जो विपुल साहित्य हमे उपलब्ध है, उसके निर्माण मे अनगिनत अहिन्दी-भाषी हिन्दी साहित्यकारो ने अमूल्य कार्य किया है। इस बात का प्रमाण मिलता है कि हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओ के प्रवर्तन मे प्राचीन काल से वर्तमान युग तक अनेकानेक अहिन्दी-भाषी रचनाकारो ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। किन्तु यह खेद की बात है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उन सब अहिन्दी भाषी महान् हिन्दी-सेवियो का विस्तृत परिचय ही क्या, उल्लेख तक नही हो पाया है। ये सब सर्वथा उपेक्षित ही रह गए हैं। वास्तव मे यह उन रचनाकारो के प्रति घोर

विषय-सूची

1

हिन्दी की प्रगति एवं विकास में हिन्दीतर प्रदेशों की देन

डा० मलिक मोहम्मद

सभ्यता का विकास भाषागत विकास का पर्याय होता है। सभ्यता की यह सांस्कृतिक परिणति अपनी अभिव्यक्ति के लिए पारिस्थितिक परिवेशो के अधीन एक ऐसी भाषा का विधान करती है जो उसकी समग्रता की सशक्त वाहिका बन सके। इस रूप मे समान संस्कृति और समान भाषा की संरचनाए एक दूसरी से अपरिहार्य रूप मे एकान्वित हो जाती हैं।

भारतीय संस्कृति का निर्माण और विकास एक विशिष्ट भौगोलिक एव ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे हुआ है। छिट-पुट प्रादेशिक विभेदों के होते हुए भी कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ स कामरूप तक भारतीय संस्कृति की आत्मा एक रही है और इसीके अनुरूप अखिल भारतीय भाषा का निर्माण भी स्वत होता आया है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काल तक राष्ट्रभाषा के विकास की यही परपरा अक्षुण्ण रही। ईसा की दसवी शताब्दी के आसपास अनेक कारणो से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास क्रम परिलक्षित होता है। किन्तु इस काल मे भी सतो, साधुओ, महात्माओं और पर्यटको के योगदान से व्रजभाषा ने सपर्क-भाषा के रूप मे बहुत कुछ राष्ट्र-वाणी की भूमिका अदा की। महाराष्ट्र के ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम आदि, गुजरात के नरसी मेहता, दादू दयाल, गौरी बाई और सत प्राणनाथ; पजाब के गुरु नानक, गुरु अमरसिंह और गुरु गोविन्दसिंह, कश्मीर के केशव भट्ट और श्रीलाल भाडू, असम के शकरदेव, माधवदेव आदि, बगाल के चैतन्य महाप्रभु, ज्ञानदास और गोविन्ददास, उड़ीसा के राय रामानन्द भट्टनायक, राजकवि प्रताप रुद्रदेव, जगन्नाथदास, आनन्ददास, उद्धवदास आदि असख्य ज्ञात-अज्ञात कवियो ने व्रजभाषा मे रचना करके इसके अखिल भारतीय स्वरूप के निर्माण मे अविस्मरणीय योगदान दिया। राष्ट्र के पूर्वांचल म तो व्रजभाषा की एक 'बोली' के रूप मे 'ब्रजबुलि' का प्रचलन होता रहा और असम, बगाल तथा उड़ीसा मे इस भाषा मे प्रभूत साहित्य का सृजन भी हुआ। भक्ति के साथ-साथ भक्ति-आन्दोलन के प्रसार के क्रम मे राष्ट्र-वाणी के निर्माण का सर्वाधिक कार्य दक्षिण के आचार्यों ने सपन्न किया है। कर्नाटक के मध्वाचार्य, तमिलनाडु के रामानन्द और आन्ध्र के वल्लभाचार्य के द्वारा किये गये कार्य स्वत प्रमाणस्वरूप है। केरल मे हिन्दी 'गुसाई भाषा' के नाम से जानी जाती थी। भक्ति-आन्दोलन के दिनो मे दक्षिण प्रदेशो मे इसका बड़ा सम्मान भी था। इसी राष्ट्रीय लक्ष्य के अधीन व्रजभाषा मराठा-दरबार की सहवर्ती भाषा बनी थी। वहा केवल व्रजभाषा के कवियो को स्थान ही नही प्रदान किया गया वरन् छत्रपति

शिवाजी, शंभाजी, साहूजी प्रभृति राजाओं ने स्वयं इसी भाषा में रचना करके इसके राष्ट्रीय स्वरूप का संवर्द्धन किया है।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भाषा के अधीर ब्रजभाषा के पश्चात् खड़ी बोली हिन्दी का विकास भी अनिवार्य उपक्रम बन गया। जिस प्रकार संस्कृत से लेकर ब्रजभाषा तक का भाषा-निर्माण और विकास देश के सभी क्षेत्रों और प्रदेशों की अविरत साधना से सुसम्पन्न हुआ है, उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी भाषा का भी हुआ है और बिना किसी व्यतिक्रम के आगे बढ़ता जा रहा है। इसी संदर्भ में यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि हिन्दी केवल हिन्दी प्रदेश की ही भाषा नहीं, संपूर्ण राष्ट्र की भाषा रही है और इसका स्वरूप निर्माण तथा विकास इसी राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हुआ है।

वस्तुतः अखिल भारतीय संपर्क भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी का ग्रहण राष्ट्रीय और सांस्कृतिक प्रयोजनों से ही हुआ है। इसके दो प्रारंभिक स्तंभ परिलक्षित होते हैं—अमीर खुसरो और गुरु गोरखनाथ। अमीर खुसरो भारतीय सामासिक संस्कृति के अग्रदूत थे। उन्होंने फारसी, संस्कृत और हिन्दी तीनों में रचनाएं प्रस्तुत कीं। भारतीय जनमानस में अपना आत्मीय सम्बन्ध बनाये रखने के लिए उन्होंने सामान्य जन के स्तर के अनुरूप जिस मनोरंजनात्मक साहित्य का प्रणयन किया, वह अधिकांशतः खड़ी बोली हिन्दी में था। हिन्दी के वर्चस्व को उन्होंने भलीभांति पहचाना और इसके लिए हिन्दी भाषा और साहित्य दोनों ही उनके चिरऋणी रहेंगे। गुरु गोरखनाथ का योगदान थोड़े भिन्न आधारफलक पर उद्भूत हुआ है। गोरखनाथ का काल सांस्कृतिक संघर्ष का काल था। आन्तरिक असंगतियां और अन्तर्विरोधों की शृंखलाएं बाहरी झोंकों से सामने झनझना उठी थीं। अतः युग को एक ऐसे युगपुरुष की प्रतीक्षा थी जो उसकी मांग का समुचित समाधान प्रस्तुत कर सके। गोरखनाथ ने इसी मांग के अनुरूप भूमिका अदा की और भारत भूमि का प्रत्येक कोना उनकी युग-वाणी से निनादित हो उठा। उत्तर में पंजाब और कश्मीर, दक्षिण में कर्णाटक, तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम में राजस्थान और पूरब में गौड़ देश तक निर्मित गोरखपंथी मठों और उनके सम्बन्ध में प्रचारित दन्तकथाओं के संदर्भ में यह कहना कठिन हो गया है कि वे वास्तव में किस प्रदेश के थे। दक्षिण के अनेक गोरखपंथी मठों में खड़ी बोली हिन्दी की रचनाएं खोज निकाली गई हैं। खड़ी बोली हिन्दी के अखिल भारतीय स्वरूप की कल्पना संभवतः उन्होंने बहुत पहले ही कर ली थी और शायद इसीलिए उनकी वाणी ने इसी का परिधान ग्रहण किया था। वैसे, इस दिशा में अभी काफी अनुसंधान की आवश्यकता है। यहां पर गुरु गोरखनाथ की हिन्दी सेवा का उल्लेख, मात्र हिन्दी के अखिल भारतीय रूप-ग्रहण की पूर्वसंध्या का दिग्दर्शन कराने के निमित्त ही किया गया है।

हिन्दी भाषा के राष्ट्रीय स्वरूप का अगला सशक्त चरण 'दक्खिनी' के रूप में इसके ठोस आकार ग्रहण करने का है। दक्खिनी से पूर्व आत्माभिव्यक्ति की भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी की कोई अविच्छिन्न परंपरा नहीं दिखाई देती। अतः खुसरो और गुरु गोरखनाथ की हिन्दी सेवाएं मात्र पूर्वसंध्या के समान ही हैं। दक्खिनी का विकास किन कारणों से हुआ, यहां इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं। इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि इसका रूप-संस्कार और विकास राष्ट्रीय उद्देश्य का ही अनिवार्य प्रतिफल था। हिन्दी को विन्ध्याचल के दक्षिण में गांव-गांव

और घर-घर तक पहुंचाने का श्रेय दक्खिनी को ही है। यहां के सहस्रों परिवारों में इसका मातृभाषा के रूप में प्रयोग होता है और इन परिवारों के सपर्क में अनेक ग्रामों लोगों तक इसकी व्याप्ति है। दक्षिणात्य कर्ण कुहरों के लिए यदि हिन्दी बिल्कुल अजनबी नहीं है तो इसका कारण यहां दक्खिनी का प्रचलन ही है। हिन्दी के अखिल भारतीय स्वरूप की कल्पना के समय इस तथ्य को नजर-अन्दाज करना भारी भूल होगी।

जिस प्रकार राष्ट्र की परिकल्पना धर्म, जाति, प्रदेश और मत-वैभिन्य की परिसीमाओं से परे होती है, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा की परिकल्पना भी। हिन्दी का अखिल भारतीय स्वरूप अन्यान्य सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से स्वतः निर्मित हुआ है और इसके निर्माण में सभी धर्मों, जातियों और सांस्कृतिक विचार-धाराओं के अनुयायियों का समान योगदान रहा है। हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि सभी ने इसमें अपना प्राणान्वयन किया। अमीर खुसरो, मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मंझन, जायसी, गवासी, कबीर, दादू, रज्जब, रहीम, रसखान जैसे मुसलमान कवि और गुरुनानक, गुरु अंगद और गुरु गोविन्दसिंह जैसे सिख कवि इसी परंपरा के जाज्वल्य-मान नक्षत्र हैं। इसीलिए भारतीय सामासिक संस्कृति की सशक्त अभिव्यक्ति हिन्दी में ही व्यापक रूप से हुई है। संत और सूफी साहित्य इसके प्रमाण हैं। दक्खिनी का साहित्य भी इसी तथ्य का साक्षी है। लेकिन आश्चर्य तब होता है जब हिन्दी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ एवं समीक्षक इसी तथ्य की अनदेखी करते हैं। दक्खिनी को हिन्दी की परंपरा में जो स्थान मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। एक तटस्थ विचारक यह समझने के लिए मजबूर हो जाता है कि चूंकि दक्खिनी के अधिकतर रचनाकार मुसलमान रहे हैं, अतः उन्हें और उनकी रचनाओं को साभिप्राय हिन्दी से बाहर रखने का अनुचित प्रयत्न हुआ है। वास्तव में यह हिन्दी के व्यापक और सामासिक स्वरूप की मान्यता के अनुरूप नहीं है।

प्रारंभ से ही हिन्दी केवल साहित्य की भाषा ही नहीं, बल्कि जनता की और जन-संपर्क की भाषा रही है। अमीर खुसरो और गुरु गोरखनाथ ने इसकी इसी शक्ति को पहचानकर इसे अपनाया था। दक्खिनी के मनस्वियों ने भी इसके इसी रूप की सुरक्षा में अपने कर्तृत्व की दिशा निर्धारित की। महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा के रूप में जिस हिन्दुस्तानी की कल्पना की थी, वह भी इसीके अनुरूप थी। साहित्य के क्षेत्र से बाहर जिस हिन्दी का व्यवहार हो रहा है, वह भी इसी मत की पुष्टि करता है। हिन्दी का यह रूप बहुत-कुछ दक्खिनी का ही रूप है। दक्खिनी वास्तव में हिन्दी के उस रूप का नमूना है जिसकी परिकल्पना संविधान में की गई है। अन्य भारतीय भाषाओं के निकट संपर्क में आने पर हिन्दी की शब्दावली, उसकी संरचना और शैली का जो रूप बनेगा, उसकी बानगी हमें दक्खिनी में मिल जाती है।

राष्ट्रवाणी के बिना राष्ट्र मूक होता है। इसीलिए राष्ट्रीय जागरण राष्ट्र-वाणी के उत्थान का भी पर्याय बना है। राष्ट्रवाणी के रूप में हिन्दी का विकास अधिकांशतः उन चिन्तकों, मनीषियों और भविष्य-द्रष्टाओं द्वारा किया गया जो अधिकतर हिन्दीतर प्रदेशों के थे। यह देखकर आश्चर्य होता है कि राष्ट्रवाणी के रूप में हिन्दी की घोषणा कर उसके व्यापक प्रचार के लिए ठोस कदम उठानेवाले सभी अहिन्दी भाषी ही थे। हिन्दी के सर्वप्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन 30 मई सन् 1826

के दिन कलकत्ता में हुआ। दूसरा 'बंग दूत' नामक पत्र कलकत्ता में ही सन् 1829 में निकला। इसके संस्थापक भारत के महान निर्माता और बौद्धिक-क्रान्ति के अग्रदूत राजा राममोहनराय थे। यह पत्र संस्कृत, बंगला और हिन्दी तीनों ही भाषाओं में प्रकाशित होता था। स्वयं राजा राममोहनराय हिन्दी में भी लिखा करते थे। वेदान्त के भाष्य का उनके द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद इसमें प्रकाशित हुआ करता था। सन् 1850 में तारामोहन मित्र के संपादकत्व में 'सुधाकर' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ और इसमें प्रयुक्त हिन्दी अपेक्षाकृत अधिक सरल और साफ सुथरी थी। सन् 1854 में कलकत्ता से ही 'समाचार सुधा-वर्षण' नामक हिन्दी के सर्वप्रथम दैनिक समाचार-पत्र का प्रकाशन हुआ। इसके संपादक स्वर्गीय श्यामसुन्दर सेन थे।

इसी तरह बंगला के ही नवीनचन्द्र राय ने पंजाब को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर वहां से ही हिन्दी की अनेक पत्र पत्रिकायें निकाली। सन् 1870 के आसपास इसी तरह का कार्य कश्मीर के महाराजा रणजीतसिंह के प्रोत्साहन से सपन्न हुआ। पता चलता है कि कश्मीर में 1870 के आसपास से संस्कृत, डोगरी और हिन्दी में कई पत्रों का प्रकाशन होने लगा था।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा स्वाधीनता-आन्दोलन के विधिवत् रूप ग्रहण करने से पूर्व ही अहिन्दी भाषियों द्वारा हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीय रंगमंच निर्माण का कार्य सुचारु रूप में प्रारंभ हो चुका था। राष्ट्रीय जागरण और स्वाधीनता-संग्राम का रूप जैसे-जैसे प्रौढ़तर होता गया, वैसे-वैसे राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास की संभावनाएं भी प्रशस्त होती गई।

राष्ट्रीय जागरण से सम्बद्ध सभी संगठनों ने हिन्दी को ही संपर्क-भाषा के रूप में स्वीकार किया। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज और थियोसोफिकल सोसाइटी इस प्रकार के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संगठन समझे जा सकते हैं। इन सभी के मुख्य केन्द्र हिन्दी प्रदेशों के बाहर स्थित थे। ब्रह्मसमाज का मुख्य कार्यालय कलकत्ता में स्थित था तो थियोसोफिकल सोसाइटी का मद्रास में और आर्यसमाज का बम्बई में। आर्यसमाज ने हिन्दी भाषा को 'आर्य-सत्या' के समान ही महत्त्व प्रदान किया और इसके प्रचार प्रसार का कार्य उनके आन्दोलन का अभिन्न अंग बन गया। राजा राममोहनराय ने सन् 1874 ई० में अपना पहला हिन्दी-भाषण काशी में दिया और हिन्दी के राष्ट्रीय स्वरूप को स्पष्ट किया। ब्रह्मसमाज के प्रख्यात् नेता केशवचन्द्र सेन ने 1875 में अपने 'सुलभ समाचार' के संपादकीय में हिन्दी का राष्ट्र की एकता स्थापित करनेवाली एकमात्र भाषा के रूप में घोषित किया था—"अभी जितनी भी भाषाएं भारत में प्रचलित हैं उनमें हिन्दी भाषा ही सबसे अधिक प्रचलित है। इसी हिन्दी को भारतवर्ष की एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज ही यह (एकता) संपन्न हो सकती है।" हिन्दी के सम्बन्ध में इसी तरह के उद्गार एनीबीसेन्ट के भी थे—"भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में जो अनेक देशी भाषाएं बोली जाती हैं, उनमें एक भाषा ऐसी है जिसमें शेष सब भाषाओं की अपेक्षा एक बड़ी भारी विशेषता है। वह यह कि उसका प्रचार सबसे ज्यादा है। वह भाषा हिन्दी है। हिन्दी बोलनेवाला आदमी सम्पूर्ण भारतवर्ष में यात्रा कर सकता है और उसे हर जगह पर हिन्दी बोलनेवाले मनुष्य मिल सकते हैं। हिन्दी सीखने का कार्य एक ऐसा त्याग

है जिसे दक्षिण भारत के निवासियों को राष्ट्र की एकता के हित में करना चाहिए।"

स्वाधीनता-सग्राम के दौरान राष्ट्रीय चेतना जैसे-जैसे तीव्र होती गई, वैसे-वैसे राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास का अनुभव भी दृढ होता गया। राष्ट्रीय भारतीय कांग्रेस की स्थापना के बाद इस कार्य में तीव्रता आ गई और जब कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गाधी के हाथों में आया तब उन्होंने राष्ट्रभाषा के कार्य को भी अन्य राष्ट्रीय कार्यों के साथ जोड दिया। 1909 ई० में गाधीजी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में लिखा था—"सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए।" राष्ट्रभाषा हिन्दी के सबन्ध में 5 जुलाई 1928 के 'यग-इडिया' में तो उन्होंने यहा तक कह डाला—"मैं यदि तानाशाह होता, तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा का दिया जाना बन्द कर देता। जो आनाकानी करते, उन्हें बर्खास्त कर देता। मैं पाठ्य-पुस्तकों के तैयार किये जाने का इन्तजार न करता।"

वस्तुतः कांग्रेस के नेताओं का ध्यान राष्ट्रभाषा की आवश्यकता की ओर 15वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही केन्द्रित होने लगा था। लोकमान्य बालगगाधर तिलक का हिन्दी प्रेम उनकी राष्ट्रीय भावना की उपज था। राष्ट्रीय आन्दोलन के सचालन के लिए वे एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव बहुत पहले से ही करने लगे थे। उन्होंने एक स्मरण-पत्र के उत्तर में लिखा था—"राष्ट्रभाषा की आवश्यकता अब सर्वत्र समझी जाने लगी है। राष्ट्र के सगठन के लिए आज ऐसी भाषा की आवश्यकता है, जो सर्वत्र आसानी से समझी जा सके। लोगों में अपने विचारों का अच्छी तरह प्रचार करने के लिए भगवान बुद्ध ने भी एक भाषा को प्रधानता देकर कार्य किया था। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बन सकती है। रा ट्रभाषा सर्वसाधारण के लिए जरूर होनी चाहिए। मनुष्य हृदय एक दूसरे से विचार-विनिमय करना चाहता है। इसलिए राष्ट्रभाषा की बहुत जरूरत है। विद्यालयों में हिन्दी की पुस्तकों का प्रचार होना चाहिए। इस प्रकार यह कुछ ही वर्षों में राष्ट्रभाषा बन सकती है।"

राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-कार्य उस समय तक केवल हिमालय और विन्ध्याचल के बीच ही सुचारु रूप से चल रहा था। आवश्यकता इस बात की थी कि इसे दक्षिण भारत में भी प्रवर्तित किया जाय। उत्तर भारत की सभी भाषायें हिन्दी की भगिनी के तुल्य थीं और इनमें भाषागत निकटता थी। यह बात दक्षिण की भाषाओं के साथ नहीं थी। अत दक्षिण में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के अभाव में न तो राष्ट्रीयता का सूत्र ही मजबूत हो सकता और न हिन्दी को अखिल भारतीय भाषा का रूप ही मिल पाता। इसी तथ्य से प्रेरित होकर महात्मा गाधी ने 1918 में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के सभापति का पद ग्रहण करने का आमत्रण इस शर्त पर स्वीकार किया कि दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार के लिए एक लाख रुपये सम्मेलन की ओर से मिल जाए। उन्होंने अपने 18 वर्षीय पुत्र देवदास को इस महत्त्व-पूर्ण कार्य के लिए दीक्षित किया और कार्यकर्ताओं को कार्यरत करने की एक दीर्घ-सूत्रीय योजना भी तैयार की। फलस्वरूप मद्रास में दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना हुई और हिन्दी अध्ययन अध्यापन का कार्य राष्ट्रीय कार्य के रूप में अग्रसर हुआ। इसी तरह की एक सस्था वर्धा में भी स्थापित हुई और उसने विन्ध्या के उत्तर में और विशेषकर भारत के पूर्वांचल में हिन्दी के प्रचार का उल्लेखनीय कार्य किया।

इसी राष्ट्रीय चेतना के अधीन 1950 में भारतीय संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया और राष्ट्र के सभी महान नेताओं का इसमें सहयोग प्राप्त हुआ। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर आज तक हिन्दी का कार्य राष्ट्रीय कार्य माना जाता रहा और असंख्य अहिन्दी भाषियों ने इसे इसी रूप में स्वीकार किया।

हिन्दी राष्ट्रीय एकता की बड़ी सशक्त कड़ी रही है और आगे भी रहेगी। इसका उदय और विकास राष्ट्रीय जागरण के समानांतर इस कारण हुआ कि यह एक जोड़नेवाली भाषा है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी संपूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करती रही है और सभी क्षेत्रों, धर्मों, वर्गों, जातियों एवं श्रेणियों के लोगों ने इसे अपनाया और अर्घ्य-दान दिया है। इसीलिए यह किसी सम्प्रदाय-विशेष अथवा प्रदेश-विशेष की भाषा न होकर संपूर्ण राष्ट्र की भाषा है और इसपर सबका समान अधिकार है। इसका राष्ट्रीय स्वरूप विकृत न हो और राष्ट्रभाषा के प्रश्न को साम्प्रदायिक कठघरों में बंदी न बना दें, इसके लिए ही महात्मा गांधी ने सरल हिन्दी के नाम से हिन्दुस्तानी की वकालत की थी। भारतीय संविधान में राजभाषा के रूप में जिस हिन्दी की कल्पना की गई है वह भी बहुत-कुछ इसी प्रकार की है—ऐसी है, जहां भारत की विभिन्न भाषाओं का संगम दृष्टिगोचर होता है।

भावात्मक एकता के बिना न राष्ट्र की परिकल्पना ही चिरस्थायी बन सकती है और न राष्ट्रभाषा की। वही भाषा राष्ट्रभाषा की सच्ची अधिकारिणी बनती है जो एकान्वयन में पूर्णतः सक्षम होती है। आदर्श और साधना की एकता मनुष्य को एक मंच पर अवश्य एकत्र कर देती है, परन्तु भाषा की विभिन्नता मनुष्य की इस एकता को भावात्मक नहीं बनने देती। एक यूरोपीय प्राचीन कथा में उल्लेख है कि भाषा की भिन्नता के कारण ही 'टावर आफ बेबल' टूट पड़ा था और उन लोगों ने ही, जो इस महती साधना के लिए दिन-रात एक कर रहे थे, भाषा की भिन्नता और भावात्मक एकता के अभाव में एक दूसरे से संघर्ष किया और अपनी ही निर्मित वस्तु को स्वयं ही गिरा दिया। इस कथा का संदेश बड़ा ही मार्मिक और व्यंजक है।

हिन्दी के माध्यम से भावात्मक एकता के दृढ़ीकरण का अनुष्ठान कितने सशक्त रूप में पूरा हो सकता है, इसीकी ओर लक्ष्य करते हुए आचार्य क्षितिमोहन सेन ने लिखा है—"हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के हेतु अनेक अनुष्ठान हुए और उनको मैं संस्कृति का राजसूय यज्ञ समझता हूं। राजसूय यज्ञ में नाना प्रदेशों से, नाना भांति का उपहार आना आवश्यक होता है, इसके बिना राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता। परिणामस्वरूप कर्नाटक, महाराष्ट्र, कोंकण, गुजरात, मलाबार, उत्तर भारत, आदि नाना प्रदेशों के सुधीजन इसके लिए त्याग और परिश्रम करते रहे। परन्तु इस त्याग को अपनानेवाला पात्र कहां है? इस सांस्कृतिक त्याग का पात्र है भाषा। बिना इस वाङ्मय पात्र के राजसूय यज्ञ सफल नहीं होगा।"

अनेक कारणों से हिन्दी संतों-महात्माओं, व्यापारियों-पर्यटकों, राष्ट्रप्रेमियों आदि की भाषा रही। इसके माध्यम से जन-मानस सच्ची अभिव्यक्ति पाता आ रहा है। अतः स्वाभाविक है कि इसके साथ सबका भावात्मक लगाव बना रहे। सहस्रों अहिन्दी भाषा-भाषियों द्वारा चढ़ाया जा रहा निर्माल्य इसके माध्यम से अभिव्यक्त होनेवाली भावात्मक एकता का ही सूचक है।

- हिन्दी भाषात्मक एकता का माध्यम इसलिए भी है कि इसमे सभी वर्गों, जातियों, धर्मों और विचार-धाराओ का प्रदाय संचित है और सभी को इसमे अपनेपन की प्रतीति सहज रूप मे हो जाती है।

राष्ट्रीय चेतना और भावात्मक एकता को पुष्ट करनेवाली कडी के रूप में, हिन्दी को स्वीकारकर प्राय सभी राष्ट्रीय नेताओ ने इसकी सवृद्धि के सकल्प दोहराये हैं और राष्ट्रीय हित में निभायी गई इसकी भूमिका के प्रति अर्घ्यदान भी अर्पित किए हैं। इस सदर्भ में राजा राममोहनराय, महर्षि दयानन्द, लोकमान्य तिलक, स्वामी विवेकानन्द, महामना मालवीयजी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, डा० अबुल कलाम आजाद, पडित जवाहरलाल नेहरू, श्री पुरुषोत्तमदास टडन, श्रीमती इदिरा गाधी आदि के विचार विशेष उल्लेखनीय हैं। बहुत-से जननायको ने हिन्दी के विकास के कार्य का अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भी बना लिया था। अब भी ऐसे तपस्वियो का अभाव नही है।

राष्ट्रभाषा और राजभाषा के पद पर अभिषिक्त होने के कारण हिन्दी का दायित्व बहुत बढ गया है। अब यह मात्र साहित्य की भाषा अथवा सामान्य बोलचाल के लिए प्रयुक्त होनेवाली सपर्क भाषा ही नही रह गई। इसके माध्यम से ज्ञान, विज्ञान और तकनीक की उत्तरोत्तर बढती हुई उपलब्धियो का भी ज्ञान प्राप्त करना, प्रशासन की भाषा के रूप में भी इसका नवनिर्माण होना आवश्यक है। यह बडा गुरुतर कार्य है और इसके लिए बडी उदार और व्यापक दृष्टि तथा कठिन साधना की अपेक्षा है।

प्रश्न उठता है कि हिन्दी का यह रूप किस आधार पर नवनिर्मित हो ! यदि यह पूर्णत सस्कृत की पराश्रित बन जाती है तो जनसामान्य से यह अलग-थलग पड जायेगी। यदि बाजारू हिन्दी का रूप ग्रहण कर लेती है तो इसकी अभिव्यजना-शक्ति कुछ कुठित हो सकती है, अत ऐसे मार्ग को अपनाने की आवश्यकता है जिससे इसका सामासिक और अखिल भारतीय रूप अक्षुण्ण रह सके। इसके लिए आवश्यक है कि सभी भारतीय भाषाओ से यथासभव शब्द-सपदा को भी अगीकार किया जाय और उनकी अन्यान्य अभिव्यजना-पद्धतिया का भी आत्मीकृत कर इसे सच्ची राष्ट्र-भाषा का स्वरूप प्रदान किया जाय। संविधान के अनुच्छेद 351 में हिन्दी के इसी रूप की ही परिकल्पना की गई है।

हिन्दीतर प्रदेशो की देन .

हिन्दी की प्रगति और विकास म प्रत्येक हिन्दीतर प्रदेश की उल्लेखनीय देन रही है। हिन्दी भाषा के विकास मे और हिन्दी साहित्य की समृद्धि मे हिन्दीतर प्रदेशो ने पर्याप्त योगदान दिया है। प्रत्येक हिन्दीतर प्रदेश म हिन्दी की प्रगति के लिए और हिन्दी साहित्य-भडार को समृद्ध बनाने के लिए किये गये महत्त्वपूर्ण कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य अपने वर्तमान स्वरूप को हासिल करने म हिन्दी-प्रदेश की अपेक्षा हिन्दीतर प्रदेशो के प्रति अधिक ऋणी है।

हिन्दीतर प्रदेश भी दो प्रकार के हैं। कुछ ऐसे प्रदेश हैं जहा हिन्दी से निकटता रखनेवाली भाषाए—आर्य परिवार की ही भाषाए—व्यवहृत होती हैं। मराठी

गुजराती, पजाबी, डोगरी-कश्मीरी, असमी, बगाली और उडिया ऐसी भाषाएं है जो हिन्दी की भगिनी भाषाए कहलाती हैं। चूंकि इन भाषा-प्रदेशो का सबन्ध हिन्दी-प्रदेश से निकट का रहा है, अत प्रारभ से ही विपुल मात्रा मे इन प्रदेशो मे हिन्दी साहित्य-साधना हुई है और इन प्रदेशो के साहित्यकारो को हिन्दी मे रचना करने मे कोई विशेष कठिनाई नही हुई। इनमे से कुछ भाषाओ मे और हिन्दी मे लिपिगत और भाषागत बहुत-सी समानताए देखने को मिलती हैं। दक्षिण के प्रान्तो की भाषाए द्रविड परिवार की है। केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश मे हिन्दी की प्रगति और हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए जो कार्य हुए है, उन्हें एक विशिष्ट धरातल पर आकने की आवश्यकता है। क्योकि ये प्रदेश हिन्दी-प्रदेश से दूर हैं और पर्याप्त भाषा-भेद के रहते हुए भी इन प्रदेशो के हिन्दी सेवियो ने हिन्दी की प्रगति मे जो तत्परता प्रदर्शित की है, उसका विशेष मूल्याकन अपेक्षित है। वास्तव मे हिन्दी-अहिन्दी का अन्तर उत्तर मे (महाराष्ट्र, गुजरात, पजाब, असम इत्यादि अहिन्दी प्रदेशो मे) इतना स्पष्ट प्रतीत नहीं होता जितना दक्षिण भारत मे। दक्षिण म पैदा होकर हिन्दी के वातावरण से एकदम अलग राष्ट्रभारती की ऐकातिक साधना मे लगे हुए दक्षिण के लेखको का योगदान विशेष रूप से स्मरणीय और स्पृहणीय है।

हिन्दी को समृद्ध बनाने मे प्रत्येक हिन्दीतर प्रदेश की कुछ न कुछ विशेष देन रही है। पत्रकारिता के क्षेत्र में बगला भाषियो ने हिन्दी को बहुत कुछ दिया है। मराठी और हिन्दी की एक ही लिपि होने के कारण दोनो भाषाओ के बीच आदान-प्रदान का कार्य अनायास चलता रहा है। मराठी सतो ने हिन्दी साहित्य को काफी समृद्ध बनाया। आधुनिक युग मे भी महाराष्ट्र के हिन्दी साहित्यकारो ने हिन्दी को बहुत कुछ दिया है। गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, अनन्तगोपाल शेवडे, काका साहब कालेलकर और आचार्य विनोबा भावे—ये सब मराठी भाषी होते हुए भी हिन्दी के जाने-माने लेखक है। गुजराती भाषी कभी अनुभव तक नही करते कि हिन्दी कही बाहर की भाषा है। गुजरात ने मध्ययुग स ही हिन्दी साहित्य-भण्डार को सपन्न किया है। पजाब तथा जम्मू-कश्मीर के लेखको ने भी मध्ययुग से हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध किया है। आधुनिक युग में भी पजाब और जम्मू-कश्मीर के कितने ही महान और सुपरिचित लेखक हिन्दी साहित्य के गौरव को बढा रहे हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, गुरुदत्त, यशपाल और डा० महीपसिंह—ये सब पजाब की उपलब्धिया हैं। डोगरी भाषा-भाषी डा० कर्ण सिंह की हिन्दी सेवाए विशेष उल्लेखनीय है। इसी तरह असम और उडीसा मे भी असख्य प्रतिभाओ ने हिन्दी की गरिमा को बढाया है।

दक्षिण के प्रान्ता के हिन्दी लेखको ने भी मात्रा और महत्ता दोनो दृष्टियो से इतना प्रभूत कार्य किया है कि इसका सही-सही मूल्याकन सास्कृतिक सेतुबन्धन की समय-समादृत साधना का समग्र चित्र प्रस्तुत कर सकता है। केरल मे इस सास्कृतिक अनुष्ठान के बीज उन्नीसवी शताब्दी के आरभ मे भक्ति-भावना से प्रफुल्लित स्वाति तिरुनाल की सारवती वाणी मे पाये जाते हैं। स्वाति सलिल की सात्विकता और मुक्ताभ मनोहारिता को प्रचारित करनेवाले पद राष्ट्रभारती के अनर्घ रत्न हैं। इसी परपरा का आगे बढाते हुए केरल के अनगिनत हिन्दी सेवियो ने मा-भारती के चरणा मे महान अर्घ्य-दान किया है। हिन्दी को कर्नाटक की भी देन कम महत्त्वपूर्ण नही है।

पता चलता है कि आधुनिक युग से पहले ही कर्नाटक मे निरतर हिन्दी की सेवा होती रही। तमिलनाडु ने भी हिन्दी को बहुत कुछ दिया है। हिन्दी के विकास मे तमिल प्रदेश का योगदान दूसरे प्रदेशो की अपेक्षा कम नही है। आन्ध्र की हिन्दी को देन अनुप्रास के अनन्य सम्राट पद्माकर भट्ट के समय से चली आ रही है। पद्माकर की कविता पढते समय भूषण की वसुप्रसविनी वाग्विलासिता का बरबस स्मरण हो आता है। तब से लेकर वर्तमान युग तक कितने ही तेलुगु भाषी हिन्दी सेवियो ने हिन्दी की विविध विधाओ की शोभा बढाई है। इस प्रकार प्रत्येक हिन्दीतर प्रदेश की हिन्दी सेवा का विस्तृत विवेचन करने पर (जो इस ग्रन्थ के दूसरे अध्यायो मे विस्तार से दिया गया है) यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी मे जो कुछ श्रेष्ठ और विशिष्ट हैं, उसमे से बहुत कुछ हिन्दीतर प्रदेशो की देन है।

यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दी मे आरभिक पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन अहिन्दी भाषी क्षेत्रो मे ही हुआ और इसकी पुष्ट-परपरा स्थापित करनेवाले पत्रकार भी अहिन्दी भाषा-भाषी थे। 'उदन्त मार्तण्ड' (1826), 'बगदूत' (1829), 'सुधाकर' (1850), 'समाचार सुधा वर्षण (1854), आदि इसके प्रमाण है। श्याम-सुन्दर सेन के सपादकत्व मे प्रकाशित 'समाचार सुधा वर्षण' हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र था। श्री सेन ने ही पहली बार दैनिक पत्र की सफलता के हेतु अपेक्षित परिस्थितियो का निर्माण किया और जनता मे ऐसी अभिरुचि उत्पन्न की कि आगे अधिकाधिक हिन्दी के दैनिक पत्रो का निकलना सभव हो सका। भारतेन्दु-युग मे अनेक अहिन्दी भाषा भाषी इस क्षेत्र मे अमूल्य योगदान देते हुए दिखाई देते हैं। सन् 1874 मे दामोदर सप्रे ने पटना से 'बिहार-बन्धु' नामक पत्र का प्रकाशन किया। इसके द्वारा हिन्दी प्रचार के साथ-साथ लोगो म समाज-सुधार और देश-प्रेम की भावना उत्पन्न करना भी उनका लक्ष्य था। केशवराम भट्ट ने भी इस पत्र का सपादन किया था। कृष्णचन्द्र बनर्जी ने पत्रकारिता के क्षेत्र मे कुछ ऐसे प्रयोग किये जिनके कारण पत्रो को लोकप्रिय बनाने का मार्ग प्रशस्त हुआ। उन्होने सन् 1890 मे कलकत्ता से 'हिन्दी बगवासी' नामक पत्र निकाला था। इस पत्र म राष्ट्रीय भावना के वर्द्धन के साथ-साथ ज्ञानप्रद एव विविध प्रकार की मनोरजनात्मक सामग्री की प्रचुरता थी। पत्रकार-सम्राट बाबूराव विष्णु पराडकर ने भी आगे चलकर इसका सपादन किया था। विभिन्न वर्गों और विषयो मे सबद्ध पत्र-पत्रिकाए भी प्रकाशित हुई। नवीनचन्द्रराय की पुत्री हेमन्तकुमारी के सपादकत्व मे 1888 मे 'सुगृहिणी' नामक महिलोपयोगी पत्रिका प्रारभ हुई। सन् 1890 मे अमरावती से हिन्दी का प्रथम वैज्ञानिक पत्र 'शेतकरी' अर्थात् कृषिकारक निकला। इसमे हिन्दी और मराठी दोनो ही भाषाओ म विज्ञान और तकनीक-सबन्धी चर्चा छपती थी। इसके सपादक थे चिटनिस सखाराम चिमणजी गाले। इस तरह के द्विभाषी पत्र कई और भी प्रकाशित हुए। कृष्णचन्द्र सेन ने भी हिन्दी-बगला के कुछ द्विभाषी पत्रो का प्रकाशन किया।

बीसवी शताब्दी के प्रारभिक दशको मे अहिन्दी भाषा-भाषियो के प्रयत्नो से अनेक पत्र-पत्रिकाए निकलती रहीं। गोविन्द शास्त्री दुगुवेकर के सपादकत्व मे 'भारतन्दु', 'मार्य-महिला', 'बाल-बोध' जैसे विभिन्न वर्गों और विषयो से सबद्ध पत्र निकले। माधवराव सप्रे ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' तथा 'हिन्दी-केसरी' का सपादन किया। सिद्धनाथ माधव आगरकर ने खडवा से 'स्वराज्य' निकाला। रामेश्वरी नेहरू ने 'स्त्रीदर्पण' नामक

पत्रिका सन् 1905 में प्रकाशित की थी जो उनके संपादकत्व में लगभग सोलह वर्षों तक छपती रही। इसी तरह की 'कमलिनी' नामक पत्रिका ज्योतिर्मयी ठाकुर ने भी प्रारंभ की थी। संपादकाचार्य लक्ष्मीनारायण गर्दे, रामानन्द चट्टोपाध्याय, मनोहरकृष्ण गोलवलकर आदि जैसे पत्रकारों ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हिन्दी की महती सेवा की।

हिन्दी का छायावादी युग तो हिन्दी पत्रकारिता का स्वर्णयुग ही माना जा सकता है। इस काल की हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में बाबूराव विष्णु पराडकर का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। उन्होंने 'कमला', 'रणभेरी', 'हिन्दी बंगवासी', 'हितवार्ता', 'भारतमित्र' आदि जैसे पत्रों का संपादन किया। लेकिन बनारस से प्रकाशित दैनिक 'आज' का उनका संपादकत्व प्रत्येक दृष्टि से प्रतिमानक है। उन्होंने 'आज' को अंग्रेजी के उच्चश्रेणीय दैनिक-पत्रों के समकक्ष बैठाया। विविध विषय सम्बन्धी सूचनाओं की संयोजना बड़े कौशलपूर्ण ढंग से की जाती थी। उनकी संपादकीय टिप्पणियां तो पत्रकारिता के क्षेत्र की अक्षुण्ण धरोहर ही बन गई थीं। उन्होंने सामान्य और विशिष्ट प्रयोग-सम्बन्धी असंख्य शब्द हिन्दी भाषा में प्रयुक्त किये। आज निस्संकोच रूप में यह कहा जा सकता है कि सामान्य हिन्दी के शब्द-भण्डार के निर्माण और विषयानुरूप शैली के विधान में उनका वैसा ही योगदान रहा जैसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साहित्यिक भाषा और शैली के विधान में समझा जाता है। अपने चालीस-पचास वर्षों के पत्रकार-जीवन में उन्होंने हिन्दी की जो सेवा की है, उसके लिए हिन्दी भाषा सदैव ऋणी रहेगी। वास्तव में हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र के वे भीष्म-पितामह थे और पत्रकार-सम्राट भी। उनके बाद रामकृष्ण रघुनाथ खाडेलकर ने उनकी परंपरा को आगे बढ़ाया। लेकिन हिन्दी का दुर्भाग्य रहा कि असमय में ही उनका निधन हो गया। 'आधुनिक पत्रकार-कला' नामक ग्रंथ पत्रकार-कला को खाडेलकरजी की सबसे बड़ी देन है। इसमें पत्रकारिता के इतिहास, समाचार पत्रों के कर्तव्य, संपादन-कला के व्यावहारिक पक्ष, आदि का विशद विवेचन किया गया है।

दक्षिण-भारत में हिन्दी पत्रों का प्रकाशन अन्य प्रदेशों की अपेक्षा किंचित् विलंब से हुआ। फिर भी, यहां की पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ यहां की प्रतिभाओं को राष्ट्रीय मंच पर लाने का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया। दक्षिण की हिन्दी प्रचार संस्थाओं द्वारा यह कार्य विधिवत् रूप में संपन्न होता रहा। सन् 1938 में मद्रास से 'दक्षिण भारत' नामक पत्र निकला। बीच में कुछ समय के लिए बन्द हो जाने के उपरान्त सन् 1952 में पुनः प्रारंभ हुआ। तिरुच्चिराप्पल्ली से ए० रामय्यर तथा जी० सुब्रह्मण्यम् के संयुक्त-संपादन में 'हिन्दी पत्रिका' निकली। सिद्धनाथ पन्त ने धारवाड से 'भारतवाणी' का प्रकाशन किया और चिट्टूरी लक्ष्मीनारायण ने विजयवाडा से 'रसवन्ती' का। इसी तरह रामकृष्ण बोस ने उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के पत्र 'राष्ट्र सेवक' का संपादकत्व संभाला। राष्ट्र के दक्षिणी सीमान्त से प्रकाशित होनेवाले पत्र 'युगप्रभात' का विशिष्ट स्थान है। इसके संपादक के० रविवर्मा ने अपने अथक प्रयत्नों से इसे हिन्दी का एक स्तरीय और गण्यमान्य पत्र बना दिया। इन पत्रों के अतिरिक्त साहित्यिक और भाषा-शास्त्र सम्बन्धी अनेक पत्र-पत्रिकाएं इस समय दक्षिण से प्रकाशित हो रही हैं। इन सबका विशिष्ट योगदान है। हैदराबाद से प्रकाशित होनेवाली 'कल्पना' तो आधुनिक नवलेखन की सर्वोच्च पत्रिका

समझी जाती रही है। किन्तु खेद इस बात का है कि ऐसी स्तरीय पत्रिका का निर्बाध रूप म प्रकाशन सम्भव नही हो पा रहा है।

दक्षिण के अतिरिक्त अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तो मे भी प्रचार सभाओ द्वारा प्रकाशित की जानेवाली पत्रिकाओ का महत्त्व अविस्मरणीय है। इस सदर्भ मे श्री भुवनेश्वर वर्मन के सपादकत्व मे निकलनेवाले असम प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के मुखपत्र 'राष्ट्रसेवक' का, श्री जेठालाल जोशी के सपादकत्व मे निकलनेवाले गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के मुखपत्र 'राष्ट्रवीणा' का, श्री गो० प० नेने और लालजी उपाध्याय के सपादकत्व मे निकलनेवाले महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के मुखपत्र 'राष्ट्रवाणी' का और डा० गीता बन्दोपाध्याय के सपादकत्व मे निकलनेवाले राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, के मुखपत्र 'राष्ट्र भारती' का उल्लेखनीय स्थान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र म अहिन्दी भाषा-भाषियो का योगदान सभी दृष्टियो से विशिष्ट रहा है।

इन विवरणो से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास और सवर्द्धन मे अहिन्दी भाषा-भाषियो का जो योगदान रहा है, वह किसी भी रूप मे हिन्दी भाषा-भाषियो से न्यून नही माना जा सकता। यह सत्य है कि किसी क्षेत्र के अहिन्दी भाषियो ने भाषा के प्रचार-प्रसार पर अधिक बल दिया तो किसी अन्य क्षेत्र के लोगो ने साहित्य की सवृद्धि पर। इस तरह दोनो ही क्षेत्रो मे इनके द्वारा बहुमूल्य सेवाए अर्पित की गई।

इसी तरह दूसरा तथ्य जो हमारे सामने अधिक उभरकर प्रतिभासित होता है, वह यह है कि हिन्दी पर सभी का समान अधिकार है। यह सपूर्ण राष्ट्र की सपत्ति है। इसी दृष्टि से विभिन्न प्रदेशो, जातियो और सम्प्रदायो के लोगो ने इसकी श्रीवृद्धि मे अनुपम योग दिया है। अत हिन्दी को किसी एक प्रदेश अथवा सप्रदाय-विशेष आदि की निजी धरोहर मानना, इसके राष्ट्रीय स्वरूप की अवहेलना करना है। राष्ट्रभाषा के लिए अर्पित योगदानो का मूल्याकन भी अत्यत व्यापक और सहिष्णु राष्ट्रीय धरातल पर किया जाना चाहिए। तभी हिन्दी सबकी अपनी निजी भाषा बन पायेगी।

हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन

हिन्दी के आरभ और विकास के प्राचीन युग से लेकर वर्तमान युग तक अहिन्दी भाषियो ने अपनी विशिष्ट सेवाओ के जो पुष्प राष्ट्रभारती के प्रागण मे अर्पित किये, उनका न तो सही लेखा-जोखा हो प्रस्तुत हो सका और न वास्तविक मूल्याकन ही। यह बात तब और खटकने लगती है जब हिन्दी की विविध विधाओ मे युगान्तरकारी कार्य करनेवाले लेखको को भी उचित स्थान नही दिया जाता। अहिन्दी भाषी महान हिन्दी सेवियो की जो उपेक्षा हिन्दी साहित्य के इतिहास मे की गई है, उसके लिए अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं।

हिन्दी मे निर्गुण काव्यधारा की प्रवृत्तिया सर्वप्रथम नामदेव मे स्पष्ट हुई हैं। वे कबीर से अनेक वर्ष पहले जनमे थे तथा उनसे अनेक वर्ष पूर्व साहित्य की रचना भी की थी। कबीर की विचारधारा पर नामदेव का स्पष्ट प्रभाव है। अनेक स्थलो पर उन्होंने नामदेव के नाम का अत्यत श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। कबीर के अनेक पदो का नामदेव से पर्याप्त मेल बैठता है। यहा एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

मैं बउरी मेरा राम भरतार
रचि रचि ताकउ करउ सिंगार ॥—कबीर
मैं बउरी मेरे राम भरतार
तो कारण रचि करों स्यगार ॥—नामदेव

इस तरह का साम्य प्रकट करनेवाली नामदेव की अनेक पंक्तिया कबीर मे भी और अन्य दूसरे सत कवियो मे भी ढूढी जा सकती हैं । ऐसी स्थिति मे हिन्दी के सत-काव्य का प्रारभ नामदेव से माना जाना चाहिए था । लेकिन निर्गुण-सत-धारा का प्रवर्तक बनने का श्रेय उन्हे नही दिया गया । 'हिन्दी काव्य मे निर्गुण सप्रदाय' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ 31 पर पीताम्बर बडथ्वाल ने लिखा है, "निर्गुण-पथ प्रारभ करने का श्रेय कबीर को ही देना होगा ।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का भी इसी प्रकार का मत है । 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ 70 पर उन्होने लिखा है, "जहा तक पता चलता है, निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे ।" इसके लिए बहुत से कारण भी दिये गये है, जैसे, नामदेव की भक्ति मे सगुणोपासना के तत्त्व का विद्यमान होना, निवृत्ति और प्रवृत्ति इन दोनो साधना-पद्धतियो मे से निवृत्ति को पूरी तरह न अपना पाना, आदि । श्री परशुराम चतुर्वेदी ने अपने ग्रथ 'उत्तर भारत की सत-परपरा' मे इसी तरह की बातो के आधार पर तर्क दिया है, "नामदेव मे उत्तरी भारत के सत-मत की सारी विशेषताए नही मिलती । अत वे अपने क्षेत्र तक सीमित रह जाते हैं ।"

जो भी हो, नामदेव के साहित्य मे सत-साहित्य की सारी विशेषताए थोडी-बहुत मिल ही जाती हैं । यही नही, दक्षिण म महाराष्ट्र से लेकर उत्तर मे पजाब-राजस्थान तक उनके अनुयायी भी पाये जाते हैं । आचार्य शुक्ल स्वीकार करते हैं कि ज्ञान-समन्वित राग-भावनावाली उनकी रचनाओ ने परवर्ती निर्गुण सतो का मार्ग प्रशस्त किया । इन सभी तथ्यो के होते हुए भी उनके द्वारा नामदेव को उचित स्थान न देना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है ।

सिख गुरुमुखी की हिन्दी सेवा का भी ठीक मूल्याकन नही हो पाया है । लगभग प्रत्येक सिख गुरु ने हिन्दी मे रचना की है । गुरु गोविन्दसिंह ने तो नाटक भी लिखे हैं । रासोकाल के उपरान्त हिन्दी मे वीर रस की कविताओ का सम्बन्ध सीधे भूपण और लाल कवि से जोड दिया जाता है । इस बीच मे गोविन्दसिंह की वीरतापूर्ण रचनाए विस्मृत कर दी जाती हैं, यह खेदजनक स्थिति है । वस्तुत सिख गुरुओ मे तेगबहादुर और गोविन्दसिंह की रचनाए काफी ऊचे स्तर की हैं । गुरु गोविन्दसिंह अपनी वीररस प्रधान रचनाओ के द्वारा जनता मे जागरण पैदा करने का काम करते थे । अत इनकी रचनाओ को वास्तविक स्थान क्या इस कारण नही मिला कि उनकी लिपि गुरुमुखी है ? यदि लिपि-भेद को ही भाषा-भेद मान लिया गया तो दक्खिनी और सूफी आदि के अनेक कवि हिन्दी से पृथक् हो जायेंगे । डा० हरिभजनसिंह के 'गुरुमुखी लिपि का हिन्दी काव्य' नामक शोध प्रबन्ध से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस लिपि म कितना प्रभूत हिन्दी-काव्य रचा गया है । इन सबका उचित मूल्याकन होना आवश्यक है । गुरु गोविन्दसिंह और गुरु अर्जुनसिंह की अधिकाश रचनाए पजाबी मे नही, हिन्दी मे ही है । सुदर्शनसिंह मजीठिया ने 'सत साहित्य' की भूमिका म लिखा है—"गुरु गोविन्दसिंह तथा गुरु तेगबहादुर के व्यक्तित्व पर पुन विचार करना चाहिए,

जिनकी समस्त रचनाएं हिन्दी में ही हैं तथा जिन्होंने पंजाबी में बहुत कम ही लिखा है।"

इसी तरह के अनेक तथ्य हैं जिनमें पता चलता है कि विभिन्न विधाओं के प्रवर्तन में भी प्राचीन काल के अहिन्दी लेखकों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन उनका मूल्यांकन नहीं हो पाया है। मराठी के महानुभावीय संतों ने, विशेषकर दामोदर पण्डित ने, और उनके बाद वारकरी संत नामदेव ने राग रागनियों में पद-रचना कर हिन्दी में गीत-शैली का प्रारंभ किया। नामदेव के पुत्र गोंदा महाराज ने खड़ी बोली में कथा गुम्फन का प्रयास कर हिन्दी में कथा अथवा चरित्रकाव्य की दिशा निर्दिष्ट की। मराठी के ही लावणीकारों ने हिन्दी में बहुत अधिक लावणियों की रचना की है। पहले मराठी में भी इन लावणियों को लोक-साहित्य मानकर साहित्य के क्षेत्र से बाहर रखा गया था। अब यह स्थिति बदल रही है और मराठी में लावणी-साहित्य का उचित मूल्यांकन प्रारंभ हो गया है। इसी प्रकार रामानन्द, चैतन्य महाप्रभु आदि की साहित्यिक रचनाओं को भी उचित स्थान नहीं दिया गया है।

हिंदी साहित्य के इतिहास का अधूरापन इस तथ्य से भी ज्ञात होता है कि इसमें दक्खिनी साहित्य को जो स्थान मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी के निर्माण में दक्खिनी की ऐतिहासिक भूमिका किसी से छिपी नहीं है। खड़ी बोली हिन्दी में लेखन की अबाध परंपरा सर्वप्रथम दक्खिनी में ही प्राप्त होती है। ख्वाजा बंदेनवाज, गवासी जैसे महान रचनाकार आधुनिक हिन्दी साहित्य के जगमगाते नक्षत्र के रूप में चित्रित होने चाहिए थे। लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। दक्खिनी में साहित्य की विविध विधाओं में लेखन की परंपरा अब तक चलती जा रही है और दक्षिण के काफी लोग इसमें सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दी साहित्य का इतिहास दक्खिनी साहित्य को अपने में समाविष्ट किये बिना अपना समग्र रूप नहीं प्रस्तुत कर सकेगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की पुरानी परिपाटी अब निरर्थक सिद्ध हो रही है। अतः इसे सार्थक बनाने के लिए नये सिरे से हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिखे जाने की महती आवश्यकता है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक इतिहास में भी बहुत-से अहिन्दी भाषियों को उचित स्थान नहीं मिला है। इस तथ्य पर फिर से विहंगम दृष्टि डालना अनावश्यक नहीं होगा।

भारतेन्दु युग में दामोदर सप्रे, केशवराम भट्ट आदि तथा द्विवेदी युग में माधवराव सप्रे, लक्ष्मीनारायण गर्दे और छायावादी युग में बाबूराव विष्णु पराड़कर, काका कालेलकर आदि के कर्तृत्व का अभी उचित मूल्यांकन होना शेष है। इसी प्रकार छायावादोत्तरयुग में रांगेय राघव, बालकृष्ण राव, प्रभाकर माचवे, अनन्त गोपाल शेवड़े, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में जो युगान्तरकारी प्रयोग किये हैं, उनका फिर से मूल्यांकन होना आवश्यक है।

ये तथ्य केवल कुछ ऐसे नमूने हैं जो सिद्ध करते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों और समीक्षकों ने अहिन्दी भाषियों के प्रति उचित न्याय नहीं किया है।

यहां पर एक प्रश्न सहज ही खड़ा होता है कि क्या अहिन्दी भाषी लेखकों की स्थिति इतरदेशीय अंग्रेजी के लेखकों के समान है? सभी लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि अंग्रेजी में चाहे जितना ही अधिक और प्रतिमानक लेखन किया जाय, यदि वह

कि दक्षिण के लोगों के लिए हिन्दी सीखना और उसमें लेखन करना कितना कठिन है। यहां की भाषा प्रकृति से हिन्दी की प्रकृति काफी भिन्न है। अत एव तमिल-भाषी के लिए हिन्दी उतनी निकट नहीं है, जितनी बंगाली, पंजाबी, गुजराती अथवा मराठी भाषी के लिए। ऐसी स्थिति में यहां के लेखकों की भाषा में साहित्यिक प्रौढ़ता का कुछ समय तक के लिए थोड़ा-बहुत अभाव हो सकता है और उनकी अभिव्यंजना भी किंचित् शिथिल हो सकती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उनके हृदय और मस्तिष्क किसी रूप में कम उर्वर हैं अथवा अन्य हिन्दी भाषी लेखकों की अपेक्षा कम हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि यहां के लोगों की भाषा-सम्बन्धी शिथिलता को बड़ी उदार दृष्टि से देखा जाय। इसका अचूक परिणाम यह होगा कि यहां की अमस्य उभरती प्रतिभाओं में आत्मविश्वास पैदा हो सकेगा और राष्ट्र भारती के भण्डार में उनकी साधना के पुष्प भी यथेष्ठ मात्रा में अर्पित हो सकेंगे।

हिन्दी प्रदेश से दूर होने के कारण और हिन्दी प्रकाशनों में यहां के लेखकों के प्रति उपेक्षा भाव होने के कारण भी यहां की रचनाएं प्रायः प्रकाशित नहीं हो पातीं हैं। इससे नवोदित लेखक का मन टूट जाता है और धीरे-धीरे उसकी रचनात्मक शक्ति भी कुण्ठित हो जाती है। दक्षिण में अधिकांश नवोदित लेखक इसी बात का रोना रोते हुए सुने जाते हैं कि उनकी कृतियां को कोई प्रकाशित करनेवाला नहीं है। जब कृति ही प्रकाशित नहीं होगी, तो रचना करने का क्या लाभ ? ऐसी स्थिति में दक्षिण के हिन्दी लेखकों को, राष्ट्रीय और राजनीतिक कारणों से भी सबसे अधिक प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में, दक्षिण के इन लेखकों को हिन्दी की भगिनी भाषाओं के और हिन्दी भाषी लेखकों, दोनों से ही अधिक प्रोत्साहन देना वांछनीय होगा।

हिन्दी का इन्द्रधनुषी रंग

जिस प्रकार इन्द्रधनुष में अनेक रंग होते हैं और ये सभी एक-दूसरे से इतने समन्वित होते हैं कि हर रंग दूसरे रंग का पूरक समझा जाता है, ठीक उसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं का भी सबन्ध हिन्दी के इन्द्रधनुषी रूप-रंग से है। अब समय आ गया है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी अपने इन्द्रधनुषी रूप रंग को विकसित करे। अब हिन्दी दो-चार प्रदेशों या उत्तराखण्ड तक सीमित नहीं है, परन्तु उसका राष्ट्रव्यापी विस्तार हो चुका है। ऐसी स्थिति में भाषा और साहित्य, दोनों क्षेत्रों में हिन्दी को इन्द्रधनुषी रूप ग्रहण करना है। अंग्रेजी भाषा का अन्तर्राष्ट्रीय रूप विविध प्रभावों के संगमन से ही बना है। इसके शब्द-भण्डार और उसकी शैली पर इन प्रभावों की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। आज समस्त भारतीय भाषाओं के मध्य हिन्दी शृंखला-भाषा बन गई है। इसे किसी प्रादेशिक शैली में बांधकर नहीं रखा जा सकता। राष्ट्र-भाषा में समूचे राष्ट्र का स्वरूप झलकना चाहिए। इससे ही हिन्दी अपना वास्तविक रूप निर्मित कर पायेगी।

यहां पर दो प्रकार के प्रश्न उठाये जा सकते हैं। विभिन्न भाषा के शब्द-समूहों और विभिन्न प्रकार के प्रयोगों से क्या भाषा के क्षेत्र में अराजकता नहीं उत्पन्न हो जायेगी ? यह आशंका सही संदर्भ में नहीं उठाई गई प्रतीत होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है और हिन्दी की भी अपनी विशिष्ट प्रकृति है। इस प्रकृति

की रक्षा करते हुए भी विभिन्न भाषाओं के प्रभावो को ग्रहण किया जा सकता है। बेमेल प्रभाव तो इसकी इन्द्रधनुषी कल्पना को ही नष्ट कर देगा। अत. यहा यह स्पष्ट कर देना है कि हिन्दी के शुद्ध रूप अथवा इसकी व्याकरण-सम्मतता आदि के विरोधी प्रयोग हर तरह से त्याज्य हैं। यदि कोई पंजाबी 'प्रणाम' के स्थान पर 'परनाम' लिखता है या कोई तमिल भाषी 'छाता' के स्थान पर 'चाता' लिखता है तो यह ग्राह्य नही हो सकता। इसी तरह वाक्य-रचना मे उद्देश्य और विधेय का मनमाना विधान भी नही चल सकता है। ग्राह्य तत्त्व कुछ और हैं और वे ही हिन्दी के इन्द्रधनुषी रूप को साकार करनेवाले हैं।

वस्तुत हर भाषा के अपने शब्द-समूह, रोजमर्रे, मुहावरे और प्रयोग होते हैं। ये बातें जनता और लेखको के मानस मे सस्कारत स्थित होती हैं और उनके लेखन मे मातृभाषा के ये सस्कार स्वत उतरते जाते हैं। ये शब्द, मुहावरे एव प्रयोग भाषा की निधि होते हैं। अत यदि अहिन्दी लेखको के लेखन के माध्यम से ये शब्द, ये मुहावरे और ये प्रयोग हिन्दी में अवतरित हो तो इनसे हिन्दी की समृद्धि ही होगी और इनका स्वागत भी होगा। यहा यह बताना अप्रासगिक नही होगा कि हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण मराठी पत्रकारो द्वारा चलाए गये मराठी भाषा के अनेकानेक प्रयोग आधुनिक हिन्दी में आ गये हैं और इनसे हिन्दी की अभिव्यजनाशक्ति बढी है।

हिन्दी मे बहुत-से ऐसे शब्दो की जरूरत है जो दूसरी भाषाओं मे हैं और जिनका हिन्दी से मेल भी बैठता है। उदाहरण के लिए यहा दक्षिण की भाषा का 'अक्का' शब्द प्रस्तुत किया जा सकता है। हिन्दी मे बडी बहन के लिए कोई अलग शब्द नही है। अत इस शब्द को ग्रहण किया जा सकता है।

इसी तरह मुहावरे और कहावतो को भी अपनाया जा सकता है। कहावत और मुहावरे हर क्षेत्र की भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक और सामाजिक-सास्कृतिक परिस्थितियो मे उपजते हैं। इनके माध्यम से कथ्य की सटीक व्यजना होती है। इनकी प्रभाव-क्षमता भी अचूक होती है। भारत का सपूर्ण ढाचा एक तरह का है। फिर भी प्रादेशिक विशेषताओं के कारण कुछ मुहावरे प्रदेश-विशेष तक सीमित रह गये, यद्यपि उनमे सपूर्ण भारतीय मानस को प्रभावित करने की क्षमता है।

ऊपर हिन्दी पर मराठी वाक्य विन्यास के प्रभाव की चर्चा हो चुकी है। मराठी की ही तरह अन्य भाषाओं के वाक्य-विन्यासो का भी अनुकरण किया जा सकता है। एक भाव के लिए यदि बगाली का वाक्य-विन्यास अधिक उपयुक्त होगा तो दूसरे के लिए दक्खिनी का हो सकता है। आवश्यकता प्रयोग की कसौटी पर चढाकर इन्हे पहचानने की है।

स्वस्थ लक्षण इस बात के हैं कि हिन्दी का इन्द्रधनुषी रग उभर रहा है। अनेक प्रादेशिक भाषाओं के रगो से मिलकर यह इन्द्रधनुष साकार होता जायगा। जिस प्रकार इन्द्रधनुष के अनेक रग होते हैं लेकिन मूल रग एक ही होता है, उसी प्रकार विभिन्न भाषाओं के रगो से मिलकर भी हिन्दी का मूल रग एक ही रहेगा। अत. इस इन्द्रधनुषी रूप के बारे में न किसी को आशकित होने की आवश्यकता है और न मनोवाञ्छित रूप से चिन्तित होने की।

इस सदर्भ मे हिन्दी के भावी रूप की कल्पना करते समय हमे इसके राष्ट्रीय

रूप का ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय रूप का भी ध्यान रखना होगा। विश्व हिन्दी की संभावनाए तेजी से बढती जा रही है। पिछले दो 'विश्व हिन्दी सम्मेलनो' से इस सभावना को काफी बल मिला है। वस्तुत नेपाल, मारीशस, फिजी, ट्रिनिडाड, गुआना जैसे देशो मे हिन्दी स्वदेशी भाषा के रूप मे विद्यमान है और उसके विकास एव समृद्धि के लिए हिन्दी सेवी महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इसी तरह बगलादेश श्रीलका, बर्मा, मलेशिया, केनिया, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में असख्य भारतीय मूल के लोगो की यह सपर्क-भाषा भी बनी है। इन राष्ट्रों मे भी अनगिनत हिन्दीसेवी कार्यरत हैं। इनके अतिरिक्त विश्व के अनेक देशो म हिन्दी के उच्च-स्तरीय अध्ययन-अध्यापन का कार्य भी चल रहा है। काफी महत्त्वपूर्ण लखन का कार्य भी हो रहा है। अत हिन्दी के इतिहास का पुनर्लेखन करते समय इन हिन्दी सेवियो की सेवाओ को विस्मृत नही करना होगा। हिन्दी के इन्द्रधनुषी रूप को साकार करते समय भी विश्व हिन्दी के इस रूप को दृष्टि मे रखना अत्यावश्यक है।

2

हिन्दी साहित्य को केरल की देन

डा० मलिक मोहम्मद तथा डा० रवीन्द्रनाथ

केरल के पुराने इतिहास से पता चलता है कि केरल के तीर्थ-स्थानों में वर्षों पूर्व ही हिन्दी का प्रवेश हो गया था। उत्तर से तीर्थाटन के लिए दक्षिण के तीर्थ-स्थानों में उन दिनों जो यात्री अथवा साधु सन्यासी आते थे, उनके द्वारा उन प्रदेशों में हिन्दी का व्यवहार होता रहा है। ऐसे तीर्थस्थानों की धर्मशालाओं अथवा सरायों के अधिकारी भी उत्तर भारतीय तीर्थाटकों से विचार-विनिमय करने के लिए हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। आज भी दक्षिण के तीर्थ-स्थानों में पुरानी पुरोहित-परंपरा के लोग उत्तर भारतीयों से हिन्दी में बातचीत करने-भर का कामचलाऊ ज्ञान रखते हैं।

उस जमाने में लोग यहां हिन्दी या हिन्दुस्तानी को 'गुसाई भाषा' या 'तुर्क भाषा' कहते थे। पहले यहां की रियासतों में तीर्थ यात्रियों के रहने के लिए सरायें या धर्मशालाएं सरकार की ओर से स्थापित होती थीं जिन्हें लोग 'गुसाई मठ' कहते थे। उत्तर से आनेवाले सभी तीर्थयात्री उन दिनों 'गुसाई' कहलाते थे। अत उनके ठहरने के स्थान को 'गुसाई मठ' और उनकी भाषा को 'गुसाई भाषा' कहना सर्वथा स्वाभाविक ही था। गुसाई मठों में ठहरनेवाले तीर्थाटकों की सुख-सुविधा की देख-रेख के लिए हिन्दी जाननेवाले दक्षिणी लोग द्विभाषियों के रूप में नियुक्त होते थे। द्विभाषियों के लिए हिन्दी में बोलने की योग्यता पाना अनिवार्य था। द्विभाषी बनने के लिए लोग स्वयं हिन्दी का अध्ययन करते थे। वे गुसाइयों से भी कभी-कभी बोल-चाल की हिन्दी सीख लेते थे। मलयालम लिपि में लिखी हुई 'हिन्दी स्वयंशिक्षक', 'हिन्दुस्तानी उस्ताद,' 'हिन्दी स्वबोधिनी' आदि पुस्तकें भी उन दिनों प्रचलित थीं। उत्तर के तीर्थ-स्थानों में काशी, हरिद्वार, वृन्दावन, ऋषिकेश आदि जाने के इच्छुक दक्षिण भारतीय लोग भी हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसी पुस्तकों का सहारा लेते थे। इससे पता चलता है कि वर्षों पूर्व ही केरलीय जनता में हिन्दी का प्रचलन, कम मात्रा में ही सही, होता रहा है।

प्राचीन काल में केरल के अन्तर्गत कई छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य थे। वहां के शासकों की सेना में रियासतों की तरह मराठा, राजपूत और पठान वंश के सैनिक भी नियुक्त होते थे। उनके साथ संपर्क बनाये रखने वाले केरलीय सिपाही और अन्य कर्मचारी हिन्दी में बोलने की योग्यता प्राप्त करना जरूरी मानते थे। पल्टन के संपर्क में आनेवाले अन्य लोग भी—व्यापारी, कारीगर, मजदूर, नाई, धोबी आदि हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान रखते थे।

भारत में मुगल सल्तनत के कायम होने पर दक्षिणी राज्यों की सेना में उच्च

कर्मचारी हिन्दुस्तानी में पर्याप्त योग्यता प्राप्त करना जरूरी समझते थे। जब हैदरअली और टीपू सुलतान ने केरल के प्रदेशों पर चढाई की तो उनके कारण वहा थोडी-बहुत मात्रा में उर्दू का भी प्रचलन हुआ था। 'मुसलमानो की भाषा' के अर्थ में उस समय लोग हिन्दी को 'तुर्क भाषा' कहने लगे। सैकडों अरबी और फारसी के शब्द उर्दू के प्रचलन के फलस्वरूप दक्षिणी भाषाओं में धीरे-धीरे घुल-मिल गये, जो आज भी अपने तत्सम और तद्भव रूपों में उन भाषाओं में प्रचलित हैं। कई शब्द ऐसे भी हैं जो इन दिनों अपने मौलिक अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ, मलयालम में प्रयुक्त होनेवाले सैकडों फारसी और अरबी के शब्द लिये जा सकते हैं।

केरल के प्रमुख बन्दरगाहों तथा अन्य व्यापार-केन्द्रों में वर्षों पहले से ही उत्तर भारत से मारवाडी, गुजराती और मुसलमान लोग व्यापार के लिए आते-जाते रहते थे। उनमें से कुछ लोग यहा बस भी गये है। वे अपनी टूटी-फूटी मातृभाषा मिश्रित हिन्दुस्तानी में यहा के लोगों से बातचीत करते थे। उनके साथ रोजमर्रा की बातचीत की जरूरत पडी तो उन व्यापार-केन्द्रों और बन्दरगाहों के लोग भी हिन्दुस्तानी सीखने लगे। आज भी सैकडों लोग उन केन्द्रों में रहते हैं जो अपनी उस पुरानी 'खिचडी हिन्दुस्तानी' में परस्पर विचार-विनिमय करते हैं।

मलयालम साहित्य में भी हिन्दुस्तानी का प्रभाव और प्रयोग पाया जाता है। मलयालम के प्रसिद्ध प्राचीन कवि, हास्य-सम्राट् स्व० कुंचन नंपियार की *'तुल्लल-कथा'* (कथानाट्य) की रचना में कहीं-कहीं हिन्दुस्तानी के वाक्यों का प्रयोग पाया जाता है। उनके 'स्यमंतक' नामक नृत्य-काव्य में दो गोसाई प्रेक्षकों का वार्तालाप दिया गया है। वे दोनों भोजन के समय हिन्दी में बातचीत कर रहे है

"जे जे राम राम सीता राम राम"
"जे जे राम राम कोदंड राम राम"
"तुम्हारा मुलुक कौन मुलुक ?"
"हमारा मुलुक काशी मुलुक।"
"तुम्हारा ठिक्काणी काहे रे बाबा ?"
"हमारा ठिक्काणी सीताराम।"
"ब्रह्मा देवो दावन दारो
अच्छा पानी डालो डालो
पत्ता लाओ, कारी लाओ।
मेस्तू लाओ, केली लाओ।
सुप्पारी लाओ सक्कर लाओ,
पूरी धारा, दस्तू लाओ।
धिका धारो तमाक्कु धारो
रेपो धारो, आजी वक्राथ"—इत्यादि

इससे यह बात सिद्ध होती है कि प्राचीन कवि कुंचन के काल में हिन्दी-हिन्दुस्तानी व केरल में प्रचलन था।

पहले ही तिरुवितांकूर और कोच्चिन के राजवंशों के लोग संगीत, साहित्य चित्र-रचना आदि ललित कलाओं में बडी अभिरुचि रखते थे और उनमें से कई-एक उन कलाओं में बडे निष्णात् भी हो गये थे। उन दिनों राजदरबारों में बडे-बडे धुरन्धर

विद्वान नियुक्त होते थे। राजघराने के लोगो की शिक्षा-दीक्षा का कार्य उन्हे सौपा जाता था। उत्तर-भारत से आनेवाले सस्कृत के पडितो का भी राजदरबार मे आदर-सम्मान होता था। ऐसे हिन्दीभाषी विद्वानो के सपर्क मे आने के कारण राजघराने के लोगो के लिए हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना एक प्रकार से अनिवार्य-सा हो जाता था।

केरल के राजाओ मे स्व० स्वाति तिरुनाल, श्री रामवर्मा, राजा अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा, गहरी विद्वत्ता, अनुपम सगीत-कला-कुशलता आदि के कारण सुविख्यात हो गये है। सगीत-शास्त्र के वे आचार्य थे। श्री स्वाति तिरुनाल महाराजा ने हिन्दी मे कई मधुर पद रचे हैं। अभी तक स्वाति तिरुनाल के 37 हिन्दी गीत ही कुल मिले हैं। इन गीतो मे श्रीकृष्ण, श्रीरामचन्द्र, श्रीपरमेश्वर, देवी तथा प्रियवार्ता एवं सामान्य भक्ति से सम्बन्धित गीत हैं। जयदेव तथा सूर के पदो की तरह ये भी अत्यत सरस तथा भक्तिपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ उनके दो पद नीचे उद्धृत हैं—

राग भैरवी—आदिताल

पल्लवी

रामचन्द्र प्रभु ! तुम बिन प्यारे कौन खबर ले मेरी।

चरण

बाज रही जिनकी नगरी मो सदा धरम की भेरी। रामचन्द्र···
जावे चरणकमल की रज से तिरिया तन कू फेरी। रामचन्द्र···
औरन कूँ कछु और भरोसा हमे भरोसा तेरी। रामचन्द्र···
पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी कृपा करो क्यो देरी। रामचन्द्र···

पूर्वी राग-चौताल

ऊधो, सुनिए मेरो सदेशा, चले जब से पिया परदेस।
गौवा तृणनीर त्याग किन्हीं, सबे ग्वाल बाल शोक कीन्हीं।
जल जमुना नहि भावै, घडी भर कुज कुम्हलावै। ऊधो···
हाथ मुरली, गले माला, चले जब नन्द के लाला।
मोहे व्रज के जो नरनारी, भूले कैसे मोको वनचारी। ऊधो···
जब लीनो जन्म व्रज मे, हरो सब ताप क्षण भर मे।
ऐसे प्रभु के वियोग सहै, कैसे हम धो सो छांडि रहै। ऊधो···
जा की महिमा पुकारे वेद, जा को नहि लोक लोक विभेद।
जा के बल ॥ हरे मन शूल, ताके मुखचन्द्र से वर दून। ऊधो···

महाराजा स्वाति तिरुनाल के हिन्दी गीतो का बडा ऐतिहासिक महत्व है। गीतो के अध्ययन से विदित होता है कि उन्होंने मुख्य रूप से व्रजभाषा मे ही गीतो का चयन किया है। लेकिन दक्खिनी हिन्दुस्तानी एव खडी बोली का भी पुट उनकी भाषा मे मिलता है। व्रजभाषा के साथ खडी बोली के रूपों को भी काव्य मे प्रश्रय देते हुए उन्होंने सर्वप्रथम दक्षिण मे हिन्दी का अखिल भारतीय समन्वित स्वरूप सामने रखा था।

केरल मे हिन्दी प्रचार की पूर्वपीठिका की चर्चा के सदर्भ मे केरल के उन दखिनी मुसलमानों का भी उल्लेख अनिवार्य है जिनके पूर्वज प्रमुख रूप से दक्खिन के

मुस्लिम राज्यों से केरल मे आकर बस गये थे। अठारहवी-उन्नीसवी शताब्दियों मे दक्खिनी के व्यावहारिक रूप हिन्दी से केरल का विशेष सम्बन्ध बना था। दक्खिनी मुसलमानो के बीच कई कवि भी हुए थे, जिनकी अधिकाश रचनाए अब नष्ट हो चुकी हैं। कहा जाता है कि उन्नीसवी शताब्दी मे तिरुवनन्तपुरम के नलर सा और अब्दुल जलील हजरत सूफी गीतकार थे। कण्णूर के 'अतहर' और तलस्सरी के कासिम भी बडे सरस कवि बताये जाते हैं। कासिम सा के एक 'तिल्लाना' गीत की कुछ पक्तिया हैं—

> बजे नक्कारे दनि के सारे
> धूध धनाधन धनधनाना।
> तबल पे धापा पडे पिपडधक
> गिडधन गिडधन गिडधनना
> अब रमझूम रमझूम नौर्दानया से
> हूम जुम हो जाए हुशियार,
> × × ×
> ऐ कासिम क्या खूब लिखा,
> तिल्लाने की हद और उसके बिना
> × × ×

उपर्युक्त बातो से यह सिद्ध होता है कि केरल मे हिन्दी या हिन्दुस्तानी का प्रवेश वर्षों पूर्व ही हो चुका था। धार्मिक, सास्कृतिक तथा व्यावहारिक क्षेत्रों मे उसका उपयोग-प्रचार स्वाभाविक ही था। प्राय सभी दक्षिणी प्रदेशो मे न्यूनाधिक मात्रा मे उस समय हिन्दी का व्यवहार जो हुआ, उसके मूल कारण एक समान रहे होंगे।

केरल मे हिन्दी-प्रचार आन्दोलन

सन् 1922 मे ही केरल मे राष्ट्रभाषा के रूप मे हिन्दी का सार्वजनिक प्रचार शुरु हुआ। स्व० दामोदरन उण्णि केरल के प्रथम हिन्दी प्रचारक माने जाते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्कालीन अधिकारियो ने उन्हे सन् 1922 मे हिन्दी प्रचारार्थ केरल भेजा था। केरल के कई केन्द्रो में हजारो लोगो ने उण्णिजी से हिन्दी सीखी। उनसे शिक्षा पाकर पचासो हिन्दी-प्रचारक तैयार हुए और भिन्न-भिन्न केन्द्रो में उनकी देख रेख में कार्य करने लगे। केरल के सभी प्रमुख केन्द्रो में हजारो की सख्या में स्त्री-पुरुष हिन्दी की ओर आकृष्ट हुए, जिसका पूरा श्रेय श्री उण्णिजी को है।

श्री दामोदरन उण्णिजी के बाद इस क्षेत्र में आनेवाले सुयोग्य हिन्दी-प्रचारक श्री पी० के० केशवन नायर थे। उन्होने केरल के कई केन्द्रो में हिन्दी-प्रचार का सराहनीय कार्य किया था। उनका प्रमुख केन्द्र पहले तिरुवनन्तपुरम रहा। दक्षिण केरल में हिन्दी प्रचार के कार्य क्षेत्र में उतरने वाले दूसरे उल्लेखनीय प्रचारको में स्व० शकरानन्द जी का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। उनकी शिष्य-परम्परा में कई हिन्दी प्रचारक तैयार हुए और वे सभी हिन्दी की सेवा में लगे हुए थे। उपर्युक्त तीनो सुयोग्य प्रचारक केरल के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। इन

दोनों की शिष्य-परम्परा के अन्तर्गत केरल-भर के अधिकांश प्रचारक गिने जा सकते हैं।

सन् 1927 से 1932 तक का समय केरल हिन्दी प्रचार-आन्दोलन के नवोत्थान का प्रथम चरण माना जा सकता है। इन पांच वर्षों में हिन्दी प्रचार की गतिविधि में काफी परिवर्तन हुआ। लोगों में उत्साह की मात्रा बढ़ी। सैंकड़ों नये केन्द्र खुले। प्रचारकों और विद्यार्थियों की संख्या काफी बढ़ी। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में आशातीत वृद्धि हुई। स्कूलों और कालेजों में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने की दिशा में प्रयत्न होने लगा। देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में जैसे-जैसे तीव्रता आती गई, हिन्दी प्रचार तथा अन्य रचनात्मक कार्यों की ओर जनता भी अधिकाधिक आकृष्ट होती गई।

सन् 1933 में प्रान्तीय कार्यों के संचालन तथा संगठन के लिए अन्य प्रान्तों की तरह ट्रावनकोर और कोच्चिन की हिन्दी प्रचार-सभा शाखाओं को संयुक्त बनाकर 'केरल प्रान्तीय हिन्दी प्रचार-सभा' की स्थापना की गई। स्व० देवदूत विद्यार्थी इसके मंत्री नियुक्त हुए। केरल के हिन्दी प्रचार-आन्दोलन का नेतृत्व करनेवालों में उनका स्थान सबसे ऊंचा है। केरल की हिन्दी-प्रेमी जनता उनकी अमूल्य सेवाओं के लिए उनकी चिरऋणी रहेगी।

इसी समय मध्य तथा उत्तर केरल के हिन्दी प्रचार-आन्दोलन की गतिविधि में पूर्वापेक्षा तीव्रता आ गई। सन् 1931 में स्वर्गीय श्री चन्द्रहासन एरणाकुलम में हिन्दी-प्रचारक नियुक्त हुए। दक्षिण के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने का उन्होंने अथक प्रयत्न किया था और केरल के स्कूलों के लिए हिन्दी पाठ्यक्रम, पुस्तक-निर्माण आदि में उनकी सेवाएं सराहनीय रही हैं। श्री ए० वासुमेनोन, श्री पी० के० नारायणन नायर, श्री सी० जी० गोपालकृष्णन उत्तर केरल की जनता में हिन्दी के प्रति उत्साह बढ़ाने वाले कर्मठ प्रचारक थे। श्रीमती कुट्टिमालु अम्मा, श्री के० पी० रामुण्णि मेनोन, स्व० पी० गोविन्दन नायर, श्री डी० बी० नम्पूतिरिपाद, स्व० श्री के० केलप्पन आदि सज्जनों की सहायता एवं सहयोग से ही उत्तर केरल के विभिन्न भागों में हिन्दी प्रचार का क्षेत्र सजीव हुआ।

आधुनिक युग में हिन्दी को केरल का योगदान

प्राचीन युग में महाराजा स्वाति तिरुनाल जैसे प्रतिभावानों ने मौलिक हिन्दी लेखन के क्षेत्र में जो कार्य शुरू किया था वह आधुनिक युग में हिन्दी प्रचार आन्दोलन के बाद काफी विकास एवं प्रगति प्राप्त कर सका। आधुनिक युग में हिन्दी में मौलिक एवं अनूदित रचनाओं का प्रकाशन करने के साधन बढ़े। एक ओर केरल से ही हिन्दी पत्रिकाएं निकलने लगीं और दूसरी ओर उत्तर की पत्रिकाओं में पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में केरलीयों की मौलिक एवं अनूदित हिन्दी रचनाएं प्रकाशित होने लगीं। केरल के वास्तविक योगदान को समझने के लिए उनके द्वारा प्रकाशित कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, गवेषणात्मक अध्ययन, निबन्ध, आलोचनात्मक ग्रन्थ आदि का विवेचन आवश्यक है। केरलीयों की मौलिक और अनूदित, दोनों प्रकार की हिन्दी रचनाओं को इस विवेचन के अन्तर्गत सम्मिलित करना आवश्यक है। क्योंकि केरल में हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि बढ़ाने में मौलिक हिन्दी रचनाओं की ही तरह

अनुवादो का भी विशेष योगदान रहा है। अत यहा हम प्रत्येक विधा पर स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे।

मौलिक कविताए

हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओ में, आधुनिक काल में, केरलीयो का सर्वाधिक योगदान कविता के क्षेत्र में है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बहुत पहले ही हिन्दी कविता-लेखन के क्षेत्र में केरल में काफी कार्य होने लगा था। स्वातन्त्र्य-पूर्वकाल की कविताए वस्तुत राष्ट्रीय चेतना एव स्वातन्त्र्य भावना की वाहिकाए थी। इस काल के प्रमुख केरलीय हिन्दी कवियो में श्रीमती लक्ष्मिकुट्टि देवी, श्रीमती भारती देवी, सर्वश्री टी०के० गोविन्दन तथा विमल 'केरलीय' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

श्रीमती लक्ष्मीकुट्टि देवी की कविताओ में उनकी 'आह्वान' शीर्षक कविता सबसे अधिक आकर्षक और लोकप्रिय रही है। यह कविता जुलाई 1929 की 'हिन्दी प्रचारक पत्रिका' में प्रकाशित हुई। दारिद्र्य, दु ख तथा विदेशी शासन से मुक्त होने का सकल्प और तदर्थ चरम बलिदान की भावनाए इस कविता मे भर आई हैं। वस्तुत स्वातन्त्र्य सग्राम की बलिवेदी पर उतरने वालो के लिए यह कविता प्रेरणादायक रही जिसमें अन्धकारमय जीवन में नया आलोक लाने की घोषणा हुई है—

> रात बहुत अधेरी है, मार्ग अगोचर है,
> अपने मधुर आलोक से मार्ग साफ करो।
> जगत् दु खाच्छादित है, निराशा और तमिस्रा छाई हुई है।
> आर्तनाद से पवन भी व्याकुल है।
> ... ..
> आओ असत्य से सत्य की ओर अन्धकार से प्रकाश की ओर,
> और मृत्यु से मुक्ति की ओर प्रेरित करो।
> अस्फुटित सुमन, कलिया निर्दय के अत्याचार स म्लान हो रही हैं।
> नवजीवन प्रदान कर उन्हे प्रस्फुटित करो।

इसी प्रकार 'पिंजरबद्ध पक्षी' शीर्षक उनकी गद्य-कविता, जो नवम्बर 1929 के 'हिन्दी प्रचारक में प्रकाशित हुई, स्वातन्त्र्य की महिमा उद्घोषित करती है।

श्रीमती भारतीदेवी की कविताओ का भी आधार स्वातन्त्र्य की तीव्र अभिलाषा है। उनकी कविताओ मे भावो का समुचित उत्कृष्ट धरातल पर हुआ है। उदाहरणार्थ 'हिन्दी प्रचारक' के जुलाई 1923 के अक मे प्रकाशित उनकी कविता 'हे सध्ये' की कुछ पक्तिया प्रस्तुत हैं—

> हे सन्ध्य, रजनी अन्धकारमय है, पीडाजनक है,
> मुझे निष्प्राण बनाने वाली है।
> हे सन्ध्ये, तुम उदारमना हो, शान्तिदायिनी हो, श्रमहारिणी हो।
> हे सन्ध्य, तुम दिन के उज्ज्वल प्रकाश और रात्रि के
> अन्धकार दोनो के बीच मध्यस्थ की तरह प्रतिष्ठित हो।
> तुम रजनी की अग्रदूती हो, किन्तु तुम रम्य प्रकाश की
> स्नेहमयी मित्र हो।
> मैं उषा की पुजारिन हू तो भी अब तुम्हारी पूजा करूगी।

श्री टी० के० गोविन्दन की कविताओं का आधार गांधीजी का जीवन-दर्शन है। राजनीतिक क्षेत्र में गांधीजी के जो बहुमूल्य विचार थे, वे ही थीं टी० के० गोविन्दन के लिए प्रेरणादायक तत्त्व रहे। अत: उनकी कविताओं में अस्पृश्यता, दासता, अनाचार, स्त्रियों की विवशता, श्रमजीवियों की दयनीय अवस्था, किसानों का दाहक दारिद्र्य आदि प्रश्न कवि के हृदय का मथन करते हैं। सितम्बर 1933 के 'हिन्दी प्रचारक' में उनकी एक कविता 'अछूत की आह' शीर्षक से मुद्रित हुई है, जो इन्हीं तथ्यों पर प्रकाश डालती है—

हाय कुओं से जल भरने का
हमें वहीं अधिकार नहीं,
विद्यालय में पढ़ने का भी
हमें पूर्ण अधिकार नहीं।
विभो! तुम्हारे दर्शन को हम
मन्दिर में जब जाते हैं
इन निष्ठुर लोगों से हा हा!
दूर भगाये जाते हैं।

श्री विमल 'केरलीय' की कविताओं का दार्शनिक आधार प्रबल है। विषयानुरूप उनकी भाषा प्रौढ़ एवं शान्त रहती है। अगस्त 1935 के 'हिन्दी प्रचारक' में प्रकाशित उनकी कविता 'प्राणवायु' उनकी दार्शनिकता को घोषित करनेवाली है—

यह कुंभ यहां रह जाता,
यह अम्बु कहां बह जाता है,
पहले तो इसमें था जल भर,
टपक रहा छेदों में बाहर।
कितना बचा न जाने भीतर,
कब तक यह चुप रह जाता है!
मूल्य नहीं क्या कुछ भी इसका
आवेगा कब वह दिन किसका
हा! अब न कहा वह जाता है•

स्वातन्त्र्य-पूर्वकाल में प्रकाशित केरलीय हिन्दी कवियों की रचनाओं में श्री टी० के० रामन मेनोन की 'साधित करो' और श्रीमती बी० अम्मिणी की 'नारी' शीर्षक कविताएं भी अत्यन्त लोकप्रिय रही हैं। अक्तूबर 1941 के 'हिन्दी मित्र' में प्रकाशित मेनोन की कविता 'साधित करो' सुकुमार भावनाओं और कोमलकांत पदावली से शोभित है। श्रीमती अम्मिणी की कविता 'नारी' भारतीय नारी के लिए नये उद्बोधन की वाहिका है—

क्या नारी तुम हो अबला?
दिखला दो अपने को सबला।
पुरुषों से लो अपना बदला••
नहीं छोड़ दो पर, प्रेम कला।
जागो नारी, जागो नारी
क्रान्ति मचाओ जग में भारी••

पचशील मन्त्र आलोक चिर,
रहेगा फैलाता धरा पर।
भौतिकता की तूती बोले,
विज्ञान ग्रहान्तर गमन करे।
युगान्तर कर डाले लालसा,
तब भी गांधी-मार्ग चलेगा।
... .

आधुनिक हिन्दी काव्य-प्रवृत्तियाँ की सभी सामान्य विशेषताएं श्री० नायर की कविताओं मे प्राप्त होती हैं। उनकी कुछ कविताएं इतिवृत्त प्रधान हैं तो कुछ कविताओं मे प्रयोगवादी कवियो की-सी ध्वनि मिलती है। 'चिरजीवी' नाम की उनकी एक प्रकाशित कविता इस सत्य को प्रमाणित करती है—

चिर सत्य,
जो मानव प्रतिभा का
मधुर वाहन बन बढ
आया यहा तब, आज अज्ञ
अधकारमय गर्व में होता जा रहा विलीन।
धर्म अधर्म मे,
पुण्य पाप म, सत्यासत्य मे
साधन लक्ष्य म पडा है कठिन अतर।
हे भारत के भाव-जगत् के सरक्षक देव,
अवतरित हो बचाए फिर एक बार भू को॥

श्री मुत्तूर राघवन नायर का एक कविता सग्रह 'तारापथ' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस समाहार मे हमे एक ऐसे कवि की झाकी मिलती है जो दार्शनिक, प्रकृति के गायक और भारतीय सस्कृति के उपासक है। 'तारापथ' के कवि का भगवान से यह निवेदन है कि अपना हृदय नभ के समान अनत विस्तृत हो जाय और आज के युवक धर्ममार्ग पर अग्रसर हो जायें। भाषा का प्रसाद और अलकारो का औचित्य श्री मुत्तूर की कविताओं की विशषताएं हैं। 'तारापथ' की प्रथम कविता की पक्तियां दृष्टव्य हैं—

सुर तटिनी के सित फेना-से
मानसरोवर के मीनो-से
कल्प महीरुह के सुनो से
बुध पुर के दीप विधानो-से
उदित हुए ऊपर चमकीले
ये तारे कहलाने वाले
तम को दूर भगानेवाले
जग को नित्य जगानेवाले।
ईश्वर मेरे मन को भी तू
तारापथ सा विस्तृत कर दे!

अब शारद-तारो से सुन्दर
सुखकर-प्रतिबिंबो से भर दे।

डा० विजयन की कविताए व्यग्यप्रधान हैं। विविध अवसरो पर लिखी गई उनकी तेइस कविताओ का एक समाहार 'कथ्य और तथ्य' नाम से निकल चुका है। इस समाहार की कविताओ मे कवि ने अपने जीवन मे भोगे हुए कुछ क्षणो को वाणी देने का प्रयत्न किया है। कवि का व्यग्य भाषा की व्यजना शक्ति से गहरी चोट करने मे समर्थ है। 'क्रुद्ध छात्र', 'शोध छात्रा', 'विशेषज्ञ', 'विधाता', 'सर्वज्ञ' जैसी कविताए इस सत्य को पुष्ट करनेवाली हैं। उदाहरण के रूप मे 'क्रुद्ध छात्र' की पक्तिया प्रस्तुत हैं—

सनसन कर आते हैं,
उनचासो पवन,
क्रुद्ध
क्रुद्ध छात्र,
अतृप्त युवा-पीढी
हो हल्ला मचाकर
परीक्षा भवन से जा रहे हैं,
उठाकर उत्तर-पुस्तकें।
नकल मना है,
इसीलिए सग्राम है।
खडे हैं डरे हुए कपित तरु-पादप
नही,
ये परीक्षा के निरीक्षक,
छात्रों के आक्रमण से भीत।

इस सदर्भ मे और दो काव्य-सग्रह—श्री आनन्दशकर माधवन का 'दीपाराधना' और श्री पी० वी० वर्गीस का 'नेहरूजी'—उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त नई पीढी के कुछ तरुण भी मौलिक हिन्दी कविता-लेखन के कार्य म आज लगे हुए हैं, जिनमे से श्री वल्लिक्कुन्नु अच्युतन और सी० पी० राजगोपालन नायर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अगस्त 1974 की 'साहित्य मण्डल पत्रिका' मे प्रकाशित श्री वल्लिक्कुन्नु अच्युतन की कविता 'प्रतीक्षा' अपनी चित्रात्मकता एव प्रतीकात्मकता के लिए अनुपम है। "स्कूल के प्रागण मे बच्चो की असेंबली चल रही थी। उन नन्हे-नन्हे कोमल बालको के माथे पर सडी हुई आकाक्षाओ की बदबूदार पानी की बूदें झलक रही थी।" इस दृश्य के साथ ही कवि उस प्रागण म अकेले पडे हुए एक बकरी के बच्चे का चित्र प्रस्तुत करते हैं—

अजगर गति से 'जन गण मन' रेंग रहा था,
मानो किसी का अन्तर्मन कराह रहा था।।
उस रेतीले मैदान मे, अजब सभा के बीच,
इस बकरी का बच्चा छूट गया था,
खडा रहा था।
दुबला पतला मरियल बकरी का बच्चा

खड़ा रहा था ।
उसकी रग-रग में
अजनबीपन दीख रहा था ।
उसके मुह में कुछ भी न धरा था,
फिर भी वह कुछ चबा रहा था ।
शायद कल के मीठे सपनों की
हल्की-हल्की यादों को जुगाल रहा था ।
कहीं कुछ खाज रहा था,
अति विवश बन,
आस लिये वह देख रहा था,
इक सूखे-पीले पत्ते के झरने को ।

श्री सी० पी० राजगोपालन नायर की कविता 'यादों की कब्र में' (दिसंबर 1974 की 'साहित्य मण्डल पत्रिका' में प्रकाशित) निराशा और मोहभग में पड़े हुए अस्तित्वान्वेषी आधुनिक मनुष्य का चित्र प्रस्तुत करती है । इस मनुष्य के लिए अपना खून प्यारा है लेकिन दूसरों के दुख-दर्द को देखने के लिए उसकी आखों में खून नहीं है—

दहक रहे हैं हम—युग-युग से ।
हमारे मन में,
वचन में,
कर्म में,
आज अस्तित्व का प्रश्न है ।
"निर्मास के पहले अस्तित्व" ।
नींद में भी कोई नहीं बता सकता ।
खो रहे हैं निज अस्तित्व पागल,
सभ्रात सभी ।
फिर भी नारा है,
गली-गली का नारा है,
खून हमारा प्यारा है ।
(खून आखों में नहीं है ।)

यहा नाम लेकर जिन कवियों का उल्लेख किया गया है उनके अतिरिक्त बहुत ही अन्य श्रेष्ठ साहित्य आराधक केरल के हिन्दी कविता-लेखन के क्षेत्र में आज भी कार्य कर रहे हैं । उनकी कविताए उत्तर तथा दक्षिण की पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं । इनमें सर्वश्री वी० ए० केशवन नपूतिरी, वी० के० एस० नपूतिरी, करिक्कम रामचन्द्रन, इरिङ्गल्लूर गोपालन, श्रीमती मीरा तथा श्रीमती अन्नम्मा कुर्यन के नाम स्मरणीय हैं ।

हिन्दी में अनूदित मलयालम कविताए :

काव्यानुवाद के क्षेत्र में अब तक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं । केरल के अनेक लोकप्रिय कवियों की कविताओं के अनुवाद अब तक 'धर्मयुग', 'माध्यम', 'आजकल',

'युगप्रभात', 'राष्ट्रवाणी', 'केरल ज्योति' 'केरल-भारती' आदि उत्तर और दक्षिण की हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं की तरफ से अनूदित मलयालम कविताओं के संकलन भी प्रकाशित हुए हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने मलयालम के प्रमुख कवियों को 'कविश्री माला' के अन्तर्गत परिचित कराने का स्तुत्य प्रयास बहुत पहले ही किया है। साहित्य अकादमी के 'भारतीय कविता-संग्रहों' में मलयालम कविताओं का गद्यानुवाद प्रस्तुत किया जाता था। इस प्रकार साहित्य अकादमी के लिए मलयालम कविताओं का गद्यानुवाद श्रीमती रत्नमयीदेवी ने किया है। कविश्री माला के अन्तर्गत वल्लत्तोल नारायण मेनोन और जी० शंकर कुरुप की कविताओं का अनुवाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के लिए श्री० एम० श्रीधर मेनोन ने किया है।

श्री जी० शंकर कुरुप की ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त रचना 'ओटक्कुषल' (बांसुरी) का प्रकाशन ज्ञानपीठ की ओर से ही हुआ है। अनुवादक कार्य में केरलीय विद्वान तथा हिन्दी भाषी कवि का समन्वित प्रयास है। 'बांसुरी' के अनुवादक श्री नारायण पिल्लै और श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन हैं। गद्यानुवादों की अपेक्षा 'बांसुरी' का पद्यानुवाद अधिक आकर्षक हो गया है। ज्ञानपीठ वालों ने ही कुरुप जी की कविताओं का अनुवाद—'एक और नचिकेता' हिन्दी में प्रकाशित किया है।

मलयालम कविताओं के हिन्दी अनुवाद-कार्य में उल्लेखनीय योगदान डा० जी० गोपीनाथन का भी है। उन्होंने मलयालम के नये कवियों की चुनी हुई कविताओं का अनुवाद किया है। संकलन की एक विस्तृत भूमिका भी है जो मलयालम की आधुनिक कविता के ऐतिहासिक विकास तथा प्रवृत्तिगत विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। मलयालम के प्रतिष्ठित आधुनिक कवियों में से सर्वश्री एन० वी० कृष्णवारियर, अय्यप्प णिक्कर, एन० एन० कक्काड, एम० एन० पालूर, आट्टूर रविवर्मा, सच्चिदानन्दन, ञ्जण्णी और श्रीमती सुगतकुमारी की कविताओं का अनुवाद संकलन में प्राप्त है। लयालम के इन कवियों की प्रतिनिधि कविताओं को स्थान देने में सावधानी बरती गई। अनुवादक मलयालम कविताओं का भाव हिन्दी में ठीक समझाने में निस्संदेह सफल ए हैं। उदाहरणार्थ श्री एन० वी० कृष्णवारियर की 'मोहनदास गांधी और नाथू-राम गोडसे' शीर्षक कविता की आरम्भिक पंक्तियों का अनुवाद नीचे उद्धृत है—

क्यू में, चावल खरीदने
धक्का खाते हुए खड़ा है गांधी,
बड़ी कार में बैठकर,
पास से गुजर रहा है गोडसे।
प्रत्येक बोरा चावल
पच्चास रुपये नफे पर बेच कर,
स्टाक खाली करने से
दुनिया को सुन्दर महसूस कर,
मदिरा, ताश व दोस्ती की तलाश में
क्लब पहुंचने में उतावला—
सज्जन व्यापारी है गोडसे।"

काव्यानुवाद की प्रवृत्ति के प्रति अतिशय प्रेम के कारण केरल के कुछ हिन्दी

प्रेमी विशेष शिल्पविधि के प्राचीन केरलीय काव्य रूपों का भी अनुवाद उसी शिल्पविधि के अनुसार करने लगे हैं। केरल के प्राचीन कवितामय नाट्यरूप कथकलि तथा तुल्लल प्रसिद्ध हैं। ये दोनों श्रव्य काव्य होने पर भी ताल-लय से युक्त होने के कारण दृश्य काव्य की कोटि में भी पूर्णतः आ सकते हैं। इनका ताल-लय बिल्कुल केरलीय है, जिसको हिन्दी में ज्यों का त्यों रूपान्तरित करना कठिन कार्य है। लेकिन अब तक इस क्षेत्र में काफी कार्य हुआ है। कथकलि के गीतों के अनुवादकों में सर्वश्री सोमवर्म राजा और पण्डित नारायण देव के नाम स्मरणीय हैं। तुल्लल गीतों के अनुवादकों में श्री चात्तुकुट्टि सर्वप्रथम हैं। चात्तुकुट्टि ने कई मौलिक कविताएं हिन्दी में रची हैं। इसके साथ ही अनुवाद के क्षेत्र में भी उनकी महत्त्वपूर्ण देन है। उन्होंने मलयालम के सर्वप्रथम जनकीय कवि कुंचन नंपियार की 'कल्याण सौगन्धिकम्' तुल्लल गाथा का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया है। तुल्लल गाथायें अक्सर तुकबन्दी होती हैं। अनुवादक ने भी अनुवाद को तुकान्त बनाने की भरसक कोशिश की है। उदाहरणार्थ :

कल्लोल जाल की कोमलता देखा
माणिक्य रंग का कमल सुम देखा
खोलती सुन्दरी व्यूह को देखा
'कल' 'कल' निनाद भर जलकण भी देखा।

इन संग्रहों के अतिरिक्त विविध पत्र-पत्रिकाओं में भी मलयालम से अनूदित हिन्दी कविताएं प्रकाशित हो चुकी हैं। श्री वी० के० मूत्तत् ने वल्लत्तोल नारायण मेनोन तथा सी० माधवन पिल्लै की कविताओं का हिन्दी में अनुवाद करके 'राष्ट्रवाणी' के 1952-54 के अंकों में प्रकाशित किया है। वल्लत्तोल की प्रसिद्ध कविता 'एन्टे गुरुनाथन' का अनुवाद भाव और शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इसी प्रकार श्री के० चात्तुकुट्टी के अनुवाद में भी मूल की-सी सरसता प्राप्त होती है। महाकवि कुमारन आशान की कविता 'वीण पूव्' का अनुवाद श्री चात्तुकुट्टी ने मूल के ही छन्द में किया है।

श्री टी० के० भास्कर वर्मा सफल व्यंग्यकार के साथ ही सफल काव्यानुवादक भी हैं। कुमारन आशान के खण्ड काव्य 'चण्डाल भिक्षुकी' का अनुवाद उन्होंने 'केरल ज्योति' के सन् 1973 के अंकों में खण्डशः प्रकाशित किया है। श्री के० आर० वारियर ने वल्लत्तोल के राष्ट्रीय गीत 'पोरा पोरा नालिल नालिल' का हिन्दी अनुवाद 'केरल भारती' दिसम्बर 1973 के अंक में 'झण्डा गीत' नाम से प्रकाशित किया है।

उपर्युक्त अनुवादकों के अतिरिक्त डा० विश्वनाथ अय्यर, श्री चन्द्रशेखरन नायर, कुन्नुकुषी कृष्णन कुट्टी, श्री पी० के० वेणु आदियों ने भी मलयालम कविताओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये हैं। अब नई पीढ़ी की कुछ उभरती प्रतिभाएं भी इस क्षेत्र में कार्य कर रही हैं।

मौलिक कहानियां

स्वातन्त्र्य-पूर्व काल से आज तक केरल में मौलिक हिन्दी कहानी-लेखन का कार्य निरन्तर चलता आ रहा है। स्वातन्त्र्य पूर्व काल के केरलीय हिन्दी कहानीकारों की रचनाओं में सर्वश्री पी० के० केशवन नायर, एम० पी० माधव कुरुप, सी० जी० गोपालकृष्णन, एन० वेंकिटेश्वरन और श्रीमती माधविकुट्टि की कहानियां विशेष रूप से

उल्लेखनीय हैं। 'हिन्दी प्रचारक' जैसी पत्रिकाओं में इनकी कहानियां प्रकाशित हुई हैं। गांधीवादी सिद्धान्तों से प्रभावित थी पी० के० केशवन नायर की प्राय सभी कहानियों का आधार आदर्शात्मक जीवन-पद्धति की व्याख्या है। अक्तूबर-नवम्बर 1929 के 'हिन्दी प्रचारक' में प्रकाशित उनकी कहानी 'मेरा सुख-स्वप्न' देश प्रेम की महिमा घोषित करती है। प्रस्तुत पत्रिका के जून 1932 के अंक में उनकी 'मुर्दे' नाम की एक कहानी प्रकाशित हुई थी, जिसमें पारिवारिक समस्याओं की चर्चा है।

दिसम्बर 1931 के 'हिन्दी प्रचारक' में प्रकाशित श्री सी० जी० गोपालकृष्णन की कहानी 'पुनर्मिलन' और जुलाई 1932 के अंक में प्रकाशित श्रीमती माधविक्कुट्टि की 'परीक्षा शुल्क' जैसी कहानियां भी आदर्शवाद पर आधारित हैं। आदर्शवाद के परिवेश में कृतियों को प्रस्तुत करना वस्तुत उस समय की एक सामान्य साहित्यिक प्रवृत्ति रही थी। भाव और भाषा, दोनों दृष्टियों से स्वातन्त्र्यपूर्व काल की ये कहानियां स्वातन्त्र्योत्तर काल के हिन्दी कहानीकारों के लिए प्रेरणा-स्रोत और मार्गदर्शक रही हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में केरल के हिन्दी कहानी-लेखन के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। केरल की हिन्दी पत्रिकाओं की ओर से इस दिशा में जो योगदान हुआ है, वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। इन पत्रिकाओं ने मौलिक कहानी-लेखन को काफी प्रोत्साहन दिया। 'अरविन्द', 'आयंकेरली', 'केरल भारती', 'राष्ट्रवाणी', 'युग प्रभात' जैसी केरल की हिन्दी पत्रिकाओं के पुराने अंकों में केरलीय लेखकों की मौलिक कहानियां बिखरी पड़ी हैं जिनमें श्री के० परमेश्वरन पिल्लै की कहानी 'ढाई अच्छर' और श्री रजन की 'लेखक की चालाकी', श्री के० कृष्ण मेनोन की 'छ रुपये तीन आने' उल्लेखनीय हैं। 'केरल भारती' बीच-बीच में केरल के हिन्दी विद्यार्थियों और लेखकों के लिए कहानी-प्रतियोगिता चलाती थी जिससे नई प्रतिभाओं को विकास प्राप्त करने का सुअवसर भी मिलता रहा।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के केरलीय हिन्दी कहानी-लेखन के क्षेत्र में स्व० विद्वान के० नारायण और श्री चन्द्रशेखरन नायर की देन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। स्व० विद्वान के० नारायण की कहानियां हिन्दी की प्राय समस्त प्रशस्त पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। उनकी लगभग पचास कहानियां प्रकाशित हैं। कथा-लेखन की उनकी अपनी शैली है और व्यक्तित्व के अनुकूल ही उनकी कहानियां हास्य-व्यंग्य प्रधान हैं। इस दृष्टि से उनकी कहानियों में 'प्रेम प्रकटन', 'मिस्टर अन्दाज', 'करुणा की जीत', 'डाइरेक्टर का रिमार्क', 'पीपल का भूत', और 'कद्रदान' विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

श्री एन० चन्द्रशेखरन नायर की लेखनी साहित्य की विभिन्न विधाओं में समान रूप में गतिशील है। लेकिन हिन्दी कहानी-लेखन के क्षेत्र में उनकी अपनी जो देन है, वह प्रशंसनीय है। 'हार की जीत' उनकी आठ प्रतिनिधि कहानियों का सकलन है। कहानियों में अलग-अलग शैलियों का निर्वाह किया गया है, परन्तु उनमें नयेपन का दुराग्रह कहीं नहीं है। श्री नायर की कहानियां आस्तिकता और सोद्देश्यता का परिप्रेक्ष्य रखती हैं। प्रस्तुत सकलन की कहानियां भाषा-शैली की दृष्टि से सुबोध और मार्मिक भी हैं।

डॉ० रामन नायर का एक कहानी सग्रह 'बाइबिल की कहानियां' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस सग्रह में लेखक ने बाइबिल की लोकप्रिय कहानियों को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है। श्रीमती एस० पद्मकुमारी, श्रीमती एस० आर०

सुशीला, श्री ए० अरविन्द, तथा श्री अब्दुल करीम, आदि मलयालमभाषी युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि हिन्दी कहानीकार हैं।

व्यग्य-चित्र :

केरलीय हिन्दी व्यग्य-चित्रकारो मे डा० वी० गोविन्द शेणाय और श्री पी० के० भास्करवर्मा प्रमुख हैं। इन दोनो के अनेक व्यग्य लेख पत्र-पत्रिकाओं मे बिखरे पडे हैं। डॉ० गोविन्द शेणाय के तो अब तक 'मिस्टिक साहब का कुर्ता' और 'भागे कौन हवाल' नाम के दो व्यग्य-चित्र सग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'मिस्टिक साहब का कुर्ता' सन् 1961 मे प्रकाशित हुआ और 'भागे कौन हवाल' 1971 मे। उनके व्यग्य-चित्रो की सबसे बडी विशेषता उनमें प्राप्त होने वाली व्यग्य की तीक्ष्णता है। यह तीक्ष्णता भाषा को विशेष रूप से प्रभावपूर्ण बनाती है। सितम्बर 1973 की 'केरल ज्योति' में प्रकाशित 'साकल' शीर्षक व्यग्य कहानी की भाषा-शैली इस तथ्य को साबित करने वाली है—"... सेठ जी समाजवादी हैं। और अपनी मिल के मजदूरों के स्वय नेता हैं" अनुशासनहीनता और अकर्मण्यता के अपराध के लिए उन्होने अठारह मजदूरो को नौकरी से हटा दिया है। समाजवाद का आदर्श सगठित श्रम है। अत सेठ जी अनुमोदन अभिनन्दन के अधिकारी व्यक्ति है। भाषण की समाप्ति पर सेठ जी ने अपनी कसी हुई मजबूत दोनो मुट्टिया ऊपर उठाई और वे 'समाजवाद जिन्दाबाद' का नारा लगाने ही वाले थे कि साकल जोर से झनझनाकर टूट गयी और भैंस मच की ओर दौडी।"

श्री टी० के० भास्करवर्मा भी सशक्त व्यग्यकार हैं। उनके कई व्यग्य चित्र प्रकाशित हुए हैं, जिनमे स 'केरल ज्योति' के मई 1971 अक मे प्रकाशित 'आपकी भलाई के लिए' तथा अप्रैल '73 अक म प्रकाशित 'छिप छिप मामा' और नवम्बर '73 मे प्रकाशित 'चेतावनी' विशेष स्थान रखते हैं। हास्य की भूमिका निभाने योग्य हिन्दी के ठेठ प्रयोगो को उन्होने अपने लेखो मे बिठाया है। भाषा की चित्रात्मकता की दृष्टि से भी इनके व्यग्य चित्र ऊचे स्तर के सिद्ध होगे।

साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा हिन्दी में व्यग्य-चित्रो की रचना बहुत कम हुई है। इस स्थिति मे केरल के इन दोनो लेखको का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जायगा।

हिन्दी मे अनूदित मलयालम कहानिया

मलयालम कहानियो के हिन्दी अनुवाद मे अब तक प्रशसनीय प्रगति हुई है। प्राय सभी उच्चस्तरीय हिन्दी पत्रिकाओ में हिन्दी मे अनूदित मलयालम कहानियो का प्रकाशन हुआ है। मलयालम कहानियो के दो-तीन सकलन दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इण्डिया जैसी सस्थाओ की ओर से हिन्दी में निकल भी चुके हैं। मलयालम कहानियो के हिन्दी अनुवाद-कार्य में सर्वाधिक सफलता सर्वश्री के० रविवर्मा, पी० जी० वासुदेव, एम० एन० सत्यार्थी, एस० लक्ष्मण शास्त्री, प० नारायण देव वी० डी० कृष्णन नबियार तथा सी० आर० नाणप्पा ने प्राप्त की है।

मलयालम के लोकप्रिय कहानीकारो में से सर्वश्री तकषी शिवशकर पिल्लै, एस० के० पोट्टक्काड तथा पी० केशवदेव की कहानियो का अनुवाद हिन्दी में ज्यादा हुआ

है। श्री० एम० के० पोट्टक्काड की मलयालम कहानियों के एक संकलन का अनुवाद श्री एस० लक्ष्मण शास्त्री ने किया है। सन् 1957 के 'युग प्रभात' के अंकों में मलयालम की प्रतिनिधि कहानियों के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं जिनमें श्री एस० के० पोट्टक्काड की 'ऊंट', श्रीमती ललिताम्बिका अन्तरज्जनम की 'लंबी प्रतीक्षाएं', श्री नतनार की 'बन्दरों के बीच का जीवन', टी० पद्मनाभन की 'जो जीना भूल गया', श्री के० टी० मुहम्मद की 'हंसनेवाली छुरी', श्री पोन्कुन्नम वर्की की 'प्रकाश की ओर', श्री एन० पी० मुहम्मद की 'भलों की दुनिया', श्री मलयाट्टूर रामकृष्णन की 'क्रीडा', श्री कोविलन् की 'श्मशान में' आदि कहानियों के अनुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं। सितम्बर 1973 के 'केरल ज्योति' कहानी विशेषांक में श्री कारूर नीलकंठ पिल्लै की कहानी 'उत्पान का धुआं' का हिन्दी अनुवाद पं० नारायण देव ने किया है। श्री सी० आर० नाणप्पा ने ही तकषी की कहानी 'वह वापस आएगा' और उरूब की कहानी 'बनाया लगान' के अनुवाद 'केरल ज्योति' के अंकों में प्रकाशित किए हैं। अभी मलयालम कहानियों का यह हिन्दी रूपांतरण निरंतर रूप से चलता है। आधुनिक मलयालम कहानीकारों में से श्रीमती माधविक्कुट्टी, सर्वश्री एम० टी० वासुदेवन नायर, पुनत्तिल कुंजब्दुल्ला, काक्कनाडन आदि की भी प्रतिनिधि कहानियों के अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं। अब तक मलयालम से हिन्दी में अनूदित एवं प्रकाशित कहानियों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मलयालम कहानियों के हिन्दी अनुवादकों को आशातीत सफलता मिली है। सचमुच काव्य के समान कहानी के भी क्षेत्र में अनुवाद का कार्य अधिक सफल और लोकप्रिय रहा है।

हिन्दी में अनूदित मलयालम उपन्यास :

मलयालम के सर्वश्री चन्तु मेनोन, के० माधव पणिक्कर, तकषी शिवशंकर पिल्लै, माहम्मद बशीर, पी० केशवदेव, के० दामोदरन, नन्तनार, वेट्टूर रामन नायर, मलयाट्टूर रामकृष्णन, एम० टी० वासुदेवन नायर जैसे प्रसिद्ध उपन्यासकारों के चुने हुए उपन्यासों में से कुछ हिन्दी में अनूदित और प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ अभी अनूदित हो रहे हैं।

मलयालम के लोकप्रिय उपन्यासकार श्री तकषी शिवशंकर पिल्लै के तीन उपन्यासों—'चेम्मीन' (मछुआरे), 'रंटिडंगषी' (दो सेर धान) और 'तोट्टियुटे मकन्' (चुनौती) का अनुवाद हिन्दी में श्रीमती भारती विद्यार्थी ने किया है। मछुओं की हर्ष विषादमय जीवन-गाथा 'मछुआरे' के कथानक का आधार है। स्थानीय रंग की अधिकता प्रस्तुत उपन्यास की विशेषता है और इसी विशेषता ने अनुवाद-कार्य में अनुवादिका को अधिक सजग रहने की प्रेरणा दी है। इसी प्रकार 'दो सेर धान' और 'चुनौती', दोनों के कथानक भी केरल के एक खास अंचल कुट्टनाट के खेत-मजदूरों के जीवन पर आधारित हैं। निम्न मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय समाज के पात्र और घटनाएं ही इनमें आती हैं और दैनिक जीवन के व्यवहार की बातें ही इनमें मिलती हैं। इस वैशिष्ट्य के कारण ग्रामीण व्यावहारिक मुहावरेदार भाषा इन उपन्यासों की विशेषता है। इन तीनों उपन्यासों के अनुवादों में अनुवादिका ने बड़ी होशियारी से मूल का प्रभाव बनाए रखने का प्रयत्न किया है।

श्रीमती रत्नमयीदेवी दीक्षित द्वारा अनूदित और साहित्य अकादमी द्वारा प्रका-

दित श्री के० माधव पणिक्कर का 'केरल सिंह' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। शायद यही एक मलयालम का ऐतिहासिक उपन्यास है जिसका अनुवाद हिन्दी में हुआ है। इस उपन्यास में 18वीं शताब्दी के केरलीय राजा पषश्शि और वेल्लस्ली के बीच के युद्ध का वर्णन तत्कालीन परिस्थितियों की व्यापक पृष्ठभूमि में किया गया है। केरल के एक स्वातन्त्र्य-योद्धा की वीरता की कहानी के रूप में यह उपन्यास काफी लोकप्रियता अर्जित कर सका है।

हिन्दी में अनूदित मलयालम उपन्यासों में वैक्कम मुहम्मद बशीर का 'दादा का हाथी' ('एन्टुप्पाप्पाक्कोरानेण्टारन्नु') भाषा और शैली की दृष्टि से सबसे अधिक सशक्त है। इसका सफल अनुवाद 'युग प्रभात' के प्रवरासप्राप्त संपादक श्री के० रविवर्मा ने किया है। इसका कथानक केरल के मुसलमानों के जीवन पर आधारित है और वास्तव में यह एक संघर्ष-कथा है—पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच का संघर्ष। संघर्ष में लेखक ने नयी पीढ़ी की विजय दिखायी है। उपन्यास के अनुवाद में विद्वान अनुवादक ने प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है।

श्री एस० लक्ष्मण शास्त्री द्वारा अनूदित श्री के० दामोदरन का केरल के मजदूरों के जीवन-संघर्ष पर आधारित उपन्यास 'नरवत्तिल निन्नु' 'पद्मावती' नाम से प्रकाशित हुआ है। श्री अभयदेव ने श्री वेट्टूर रामन नायर के उपन्यास 'जीवक्कान मरन्नुपोय स्त्री' का अनुवाद 'जो जीना भूल गई' नाम से किया है। श्री नन्तनार के 'अरियप्पेटात्त मनुष्यन' का अनुवाद 'अनजान इन्सान' नाम से धारावाहिक रूप में 'युग प्रभात' के सन् 1964 के अंकों में प्रकाशित हुआ है। श्री एम० टी० वासुदेवन नायर के उपन्यास नालुकेट्टु (हवेली) का अनुवाद श्री कृष्ण मेनोन ने किया है।

मलयालम उपन्यास के हिन्दी अनुवादकों में एक और स्मरणीय नाम डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर का है। उन्होंने अभी हाल में मलयालम के दो प्रसिद्ध उपन्यासों —'अरनाषिकनेरम्' (आधी घड़ी) और 'वेरुकळ' ('जड़ें') का अनुवाद करके इस परंपरा को आगे बढ़ा दिया है। पारप्पुरत्तु का 'अरनाषिकनेरम्' आकार में बहुत बड़ा है और इसका कथानक पारिवारिक जीवन की समस्याओं से गठित है। मलयाटटूर रामकृष्णन का उपन्यास 'वेरुकळ' का भी हिन्दी रूपान्तरण 'जड़ें' नाम से डॉ० विश्वनाथ अय्यर ने किया है। केरल के 'तमिल ब्राह्मणों' के जीवन पर आधारित इस उपन्यास के अनुवाद में अनुवादक ने मूल कृति के भाव की रक्षा करने में तथा सहज प्रवाहमयी भाषा के प्रयोग करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

मलयालम उपन्यासों को हिन्दी में रूपान्तरित करने के कार्य में स्वातन्त्र्योत्तर काल में ही केरलीय लेखकों ने विशेष ध्यान दिया है। अब तक इस क्षेत्र में जितना कार्य हुआ है इससे हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य उज्ज्वल संभावनाओं से युक्त है।

मौलिक नाटक एवं एकांकी :

मौलिक हिन्दी नाटक रचना में केरल के हिन्दी लेखकों ने कम ध्यान दिया है इसका कारण यही प्रतीत होता है कि हिन्दी नाटकों के रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण के लिए केरल में बहुत कम अवसर मिलता है। पूर्ण मौलिक हिन्दी नाटक लिखने तथा प्रकाशित करने का श्रेय श्री एन० चन्द्रशेखरन नायर को है। 'सेवाश्रम' शीर्षक से उनका

एक पूर्ण नाटक सन् 1968 में प्रकाशित हुआ है। यह एक ऐतिहासिक नाटक है और इसके तीन अंक हैं। सन् 1947 के आसपास की राजनीतिक घटनाओं तथा परिवर्तित परिस्थितियों की व्यापक पृष्ठभूमि पर एक राजा के विचित्र चरित्र का पर्दाफाश करना नाटककार का उद्देश्य प्रतीत होता है।

'युगसंगम' भी श्री चन्द्रशेखरन नायर का प्रकाशित हिन्दी नाटक है। यह मानव की सबलता और दुर्बलता की प्रवृत्तियों तथा प्रेम और विद्वेष की भावना को स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है। द्वापर और कलि के संगम की पृष्ठभूमि पर इसका कथानक आधारित है। इस नाटक के पात्र सब कल्पित हैं।

केरल की मौलिक हिन्दी नाटक-रचना की चर्चा के सदर्भ में केरल हिन्दी प्रचार सभा, त्रिवेन्द्रम, की ओर से प्रकाशित श्री के० पी० कृष्णनकुट्टि का 'लघु रूपक' भी उल्लेखनीय है। इसमें पुराण, इतिहास आदि की मनोरंजक कहानियों के आधार पर सरल भाषा में लिखे गए अभिनय योग्य कई लघु-रूपक हैं। 'वीर बालक पृथ्वीसिंह', 'तुलसी की सीता', 'बोधिसत्त्व' आदि कथाओं के आधार पर इन रूपकों की रचना हुई है।

इनके अतिरिक्त विशेष अवसरों पर अभिनयार्थ भी केरलीयों ने छोटे-छोटे हिन्दी नाटकों की रचना की है। लेकिन ये सब अब तक अप्रकाशित है।

नाटक की अपेक्षा हिन्दी एकांकी-लेखन के क्षेत्र में केरल के लेखकों की देन अधिक महत्वपूर्ण है। इस दिशा में सराहनीय कार्य करनेवालों में श्री चन्द्रशेखरन नायर, श्रीमती लक्ष्मीकुट्टि अम्मा, श्री के० नारायण तथा डॉ० जी० गोपीनाथन के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

श्री चन्द्रशेखरन नायर का 'कुरुक्षेत्र जागता है' शीर्षक एकांकी-संग्रह हिन्दी में प्रकाशित हुआ। 'द्विवेणी', 'बदला' और 'कुरुक्षेत्र जागता है' शीर्षकों में, इस संग्रह में तीन एकांकी है। 'द्विवेणी' व्यापक मानवीय पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। संकलन का दूसरा एकांकी 'बदला' नारी-जीवन की समस्या को प्रस्तुत करता है। पति-पत्नी के सम्बन्धों का लक्ष्य करके यह एकांकी लिखा गया है। 'कुरुक्षेत्र जागता है' प्रस्तुत संकलन का अंतिम एकांकी है। इसके कुल सात दृश्य है। एकांकी का कथानक कल्पित देशी नरेश करनाल महाराजा के दाम्पत्य तथा सामाजिक-राजनीतिक जीवन से सम्बद्ध है।

श्रीमती लक्ष्मीकुट्टि अम्मा ने 'वेलुत्तम्बी की वीर आहुति', 'पपदिराजा का आत्म समर्पण' और 'भारतीय नारी तेरी महिमा' शीर्षक तीन एकांकियों का एक संग्रह प्रकाशित किया है। इस संग्रह के तीनों एकांकियों का ऐतिहासिक पक्ष प्रबल है। इनका अब तक कई बार अभिनय हुआ है। 'केरल भारती', 'ग्रन्थालोकम्' जैसी केरल की हिन्दी पत्रिकाओं में कई मौलिक एकांकी प्रकाशित हुए है, जिनमें श्री के० नारायण का हास्य-प्रधान एकांकी 'आखिरी सवाल' (ग्रन्थालोकम्, अगस्त 1962), श्री पी० बी० वर्गीस का 'चन्द्रिका' ('ग्रन्थालोकम्', फरवरी 1962), श्री श्रीरंगम विक्रमन नायर का 'एक ही सहारा' ('केरल भारती' दिसम्बर 1962) प्रमुख है।

हिन्दी में अनूदित मलयालम नाटक :

मलयालम का नाटक साहित्य काफी संपन्न है। कई अनुगृहीत नाटककार

मलयालम भाषा में हुए हैं। उनके कुछ चुने हुए नाटकों का हिन्दी में अनुवाद भी हुआ है। लेकिन मलयालम कविता तथा कहानी के अनुवाद में जितना कार्य अब तक हुआ है उतना नाटकों के अनुवाद में नहीं हुआ है। मलयालम से हिन्दी में अनूदित नाटकों का संक्षिप्त विवरण यहां दिया जाता है।

प्रसिद्ध मुसलमान योद्धा कुंजालि मरक्कार और महाराजा पषश्शि दोनों केरल की वीर संतानें थीं। कुंजालि मरक्कार के जीवन पर श्री के० पद्मनाभ नायर और पषश्शि पर श्री कृष्ण मेनोन ने मलयालम में ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। 'कुंजालि मरक्कार' नाटक के कुछ प्रमुख अंशों का हिन्दी अनुवाद श्री सी० पुरुषोत्तमन ने किया है। इसी प्रकार 'पषश्शि राजा' नाटक के पांच दृश्यों का हिन्दी अनुवाद श्री सी० एन० गोविन्दन ने किया है। अनूदित कृतियों में मूल कृतियों के ऐतिहासिक वातावरण को बनाए रखने का सफल प्रयास अनुवादकों ने किया है। दोनों अभिनेय हैं।

केरल के प्रगतिवादी नाटककार श्री तोप्पिल भासी के 'निङलएन्ने कम्यूनिस्टाक्कि' और 'मूलधनम्' शीर्षक नाटकों का अनुवाद हिन्दी में यथाक्रम 'उत्थान' और 'पूंजी' नाम से हुए हैं। दोनों के अनुवादक श्रीलक्ष्मण शास्त्री हैं। अनुवाद में मूल कृतियों की प्रभविष्णुता को बनाए रखने में श्री शास्त्री की अनुवाद क्षमता बहुत सहायक सिद्ध हुई है। हिन्दी में अनूदित मलयालम नाटकों की चर्चा के संदर्भ में उल्लेखनीय और दो कृतियां श्री सी० जे० तोमस की 'अवन वीण्डुम वरुन्नु' (वह फिर आ रहा है) और श्री उरूब का 'मण्णुम्-पेण्णुम्' (मिट्टी और नारी) है। श्री सी० जे० तोमस के नाटक का अनुवाद श्री पी० जी० वासुदेव ने किया है और 'मिट्टी और नारी' के अनुवादक श्री के० कृष्ण मेनोन हैं। दोनों अनुवादकों ने भाव प्रस्तुतीकरण तथा भाषा-प्रयोग के विषय में मूल कृतियों की जैसी स्वाभाविकता लाने का भरसक प्रयत्न किया है। श्री मेक्कोल्ला परमेश्वरन पिल्लै के नाटक 'गीतानन्द' का अनुवाद भी श्री के० कृष्ण मेनोन ने ही किया है। मलयालम के लब्धप्रतिष्ठ नाटककार सर्वश्री टी० एम० गोपिनाथन नायर तथा एन० कृष्ण पिल्लै के नाटकों का भी हिन्दीकरण हो चुका है।

मलयालम कविता अथवा कहानी की अपेक्षा मलयालम नाटकों का हिन्दी अनुवाद अब तक बहुत कम अवश्य हुआ है, लेकिन अनूदित कृतियों के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर आ सकते हैं कि मलयालम के जितने नाटकों के अनुवाद हिन्दी में हुए हैं उनमें अधिकांश सफल हुए हैं। नयी पीढ़ी के मलयालम नाटककारों की कृतियों पर भी केरल के हिन्दी लेखकों की दृष्टि गई है। फलतः कुछ आधुनिक नाटकों तथा एकांकियों का अनुवाद अभी हो रहा है। कई नई प्रतिभाएं इस क्षेत्र में उभर रही हैं और उनमें हिन्दी में अनूदित मलयालम नाटक साहित्य के अधिक संपन्न होने की आशा है।

मौलिक निबन्ध और आलोचनात्मक ग्रन्थ :

गुण और परिमाण की दृष्टि से केरल के हिन्दी लेखकों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान मौलिक निबन्धों और आलोचनात्मक ग्रन्थों की रचना के क्षेत्र में है। केरलीय हिन्दी लेखकों द्वारा प्रणीत कई निबन्ध एवं आलोचनाएं उत्तर तथा दक्षिण की उच्चस्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इस दिशा में जितने लेखक हुए

है उनका परिचय एव उनकी कृतियो का सार-सग्रह इस छोटे निबन्ध मे असभव है, अत कुछ प्रमुख निबन्ध-लेखको तथा आलोचनात्मक ग्रन्थो का परिचय मात्र यहा दिया जाना है।

केरल के हिन्दी निबन्धकारो और आलोचको के बीच स्व० वासुदेवन पिल्लै, स्व० चन्द्रहासन, श्री पी० के० केशवन नायर, श्रीमती रत्नमयीदेवी दीक्षित, स्व० डॉ० भास्करन नायर, डॉ० विश्वनाथ अय्यर, श्री० एन० वी० कृष्ण वारियर, श्री के० रवि-वर्मा, श्री चन्द्रशेखरन नायर, डॉ० रामन नायर, डॉ० रामचन्द्र देव, श्रीमती लक्ष्मी-कुट्टि अम्मा, डॉ० सरलादेवी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

स्व० वासुदेवन पिल्लै केरल हिन्दी प्रचार सभा के सस्थापक एव 'राष्ट्रवाणी' पत्रिका के सपादक थे। 'राष्ट्रवाणी' के सन् 1953-54 के अको मे उनके 'स्वागत', 'स्वप्न', 'प्रेम के पथ,' 'काग्रेसी नेता', 'समाजवादी नेता', 'साम्यवादी नेता' शीर्षको से कई निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। शैली की दृष्टि से उनके निबन्धो को ललित निबन्ध के अन्तर्गत मान सकते हैं।

हिन्दी प्रचारक के नाते श्री केशवन नायर के प्राय सभी निबन्ध दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार आन्दोलन से सम्बन्धित हैं। 'दक्षिण के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास' उनका एक उत्कृष्ट परिचयात्मक ग्रथ है। दक्षिण के पुराने हिन्दी प्रचारको का तथा दक्षिण के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन का विस्तृत परिचय यह ग्रथ देता है। इस ग्रथ के अध्यायो मे राष्ट्रीय चेतना, दक्षिण मे हिन्दी का प्रवेश, राष्ट्रभाषा की कल्पना, देशी-विदेशी विद्वानो के राष्ट्रभाषा पर विचार, काग्रेस मे राष्ट्रभाषा का प्रस्ताव, दक्षिण मे हिन्दी प्रचार की आयोजना का प्रारभिक इतिहास, और मद्रास मे हिन्दी-प्रचार सभा की तरफ से हिन्दी ग्रथो की रचना का प्रयास एव विभिन्न प्रान्तो में विद्यालयो की स्थापना का समारभ आदि विषयो पर प्रकाश डाला गया है।

इस धारा के अधिकाश लेख और ग्रन्थ केरल के साहित्य, कला तथा सस्कृति पर आधारित है। श्रीमती रत्नमयीदेवी दीक्षित का 'केरली साहित्य दर्शन' एक बहु-चर्चित आलोचनात्मक ग्रन्थ है। श्रीमती दीक्षित मलयालम और हिन्दी दोनो भाषाओ के साहित्य की विदुषी है। ग्रन्थ बडे परिश्रम से लिखा गया है और उसमे उपलब्ध सामग्री बहुत उपयोगी एव ज्ञानवर्द्धक है। मलयालम साहित्य के इस परिचयात्मक ग्रन्थ मे हर एक युग की विशेषता और विचार का विकास बताया गया है।

डॉ० रामचन्द्र देव ने भी मलयालम साहित्य पर एक परिचयात्मक ग्रन्थ लिखा है।

मलयालम साहित्य का परिचय प्रस्तुत करनेवाला एक और सारगर्भित ग्रन्थ डॉ० के० भास्करन नायर का 'मलयालम साहित्य का इतिहास' है। इस ग्रन्थ मे भी सरल एव सुबोध भाषा मे मलयालम साहित्य की विशेषताओ और प्रवृत्तियो से हिन्दी पाठको को परिचित कराने का सफल प्रयत्न किया गया है। बीच बीच मे हिन्दी के कवियो तथा लेखको से मलयालम भाषा के साहित्यकारो की तुलना की गई है।

स्व० श्री चन्द्रहासन और डॉ० कल्यायणी अर्जुनन ने भी मलयालम साहित्य पर हिन्दी म अनेक परिचयात्मक लेख प्रकाशित किए हैं।

इस विषय मे 'राष्ट्रभारती को केरल का योगदान', डॉ० विश्वनाथ अय्यर का एक दूसरा ग्रथ है। लेखक ने इस ग्रथ मे केरल और हिन्दी के विविध सम्बन्ध-सूत्रो

को खोजने का सफल प्रयत्न किया है। केरल के हिन्दी जगत मे जो साहित्यिक प्रयास हुए हैं उनका ऐतिहासिक और प्रामाणिक विवरण भी ग्रन्थ मे दिया गया है। मौलिक हिन्दी लेखन के साथ-साथ केरलीयो ने अनुवाद-कार्य में जो कुछ किया है उसका भी विवरण ग्रन्थ मे मिलता है। लेखक की ओर से पुस्तक को प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया गया है।

'सेवा सदन की समीक्षा' शीर्षक एक आलोचनात्मक ग्रन्थ भी डॉ० अय्यर का है। केरल के प्रथम हिन्दी गीतकार महाराजा स्वाति तिरुनाळ पर डॉ० अय्यर का एक और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है जिसमे महाराजा स्वाति तिरुनाळ के हिन्दी गीत सकलित है। महाराजा स्वाति तिरुनाळ के हिन्दी गीतो का एक सकलन श्री कुन्नुकुषी कृष्णन कुट्टी ने भी मुद्रित किया है। स्वाति तिरुनाळ के व्यक्तित्व और कला-प्रेम का परिचय देनेवाली एक विस्तृत भूमिका इस पुस्तक की विशेषता है।

सर्वश्री एन० वेंकिटेश्वरन, एन० चन्द्रशेखरन नायर तथा के० जी० बालकृष्ण पिल्लै के निबन्ध केरलीय सस्कृति, कला तथा साहित्य पर आधारित हैं। श्री एन० चन्द्रशेखरन नायर के दो निबन्ध-सग्रह—'भारतीय साहित्य और कलाए' तथा 'भारतीय साहित्य' शीर्षक से हिन्दी के पाठको के हाथ पहुच गये हैं। 'भारतीय साहित्य एव कलाए' शीर्षक निबन्ध-सग्रह मे हिन्दी और मलयालम के कवियो तथा काव्य-प्रवृत्तियो से सम्बन्धित छ निबन्ध है।

केरलीय हिन्दी लेखको द्वारा हिन्दी तथा मलयालम के कवियो तथा कृतियों पर तुलनात्मक एव स्वतन्त्र आलोचनात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए है। इस दृष्टि से डॉ० रामचन्द्र देव की पुस्तक 'तुलसी और तुचन' एक उपलब्धि मानी जा सकती है। हिन्दी के महाकवि तुलसीदास और मलयालम के तुचन की साहित्यिक प्रवृत्तियों का यह एक रोचक अध्ययन है।

'कहानी—स्वर और स्वरूप' श्री विश्वम का हिन्दी कहानी साहित्य पर एक स्वतन्त्र आलोचनात्मक ग्रन्थ है। श्री वी० नारायण कुट्टि ने 'हिन्दी की नई कविता' पर एक आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। श्री ए० अरविन्दन का 'महादेवी वर्मा के रेखाचित्र एक विवेचनात्मक अध्ययन' प्रकाशित हुआ है जिसमे महादेवी के रेखाचित्रो की विशेषताओं का गहन अध्ययन उपलब्ध होता है। श्रीमती लक्ष्मणि अम्मा का 'मलयालम और हिन्दी के खण्डकाव्य' भी हाल ही मे प्रकाशित एक आलोचनात्मक ग्रन्थ है।

काव्यशास्त्र तथा भाषाविज्ञान सम्बन्धी हिन्दी ग्रन्थो का भी प्रणयन केरलीयो ने किया है। डॉ० एन० रामन नायर का काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रथ 'होरेस की काव्य कला' का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। होरेस के काव्य-सिद्धान्तो की भारतीय काव्य सिद्धान्तों के साथ विस्तृत तुलना करते हुए लेखक ने पुस्तक मे अपनी मौलिक प्रतिभा का भी दिखाया है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में डॉ० परमेश्वरन द्वारा प्रणीत 'भाषिकी' हिन्दी मे वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान जैसी नई शाखा के तत्वो के व्यवस्थित एव सरलतम विवेचन का जो अभाव है उसकी क्षति-पूर्ति करता है। केरलीयो द्वारा हिन्दी में अनेक व्याकरणिक ग्रन्थो की रचना हुई है।

श्रीमती लक्ष्मीकुट्टि अम्मा का एक ग्रन्थ 'शिक्षा भारती' नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसमें शिक्षा और भारतीय दृष्टिकोण, लोकतन्त्र और शिक्षा, आदर्श शिक्षा, पाठ-योजना और उसका महत्त्व, आधुनिक शिक्षा और नवीन प्रवृत्तिया आदि विषयो पर

चर्चा है। सन् 1971 में ही डॉ० सरलादेवी का ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य में नारी' प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक के साहित्य में नारी की जो स्थिति रही, उसका सर्वांगीण विवेचन है। दूसरे खण्ड में आधुनिक काव्य में नारी के विविध रूप-चित्रणों का विशद विश्लेषण प्रस्तुत है।

उपर्युक्त निबन्धकारों तथा आलोचकों के अलावा केरल में नई पीढ़ी के भी सशक्त हिन्दी निबन्धकार हैं जिनके निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। भाव और भाषा तथा विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इनके भी निबन्ध उत्कृष्ट कोटि के हैं।

निबन्धों और आलोचनात्मक ग्रन्थों की चर्चा के इस संदर्भ में केरलीय लेखकों के द्वारा हिन्दी में रचित बाल-साहित्य पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। हिन्दी में बाल साहित्य के प्रणेताओं में सर्वश्री आर० जनार्दनन पिल्लै, पी० जी० वासुदेव, डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर आदि के नाम लिए जा सकते हैं। बाल-साहित्य के अन्तर्गत प्रणीत प्राय सभी किताबें महात्माओं की जीवनियों पर हैं। श्री आर० जनार्दनन पिल्लै की किताब 'पं० जवाहरलाल नेहरू' नेहरूजी की उदात्त जीवन गाथा पर आधारित है। भाषा का अत्यन्त सरल प्रयोग इसकी बड़ी विशेषता है। श्री पी० जी० वासुदेव ने बालकों के लिए एक सरल जीवन माला प्रस्तुत की है। डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर ने महान आचार्य, चित्रकार, कवि और दार्शनिक रवीन्द्रनाथ जी की जीवनी संक्षिप्त रूप में प्रकाशित की है। डॉ० विश्वनाथ अय्यर द्वारा रचित और एक किताब 'विज्ञान योगिनी' है जिसमें प्रगतिशील महिला 'मेरी क्यूरी' की जीवनी प्रस्तुत की गई है। बालकों को विज्ञान के सरल तत्वों की जानकारी दिलाना ही इसमें लेखक का उद्देश्य है।

निबन्ध और आलोचनात्मक ग्रन्थों की चर्चा के उपसंहार में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की सुविधा को दृष्टि में रखकर केरलीयों से तैयार किये गये कोश-ग्रन्थों की चर्चा भी आ सकती है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं अध्ययन के साथ ही केरल में कई विद्वानों ने द्विभाषा कोशों की रचना की है। सन् 1940 में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की ओर से एक हिन्दी-मलायम कोश प्रकाशित हुआ जिसके अब तक कई संस्करण निकल चुके हैं। सर्वश्री पी० के० केशवन नायर और चन्द्रहासन इसके संपादक थे। डॉ० रामन नायर का हिन्दी-मलयालम कोश सन् 1948 में और श्रीमती अम्मिणी अम्माल द्वारा संपादित हिन्दी-मलयालम निघंटु सन् 1951 में प्रकाश में आए। श्री ई० के० दिवाकरन पाट्टि का हिन्दी-मलयालम कोश सन् 1956 में प्रकाशित हुआ। हरनस् हिन्दी-मलयालम कोश सन् 1958 में प्रकाशित हुआ। इन सभी कोशों तथा हिन्दी के उपलब्ध कोशों से फायदा उठाते हुए श्री अभयदेव ने एक बृहत् हिन्दी-मलयालम निघंटु का निर्माण किया। इसकी शब्द-संख्या लगभग डेढ़ लाख है और इस समय उपलब्ध हिन्दी-मलयालम कोशों में यह सबसे अधिक उपयोगी है। श्री पी० कृष्णन नायर द्वारा संपादित एक हिन्दी-मलयालम अंग्रेजी कोश भी प्रकाशित हुआ है।

शोध-कार्य :

स्वातन्त्र्योत्तर युग में केरलीयों ने हिन्दी स्नातकोत्तर शिक्षा तथा गवेषणा में

५१०

विशेष रुचि दिखाई है। पहले हिन्दी में स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसंधान के लिए केरलीयों को उत्तर भारत के सागर, अलीगढ़, लखनऊ, आगरा, बनारस जैसे विश्वविद्यालयों में जाना पड़ता था। लेकिन अब केरल के ही विश्वविद्यालयों में अनुसंधान की सुविधाएं प्राप्त हैं। उत्तर के विश्वविद्यालयों में जाकर अनुसन्धान करने वालों की तादाद भी कम नहीं है। या अब केरल में हिन्दी में अनुसन्धान करनेवालों की अच्छी संख्या हो गई है। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं से सम्बन्धित स्वतन्त्र तथा तुलनात्मक विषयों पर अब तक पैंतीस से अधिक पी एच० डी० शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए जा चुके हैं। शोधकार्य की स्तरीयता भी प्रशंसनीय है।

केरल के विद्वानों द्वारा प्रस्तुत शोध-प्रबन्धों में अधिकांश अब तक अप्रकाशित हैं। प्रकाशित शोध-प्रबन्धों का संक्षिप्त परिचय देना इस संदर्भ में संगत प्रतीत होता है।

डॉ० के० भास्करन नायर ने 'हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति काव्य' विषयक शोध प्रबन्ध पर लखनऊ विश्वविद्यालय की ओर से, केरल में, सर्वप्रथम सन् 1960 में पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। डॉ० भास्करन नायर ने अपने ग्रन्थ में हिन्दी तथा मलयालम के कृष्णभक्त कवियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। हिन्दी में यह पहला ही प्रयास था, जिसमें दक्षिण तथा उत्तर की भाषाओं की कृतियों का एक साथ विवेचन प्रस्तुत किया गया। प्रबन्ध का विषय आठ अध्यायों में विभक्त है, जिनमें दक्षिण तथा उत्तर भारत में कृष्णभक्ति के विकास का परिचय, दोनों भाषाओं के कवियों के दार्शनिक विचार, नवधा भक्ति, सामाजिक प्रभाव, काव्य कला, काव्य विषय, रस, अलंकार-विधान आदि का निरूपण मिलता है। मलयालम के एषुत्तच्छन, चेरुश्शेरी नंपूतिरी, कुंजन नंपियार जैसे प्रतिभाशील कृष्णभक्त कवियों की रचनाओं का परिचय पाठकों के लिए, विशेषकर हिन्दी के पाठकों के लिए, जिज्ञासा का विषय बन गया है।

डॉ० के० एस० मणि ने 'मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक प्रबन्ध पर आगरा विश्वविद्यालय से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हिन्दी और मलयालम के दो प्रसिद्ध कवियों—मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल नारायण मेनोन—की कृतियों की तुलनात्मक समीक्षा है। यद्यपि मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल भिन्न प्रदेशों के निवासी थे और दोनों की मातृभाषाएं भी भिन्न थीं, तथापि उनकी अंतश्चेतना में देश प्रेम की गूंज समान रूप से अनुरणित थी और वह दोनों की काव्यधारा में समान रूप से प्रवाहित भी हुई। इस दृष्टि से इन दोनों कवियों का तुलनात्मक अध्ययन सार्थक हो सकता है। सम्पूर्ण प्रबन्ध में विषय विभाजन और विवेचना में संतुलन है। डा० मणि ने इन दोनों कवियों के कवित्व के विभिन्न पक्षों के समान-तत्वों का उद्घाटन बड़े सुन्दर, निष्पक्ष और पांडित्यपूर्ण ढंग से किया है।

डॉ० जेकब पी० जार्ज ने 'आधुनिक हिन्दी गद्य और गद्यकार' शीर्षक शोध प्रबन्ध पर सागर विश्वविद्यालय से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है।

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में लेखक ने विषय का आशय और उसकी सार्थकता आदि पर विचार किया है। शैली के सैद्धान्तिक अनुशीलन से सम्बन्धित दूसरे अध्याय में शैली और शब्द, शैली और रीति, शैली के उपकरण, शैली के प्रमुख तत्व, गद्य शैली

की विशेषताएं आदि पर विस्तार से विचार किया गया है। तीसरे अध्याय में गद्य-शैली के विभिन्न उपकरणों—ध्वनि, शब्द, वाक्य, बौद्धिक तत्त्व, भावतत्त्व, सौन्दर्य तत्त्व आदि—का सम्यक् विवेचन किया गया है। आगे के चार अध्यायों में बीसवीं शताब्दी के हिन्दी गद्य की चार प्रमुख शैलियों—सार्वजनिक शैली, विवेचनात्मक शैली, विवरणात्मक शैली और तरल शैली—का विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर ने 'आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य' शीर्षक शोध प्रबन्ध पर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि सन् 1959 में प्राप्त की। लेखक ने अपने शोध प्रबन्ध में सन् 1918 से लेकर सन् 1947 तक की हिन्दी और मलयालम काव्य-प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। प्रबन्ध में देश की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का दिग्दर्शन कराते हुए आलोच्य काल के मलयालम और हिन्दी के प्रतिनिधि कवियों का प्रामाणिक आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने एक भाषा से दूसरी भाषा में हुए आदान-प्रदान का लेखा-जोखा भी सामने रखा है।

डॉ० एन० आई० नारायण को 'हिन्दी एवं मलयालम के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षकीय शोध प्रबन्ध पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् 1964 में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हिन्दी और मलयालम के नाटक-साहित्य का, प्रारम्भ से लेकर 1960 तक का, आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। वस्तुतः राष्ट्र-निर्माण के प्रयत्न में विभिन्न भाषा-भाषी प्रान्तों की जनता के सामाजिक जीवन, भाव, विचार आदि का वास्तविक ज्ञान एवं साहित्य का आदान-प्रदान अत्यन्त आवश्यक है और इस दृष्टि से लेखक के प्रयास का महत्त्व स्पष्ट है। डॉ० एन० आई० नारायण का प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मलयालम नाटक-साहित्य के सम्बन्ध में हिन्दी में लिखा हुआ सर्वप्रथम ग्रन्थ है। अतः इस प्रबन्ध में मलयालम नाटक-साहित्य के विकास तथा हिन्दी और मलयालम के नाटकों की तुलना के अंश पूर्णतया मौलिक हैं। इस ग्रन्थ में दोनों नाटक-साहित्यों की विशेषताओं और त्रुटियों का यथार्थ रूप में दिग्दर्शन कराया गया है जिससे यह ग्रन्थ दोनों भाषाओं के नाटककारों और नाटक-प्रेमियों के लिए उपादेय हो गया है।

डॉ० जी० गोपीनाथन ने 'केरलीयों की हिन्दी को देन' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। शोध-प्रबन्ध में केरल के लेखकों की मध्य युग से लेकर सन् 1900 तक की हिन्दी रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया था। इसमें सन् 1971 तक केरलीयों द्वारा हिन्दी में प्रकाशित मौलिक एवं अनूदित रचनाओं का भी मूल्यांकन मिलता है।

प्रबन्ध का विषय चार अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में केरल के हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय में पुराने कोशों और पाठमालाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन हुआ है। इन कोशों और पाठमालाओं का महत्त्व ऐतिहासिक अवश्य है। केरलीयों द्वारा लिखे गए कई हिन्दी व्याकरण और हिन्दी-मलयालम कोशों पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने इस अध्याय में स्पष्ट किया है कि हिन्दी भाषा का पठन पाठन केरलीयों ने विधिवत् और वैज्ञानिक ढंग से किया है। प्रबन्ध का तीसरा अध्याय महाराजा स्वाति तिरुनाळ की हिन्दी रचनाओं की विशेषताओं से सम्बन्धित है। इस अध्याय में

स्वाति तिरुनाळ के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ-साथ उनके गीतों के भावपक्ष, भक्ति-तत्त्व और कलापक्ष का विशद विवेचन भी किया गया है। चौथे अध्याय में हिन्दी प्रचार आन्दोलन के समय से लेकर सन् 1971 तक केरल में हुई हिन्दी रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

सिस्टर क्लमेण्ट मेरी को 'हिन्दी का स्वातन्त्र्योत्तर विचारात्मक गद्य' शीर्षक प्रबन्ध पर सागर विश्वविद्यालय की ओर से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के ग्यारह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में लेखिका ने स्वातन्त्र्योत्तर युग की विभिन्न प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। शास्त्रीय, राजनीतिक, भाषात्मक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश का अध्ययन इस अध्याय का विषय है। द्वितीय अध्याय में स्वातन्त्र्योत्तर युग के साहित्य पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। इस अध्याय में लेखिका ने उन मौलिक प्रवृत्तियों का भी उद्घाटन किया है जो साहित्य को स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। तृतीय अध्याय में आलोच्य युग के वैचारिक गद्य पर विहगम दृष्टि डाली गई है और उसका धाराप्रवाह विकास उद्घाटित किया गया है। शोध-प्रबन्ध का नवम अध्याय वैचारिक गद्य के उस दूसरे छोर को लेकर चलता है जो विचार में भावना का समावेश करता है और प्रेरणा अथवा उद्बोधन को अपना लक्ष्य बनाता है। इस अध्ययन के लिए लेखिका ने कई प्रशस्त पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का अनुशीलन किया है। दशम अध्याय में वैचारिक गद्य की शैलियों का विस्तृत अध्ययन प्राप्त होता है। एकादश अध्याय में आलोच्य युग के वैचारिक गद्य की तत्कालीन सर्जनात्मक गद्य से तुलना करते हुए आलोच्य युग की उपलब्धियों का लेखा जोखा दिया गया है और नवीन प्रवृत्तियों के अध्ययन का सफल प्रयत्न भी किया है।

डॉ० पी० एन० फिलिप को 'मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति-साहित्य में विरह भावना' शीर्षक प्रबन्ध पर कालिकट विश्वविद्यालय ने सन् 1974 में पी एच० डी० की उपाधि प्रदान की है। डॉ० फिलिप के इस शोध-प्रबन्ध का अपना महत्त्व है।

शोध प्रबन्ध का विषय सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में विरह-भावना के स्वरूप और सिद्धान्त की विशद विवेचना की गई है। विरह भावना की विस्तृत विवेचना करते हुए उसके शास्त्रीय, सैद्धान्तिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पक्षों का अनुशीलन करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि विरह-वेदना आनन्दानुभूति का रूपान्तर मात्र है। द्वितीय अध्याय में लेखक ने धार्मिक दृष्टिकोण से भक्ति साहित्य और विरह भावना के महत्त्व को निर्धारित किया है। लेखक ने इस अध्याय में धार्मिक दृष्टिकोण से हिन्दू तथा इस्लाम धर्म के धार्मिक ग्रन्थों के साथ ही ईसाई धर्म के 'बाइबिल' में चित्रित प्रेम, सौन्दर्य, काम तथा विरह-भावना पर अधिक रोशनी डाली है जो कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मौलिक योगदान है। तृतीय अध्याय में निर्गुण भक्तिधारा के संत कवियों की विरह-भावना की आध्यात्मिकता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। चौथे अध्याय में हिन्दी के सूफी कवियों के प्रेम-तत्त्व और विरह भावना के स्वरूप और सिद्धान्त का अनुशीलन करते हुए उनके विरह-वर्णन की मार्मिकता एवं तीव्रता को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। उपसंहार में लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उत्कृष्ट काव्य परम्पराओं के मूल में विरह-भावना अवश्य परिलक्षित होती है और विरहाभिव्यक्ति के बिना कोई भी काव्य मर्म-

स्पर्धी तथा उज्ज्वल नहीं हो सकता है।

उस्मानिया विश्वविद्यालय से डॉ० कुट्टन पिल्लै ने अपने शोध-प्रबन्ध 'पन्त काव्य में बिम्ब-योजना' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। यह शोध-प्रबन्ध बिम्ब की दृष्टि से पन्त जी के समग्र काव्य के अनुशीलन का प्रथम प्रयास है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में काव्य-बिम्ब के स्वरूप और वर्गीकरण पर व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। काव्य-बिम्ब सम्बन्धी प्राच्य एवं पाश्चात्य मन्तव्यों का सहारा लेकर शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करने में लेखक सफल हुए हैं। आगे के अध्यायों में पन्त जी के व्यक्तित्व के निर्माण के स्रोतों और उनके काव्य में प्राप्त ऐन्द्रिय, वस्तुगत, भावगत एवं दार्शनिक बिम्बों की मौलिक विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन है। अन्तिम अध्याय में कबीर से लेकर अत्याधुनिक काल तक बिम्ब के क्षेत्र में जो विकास हुआ, उसका समग्र इतिहास प्रस्तुत करते हुए बिम्ब-योजना की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में पन्त जी का स्थान-निर्धारित किया गया है।

हिन्दी गवेषणा के क्षेत्र में पद्मश्री डॉ० मलिक मोहम्मद की देन विशेष महत्त्व की है। यद्यपि उनका जन्म पुराने केरल के दक्षिण ट्रावनकोर में हुआ था (यह प्रदेश अब तमिलनाडु में है) तो भी उनका मुख्य कार्यक्षेत्र केरल रहा है। इसलिए हिन्दी साहित्य की गवेषणा में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान का स्मरण इस प्रसंग में अनिवार्य है। उनको 'आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य' पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय से सन् 1964 में पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत प्रबन्ध में सभी आलवार भक्तों के साहित्य का विशद विवेचन है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों से तुलना भी की गई है। भक्ति के विभिन्न पक्षों का भी उद्घाटन-विवेचन किया गया है। 'वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने पर उनको आगरा विश्वविद्यालय से सन् 1971 में डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त हुई। शोधक ने आद्यन्त तटस्थ एवं वैज्ञानिक दृष्टि ही अपनाई है। भक्ति-साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ उसकी दार्शनिकता का भी शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विश्लेषण इस कृति में है। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है। उनकी एक अन्य पुस्तक 'भक्ति आन्दोलन के प्रेरणा स्रोत' भी प्रकाशित हो चुकी है। इस लघु विवेचनमय पुस्तिका में भक्ति-आन्दोलन के विभिन्न दार्शनिक स्रोतों का अनुसन्धान प्रस्तुत किया गया है। भक्ति-शक्ति को स्पष्ट करते हुए लेखक ने व्यक्त किया है कि समस्त भारत को एकता के सूत्र में बाँधने में भक्तों और सन्तों का प्रबल हाथ रहा है।

इन शोधात्मक एवं शोधोपाधिपरक ग्रन्थों के अतिरिक्त प्रो० मलिक मोहम्मद के लगभग 50 उच्चकोटि के साहित्यिक, चिन्तन-प्रधान, भावैक्य-प्रधान, राष्ट्रभाषा से सम्बन्धित एवं शोधात्मक निबन्ध भी विभिन्न उच्चस्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनकी प्रामाणिक एवं स्थायी महत्त्व की इन शोधात्मक एवं सैद्धान्तिक कृतियों के कारण एवं उनके व्यक्तित्व में अनुस्यूत राष्ट्रीय चेतना के कारण उन्हें भारत सरकार ने सन् 1973 में 'पद्मश्री' की उपाधि से सम्मानित किया था।

अप्रकाशित शोध प्रबन्धों की संख्या अधिक है। सन् 1961 में लखनऊ विश्वविद्यालय से डॉ० वी० गोविन्द शेणाई ने 'वर्तमान हिन्दी तथा मलयालम कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर शोध-उपाधि प्राप्त की थी। इस शोध-

प्रबन्ध में सन् 1915 से 1950 तक के हिन्दी और मलयालम कथा-साहित्य का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी वर्ष आगरा विश्वविद्यालय से 'एषुत्तच्छन और तुलसी का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर डॉ० जार्ज को पी एच० डी० उपाधि प्राप्त हुई।

डॉ० दामोदर प्रसाद ने सागर विश्वविद्यालय से सन् 1962 में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की और उनका शोध विषय 'हिन्दी और मलयालम के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' था। सागर विश्वविद्यालय ने डॉ० रामन नायर को सन् 1963 में अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी और मलयालम के भक्तिकालीन काव्य में वात्सल्य रस' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। 'हिन्दी और मलयालम के रामकाव्य का अध्ययन' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर डॉ० सुभद्रा अम्मा ने सन् 1964 में और 'हिन्दी और मलयालम में समीक्षा साहित्य का विकास' शीर्षक शोध प्रबन्ध पर सन 1965 में डॉ० एन० आर० इलयिटम ने सागर विश्वविद्यालय से शोध-उपाधियां प्राप्त की। 'जयशंकर प्रसाद और कुमारन आशान के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' डॉ० विजयन का शोध-विषय रहा है और उन्होंने इसपर सन् 1965 में उपाधि प्राप्त की। कहानी-साहित्य पर डा० जस्टिन अब्रहाम ने सागर विश्वविद्यालय से सन् 1967 में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है और 'मलयालम और हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों के तुलनात्मक अध्ययन' पर डॉ० वी० आर० कृष्णन नायर ने।

डॉ० के० पद्मावती ने 'हिन्दी और मलयालम के प्रगतिवादी काव्य' पर अनुसन्धान किया है। छायावादोत्तर युग की काव्य प्रवृत्तियों की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन उनका शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करता है, जिसपर उन्हें सन् 1967 में सागर विश्वविद्यालय से शोध-उपाधि मिली है। सन् 1969 में सागर विश्वविद्यालय से ही डॉ० शशिधरन पिल्लै ने पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। उनका शोध विषय 'निराला और शंकर कुरुप की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन' है। डॉ० हरिदासन पिल्लै ने भी सागर विश्वविद्यालय से 'तकषी और नागार्जुन एक तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक शोध प्रबन्ध पर पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। आगरा विश्वविद्यालय से डॉ० पी० कुंजिरामन को अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी और मलयालम के खण्डकाव्य एक तुलनात्मक अध्ययन' पर पी एच० डी० मिली है।

डॉ० रामचन्द्र देव को सन् 1972 में केरल विश्वविद्यालय ने 'मध्यकालीन सगुण भक्ति-काव्य के बौद्धिक और दार्शनिक प्रेरक तत्त्व' नामक शोध प्रबन्ध के लिए शोध उपाधि प्रदान की है। 'प्रसाद और गुप्त के काव्य में नारी' डॉ० सरला देवी का केरल विश्वविद्यालय से पी एच० डी० प्राप्त शोध-प्रबन्ध है। डॉ० एल० सुनीता को 'मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के सांस्कृतिक पक्ष' पर और डॉ० आर० अनन्तरामन को 'भारतेन्दु के नाटकों पर संस्कृत का प्रभाव' पर केरल विश्वविद्यालय ने ही शोध उपाधियां प्रदान की हैं। 'भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य की सामाजिक परिस्थितियां' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर डा० सुशीला ने भी पी एच० डी० की उपाधि केरल विश्वविद्यालय से प्राप्त की है। डॉ० शीला को लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् 1974 में 'तकषी और प्रेमचन्द के कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर पी एच० डी० मिली है। कालिकट विश्वविद्यालय ने सन 1975 में डॉ० एन० रवीन्द्रनाथ को अपने शोध-प्रबन्ध 'प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य पर मार्क्सवाद का प्रभाव' पर और

सन् 1976 में डॉ० पद्मजा को 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य पर समकालीन राजनीतिक और सामाजिक विचारधाराओं का प्रभाव' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर पी-एच० डी० की उपाधियां प्रदान की हैं। डॉ० सी० पी० राजगोपालन नायर ने 'रामचरितमानस में अद्वैतवाद' शीर्षक विषय पर शोध-उपाधि प्राप्त की है।

सन् 1976 में 'तुलसीदास की सूक्तियां', 'जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन', 'आधुनिक हिन्दी कविता पर गांधीवाद का प्रभाव' जैसे विषयों पर यथाक्रम डा० वी० पद्मिनी, डॉ० ए० राजकुमारन और डॉ० इन्दिरा ने कोच्चिन विश्वविद्यालय से शोध-उपाधियां प्राप्त की हैं।

साहित्यिक विधाओं के अतिरिक्त भाषाविज्ञान में भी केरल के हिन्दी अनुसन्धान-क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय कार्य हुए हैं। इस क्षेत्र में अनुसन्धान करके डॉ० वेल्लायनि अर्जुनन, डॉ० ईश्वरी तथा डॉ० परमेश्वरन ने शोध-उपाधियां प्राप्त की हैं। डॉ० वेल्लायनि अर्जुनन को 'हिन्दी और मलयालम की समान शब्दावली का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन' नाम के अपने शोध-प्रबन्ध पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय से 1966 में पी-एच० डी० की और 'दक्षिण भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त हिन्दी शब्दावली' शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर जबलपुर विश्वविद्यालय में सन् 1970 में डी० लिट्० की उपाधियां मिली हैं। डॉ० ईश्वरी ने केरल विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० प्राप्त अपने शोध-प्रबन्ध में 'हिन्दी और मलयालम की तुलनीय शब्दावली का अध्ययन' प्रस्तुत किया है। केरल विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त डॉ० परमेश्वरन का शोध-प्रबन्ध 'रामचरितमानस की भाषा' का विस्तृत एवं शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करता है।

केरल के विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों में स्नातकोत्तर स्तर पर भी अनेक स्तरीय, स्वतन्त्र एवं तुलनात्मक गवेषणात्मक शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किए जाते हैं।

ऊपर अनुसन्धान-कार्य का जो विवरण दिया गया है उससे पता चलता है कि केरल में स्वतन्त्र विषयों की अपेक्षा तुलनात्मक विषयों पर शोध-कार्य अधिक हुआ है। हिन्दी भाषा और साहित्य के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ में इस प्रकार की तुलनात्मक अध्ययन की उपादेयता स्वयंसिद्ध है। हिन्दी सम्पूर्ण भारत की भाषा है और उसमें सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य का आना आवश्यक है।

हिन्दी पत्रकारिता :

हिन्दी भाषा और साहित्य को केरल के योगदान के अन्तिम पहलू के रूप में केरल की हिन्दी पत्रकारिता की बात कही जा सकती है। हिन्दी साहित्य की सेवा और पत्रिका प्रकाशन का शौक सन् 1940-50 में केरल में बड़ी तेजी से बढ़ा था। अनेक सज्जनों में इतना उत्साह आया कि वे अपने साधनों और सुविधाओं पर समुचित ध्यान दिए बिना भी पत्रिका-प्रकाशन में लग गए। यह दूसरी बात है कि प्रतिकूल परिस्थितियों व असुविधाओं के कारण वे आगे बढ़ नहीं सके। सन् 1940 से अब तक केरल में दस-बारह पत्रिकाएं निकली और उनमें से अधिकांश कुछ समय तक चलकर बन्द हो गईं।

स्वातन्त्र्य पूर्व काल में केरल के हिन्दी प्रचार केन्द्रों से हस्तलिखित पत्रिकाएं निकलती थीं। केरल प्रदेश में राष्ट्रभारती हिन्दी का जबरदस्त प्रभाव बढ़ते देखकर यहां की मलयालम पत्रिकाएं हिन्दी को अनुवाद के स्तम्भ के ज़रिये सम्मान देने लगीं।

धीरे धीरे हिन्दी के लिए दो-चार पृष्ठ सुरक्षित रखने की उदारता 'मातृभूमि', 'मलयालम-राज्यम्' जैसी मलयालम की पत्रिकाओ ने दिखाई। स्वातत्र्य पूर्व काल मे प्रकाशित 'हिन्दी मित्र' केरल की प्रथम स्वतन्त्र हिन्दी पत्रिका है। 'हिन्दी-मित्र' का प्रथम अक सभवत अगस्त 1941 मे निकला था। यह पत्रिका साहित्य के साथ-साथ हिन्दी के प्रचार के पक्ष पर भी जोर देती थी। इसके सपादक उत्साही हिन्दी-प्रचारक विद्वान जी० नीलकण्ठन नायर थे। केरल मे प्रकाशित दूसरी हिन्दी पत्रिका 'ललकार' थी। ओलवक्काट से प्रकाशित 'ललकार' का प्रकाशन श्री बालकृष्णन ने शुरू किया था और बाद में सन् 1950 मे प्रकाशन का कार्य सर्वश्री पी० नारायण और एम० एन० राजन ने अपने कधो पर ले लिया। उत्तर और दक्षिण के लेखको की उच्च स्तर की रचनाए इसम प्रकाशित होती थी। हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार, उत्तर और दक्षिण की सास्कृतिक तथा साहित्यिक परम्पराओं का सामजस्य आदि इस पत्रिका का लक्ष्य रहा था। छपाई, साज सज्जा और भाषा के स्तर मे यह पत्रिका उन्नति कर सकी थी। लेकिन वर्ष-भर ही यह पत्रिका निकल सकी। लगभग इसी समय कोट्टयम के दो हिन्दी प्रेमियो (श्री नारायणदेव और श्री अभयदेव) ने मिलकर 'विश्वभारती' नाम की पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का मुख्य ध्येय मलयालम एव हिन्दी साहित्य को एक दूसरे के निकट लाना था।

स्वातन्त्र्योत्तर काल मे केरल के हिन्दी प्रेमियो ने कई हिन्दी पत्रिकाए चलाई, जिनमे 'अरविन्द', 'त्रिभाषी राष्ट्रवाणी', प्रताप', 'युगप्रभात', 'आर्य कैरली', 'ग्रन्थालोकम्', 'केरल भारती', केरल ज्योति', 'साहित्य मण्डल पत्रिका' आदि प्रमुख हैं। सन् 1951 फरवरी मे कोल्लम से 'अरविन्द' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके सम्पादक कोल्लम के उत्साही हिन्दी कार्यकर्त्ता श्री चित्तरजन रहे। सम्पादक ने यह स्पष्ट किया था कि 'अरविन्द' का मूल उद्देश्य हिन्दी पढनेवालो को पूरी मदद देना ही था। इस पत्रिका के केवल चार अक ही निकल सके।

केरल मे प्रकाशित हिन्दी पत्रिकाओ के बीच 'त्रिभाषी राष्ट्रवाणी' का अपना विशेष महत्त्व था। यह केरल हिन्दी प्रचार सभा की मुख पत्रिका के रूप मे प्रकाशित हुई थी। इसका प्रथम अक अगस्त 1953 मे केरल हिन्दी प्रचार सभा के सस्थापक स्व० के० वासुदेवन पिल्लै के सम्पादकत्व मे निकला था। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमे तीन भाषाओ—मलयालम, हिन्दी, तमिल—मे कविताए, कहानिया, लेख और अनुवाद छपते थे। यह त्रिभाषी पत्रिका प्रति सप्ताह निकलती थी। इसम हिन्दी प्रचार आन्दोलन तथा तत्कालीन राजनीति पर गम्भीर विचार सम्पादकीय रूप में निकलते थे। हिन्दी के प्रति केरलीयो के मन मे रुचि बढाने मे इस पत्रिका ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। लगभग इसी समय कोच्चिन से 'प्रताप' नाम की एक पत्रिका भी निकली थी जिसका सम्पादकत्व श्री० डी० विश्वनाथ सलय्या करते थे।

सचम प्रगस्त केरल की हिन्दी पत्रिका 'युग प्रभात' थी। इस सचित्र साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन सन् 1956 म केरल की प्रमुख मलयालम पत्रिका 'मातृभूमि' के कार्यालय, कालिकट से, हुआ था। सर्वश्री एन० वी० कृष्ण वारियर और के० रविवर्मा इसके सम्पादक रहे जो कई भाषाओ के ज्ञाता और हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। प्रस्तुत पत्रिका मे अहिन्दी भाषी प्रदेश के ही नही, हिन्दी प्रदेश के लेखको के लेख भी प्रकाशित

हुए हैं। सच्चे ज्ञानसाधक सम्पादकों के सम्पादकत्व में यह पत्रिका सत्रह वर्षों तक नियमित रूप से निकलती रही। 'आर्य कैरली' का प्रकाशन कोच्चिन में स्थित समस्त केरल साहित्य परिषद् की ओर से सन् 1957, जुलाई, में शुरू हुआ था। इसमें हिन्दी और मलयालम के साहित्यिक लेख प्रकाशित होते थे। इसकी सम्पादक समिति में स्व० प्रो० चन्द्रहासन, महाकवि जी० शंकर कुरुप आदि भी थे। इसकी भाषा और विचार का स्तर बहुत ऊंचा था। सन् 1958 में ही दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की केरल शाखा ने एक हिन्दी मलयालम पत्रिका 'केरल भारती' का प्रकाशन आरम्भ किया। केरल के हिन्दी लेखकों को अपनी मौलिक प्रतिभा को अभिव्यक्ति देने का सुअवसर यह पत्रिका देती रहती है। इस पत्रिका में प्रकाशित लेख यह स्पष्ट करते हैं कि हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण एवं जटिल विषयों पर भी केरल के हिन्दी लेखक अच्छे लेख लिख सकते हैं। अभी इसका सुचारु रूप से प्रकाशन होता रहता है।

समस्त केरल साहित्य परिषद् की तरह हिन्दी में पत्रिका चलानेवाली और एक सांस्कृतिक संस्था केरल ग्रंथशाला संघम् है। उन्होंने सन 1961 के नवम्बर में उनकी अपनी मासिक पत्रिका में हिन्दी विभाग शुरू किया। इसमें स्तरीय लेख प्रकाशित होते थे। इसका स्वागत केरल के सभी हिन्दी-प्रेमियों ने किया था। राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय एकता पर इसके विविध अंकों में प्रकाशित सम्पादकीय टिप्पणियां उत्कृष्ट कोटि की हैं।

केरल के हिन्दी प्रेमियों का ध्यान मौलिक लेखन की ओर आकृष्ट करनेवाली और एक पत्रिका केरल हिन्दी प्रचार सभा, त्रिवेन्द्रम, की ओर से प्रकाशित 'केरल ज्योति' है। इसका प्रकाशन सन् 1965 से हुआ और अभी नियमित रूप से निकलती है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योग देना और केरल के हिन्दी प्रेमियों को मौलिक हिन्दी लेखन की प्रेरणा देना इस पत्रिका के प्रमुख उद्देश्य में से है। अब केरल हिन्दी साहित्य मण्डल की मुखपत्रिका के रूप में एक त्रैमासिक पत्रिका 'साहित्य मंडल पत्रिका' नाम से प्रकाशित होती है। इसमें दक्षिण के साहित्य का अनुवाद और दक्षिण के लेखकों का सृजन दोनों, प्रकाशित होते रहते है।

ऊपर जितनी पत्रिकाओं की चर्चा हुई है, उनके अतिरिक्त सहकारी हिन्दी प्रचारक', केरल पत्रिका', 'भाव और रूप' जैसी पत्रिकाओं के नाम भी लिए जा सकते है। वस्तुतः केरल में प्रकाशित सभी हिन्दी पत्रिकाओं के प्रमुख उद्देश्य हिन्दी प्रचार आन्दोलन को शक्ति देना और राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाना रहे हैं। उत्तर और दक्षिण के बीच सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समन्वय करने की विराट चेष्टा इन पत्रिकाओं ने की है। इनके विभिन्न अंकों में प्रकाशित सम्पादकीय टिप्पणियां इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए केरल का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। महाराजा स्वाति तिरुनाल के समय में लेकर आज तक हिन्दी में मौलिक लेखन का कार्य निरंतर रूप से चलता रहा है। केरलीयों से रचित कविताएं और कहानियां कृतित्व की मौलिकता एवं प्रौढ़ता के कारण हिन्दी साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त करने योग्य हैं। समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं

मे प्रकाशित स्वतत्र निबध तथा अन्य आलोचनात्मक ग्रथ यह प्रमाणित करते हैं कि हिन्दी के माध्यम से अपनी मौलिक प्रतिभा को रूप देने मे केरल के हिन्दी लेखक पूर्णत सफल हो सके हैं। केरल के लेखक जटिल एव सकीर्ण विषयों पर भी स्वतत्र विचार प्रस्तुत कर सके है। अनुसन्धान के विषयो मे और अनुसन्धान सम्बन्धी दृष्टि-कोण मे केरल के विद्वान भी भारत के अन्य प्रातो के विद्वानो से भिन्न रुचि के नहीं हैं। साहित्य की प्राय सभी विधाओ पर केरल मे अनुसन्धान कार्य चलता रहता है। शोध कार्य की स्तरीयता भी प्रशसनीय है। यह कार्य निष्ठा, तटस्थता एव विद्वत्ता के साथ होता है। हिन्दी मे मौलिक रचनाए करने के साथ-साथ मलयालम साहित्य को हिन्दी मे उतारने का स्तुत्य प्रयास भी हो रहा है।

3

हिन्दी साहित्य को तमिलनाडु की देन

र० शौरिराजन

किसी भी भाषा और उसके साहित्य को प्रमुख प्रदेश या प्रदेशों के द्वारा सम्पन्न होने की बात प्रचलित शब्दावली के सहारे बार-बार की जाती है। राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा के संदर्भ में तो भाषाई लेन देन (आदान-प्रदान) की बात में अधिक अर्थ-वत्ता खोजी जाती है जो वर्तमान राष्ट्रीय सोच या माग भी कही जा सकती है।

भाषा और साहित्य के मानव स्तरों पर सम्पन्न होना चाहनेवाले और हो रहे लोगों के संदर्भ में भी यह बात अधिक मतलब रखती है। किसी भी भाषा-साहित्य के सम्पन्न होने का तात्पर्य है कि उसमे जुड़े हुए लोगों के बौद्धिक, वैचारिक एवं सांस्कृतिक जीवन-स्तर सम्पन्न हुए हैं।

विद्या, जो भाषा, साहित्य और चिंतन की अच्छी पहचान है, अपने-आपमें रागशील होने के साथ-साथ विकासकारी तत्त्व भी है। इस अक्षुण्ण ज्ञान-सम्पदा को पाकर कोई भी समुदाय भौतिक एवं बौद्धिक स्तरों में समुन्नत हो जाता है। वे बुद्धि-जीवी लोग जो उस ज्ञान-सम्पदा की लेन-देन करवाते हैं अवश्य बौद्धिक क्षेत्र में सुसम्पन्न होते हैं। इसलिए कहा गया है कि ज्ञानसम्पदा को जितना भी बाटा जाए, उतना ही उसका सम्वर्धन होता रहता है। वह समृद्ध हो जाती है। उस समृद्धि के स्वामी उसे लेनेवाले, देनेवाले, उनका प्रदेश और राष्ट्र सब होते हैं। इस दृष्टि से, भारत के अधिकांश जन-मानस की वाणी हिन्दी को सम्पन्न करते, यानी उस वाणी के महान् स्वर को सम्पन्न कर लेने की प्रवृत्ति एक सामाजिक प्रक्रिया है।

तमिलनाडु भारत का दक्षिणी प्रदेश है। यहां की भाषा तमिल है, जो संस्कृत की तरह प्राचीन और सम्पन्न भाषा होने के साथ अविच्छिन्न परम्परा और विकासशील जीवन्तता वाली भी है। यह मानी हुई बात है कि द्रविड़ जाति, संस्कृति, सभ्यता और साहित्य के ऐतिहासिक प्रमाण तमिल भाषा में ही मिलते हैं।

द्रविड़ कुल की भाषाएं—तमिल, तेलुगु (आन्ध्र), कन्नड़ (कर्नाटक) और मलयालम (केरल) एक ही मूल स्रोत की शाखाएं हैं। इनमें से तमिल में प्राचीनतम द्रविड़ तत्त्वों को अधिक मात्रा में पाया जा सकता है।

तमिलनाडु के उत्तर में आन्ध्र है, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूर्व में बंगाल की खाड़ी है और पश्चिम में केरल और कर्नाटक हैं। लगभग चार करोड़ जनसंख्यावाले इस प्रदेश में एक ही भाषा तमिल बोली जाती है। कुछ ठेठ जनपदीय (प्रान्तिक) शब्दों, स्वर स्वरूप, आंचलिक पर्यायी शब्द-भेदों को छोड़कर तमिल भाषा में कोई विशेष स्वरूप भेद नहीं है।

आर्यकुल की भाषाओं से कम सम्पर्क एव व्याघात होने के कारण तमिल की मूल प्रवृति आज भी अपनी सहज विकासशीलता के साथ पाई जाती है। फिर भी इतर भाषाओं के उपादेय तत्त्वों को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति बराबर पाई जाती रही है।

तमिल के प्राचीनतम लक्षण ग्रन्थ 'तोलकाप्पियम्' के कई प्रकरणों मे उल्लेख हुआ है कि भाषा एव साहित्य के विकास के लिए इतर भाषाओं से आवश्यक शब्दों, सरचना और अनुवाद को आत्मसात् कर लेना आवश्यक है।

एक उल्लेख है—

"इयर् चोल् तिरिचोल् तिनॅच् चोल्
वटचोल् एरु अनॅत्ते चेयुळ्
ईट्टच् चोल्ले।"

—तोलकाप्पियम् (सूत्र 880)

(मूल शब्द, परिवर्तित शब्द, आंचलिक शब्द और उत्तर के शब्द—उत्तरापथ की भाषाओं के शब्द, तमिल साहित्य के लिए आवश्यक हैं और बाद में वे शब्द तमिल के निजी शब्दभण्डार मे घुल-मिल जाते हैं।)

यहा उन उत्तर की भाषाओं—प्राकृत, सस्कृत आदि—के शब्दों से तात्पर्य है कि जो उनके समय के लोक-व्यवहार मे मिल जुल गए थे। यह भाषायी उदारता आगे चलकर विकसित होती रही। जब यह उदारता कट्टरता का रूप लेने लगी, तो भाषाई विरोध भड़क उठना भी स्वाभाविक था। यह भी एक सामाजिक चेतना का तकाजा है।

तोलकाप्पियम् का एक और उल्लेख है—

"तोकुत्तल् विरित्तल् तार्कॆविरि मोपि-
पेयर्तु अतर्पटयानलोड् अनैभरपिनवे।"—सूत्र 1590

(ग्रन्थ के चार भेद होते हैं—एक विविध रचनाओं को सकलित करना, दूसरा सकलित रचना का विशदीकरण, तीसरा ग्रन्थ जिसम सकलन और विशदीकरण एक साथ होता, चौथा ग्रन्थ वह है जिसमें इतर भाषाओं के उत्तम ग्रन्थों का तमिल मे सही और सुन्दर अनुवाद करना जिसम मूल के कथ्य और रसभाव को कोई क्षति न पहुचे।)

इन बातों से स्पष्ट है कि तमिलभाषी विद्वानों ने पड़ोस और राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषाओं स अपेक्षित आदान को महत्त्व दिया था। सस्कृत, प्राचीन भारत की सास्कृतिक, धार्मिक और शैक्षिक भाषा होने के साथ भारतीय शिक्षित, अभिजात एव राजकीय वर्गों की सम्पर्क भाषा भी रही थी। सस्कृत से तमिल ने कई बातें ली। वैदिक, बौद्ध, जैन आदि धार्मिक परम्पराए सस्कृत के माध्यम से ही तमिल प्रदेश मे फैली थी। उनके द्वारा न केवल धार्मिक, अपितु साहित्यिक प्रवृत्तिया भी जो सस्कृत म विकसित हुई थी, तमिल को प्रभावित करती आई है। यह भाषाविज्ञान एव समाज विज्ञान की दृष्टियों से अनुसन्धान का विषय है।

तमिल के प्राचीन ग्रन्थों म बहुभाषा ज्ञान का महत्त्व समादृत हुआ है। उस जमाने के तमिल विद्वानों मे प्रादेशिकता, भाषाई सकीर्णता लेशमात्र भी नही थी। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व के सघकालीन ग्रन्थ 'पुरनानू' म 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना कई बार व्यक्त की गई है। सघकालीन कवि कपिल ने उत्तर के नरेश

विश्वक्सन् (बृहस्थ) के अनुरोध पर तमिल प्रदेश की विशिष्ट संस्कृति, प्रकृति-सौन्दर्य आदि पर 'कुरिंचिप्पाट्टु' नामक सुन्दर प्रबन्ध काव्य की रचना की। दूसरे एक उत्तर भारतीय नरेश ब्रह्मदत्त ने तमिल सीखकर, उसमें पद्य रचने की क्षमता प्राप्त की, कई सुन्दर पद्यों की रचना की और तमिल प्रदेश की संगीत विद्या में भी प्रवीणता पाई। याप नामक प्राचीन तमिल प्रदेशीय वाद्य बजाने में वह सिद्धहस्त था।

तमिल नरेशों की राजसभाओं में उत्तर भारत के राजनीतिज्ञ और राजनयिक आदरपूर्ण स्थान पाते थे। तमिलनाडु के प्रमुख नगरों में इतर भाषा-भाषी लोग व्यापार, तीर्थाटन, शिक्षा आदि के लिए निवास करते थे। परवर्ती काल में उत्तर और दक्षिण के सम्पर्क और निकट आये। संस्कृत तो पहले ही से थी; अन्य प्रादेशिक भाषाओं का भी व्यवहार होने लगा। विशेषकर हिन्दी का परिचय तमिलनाडु के प्रमुख नगरों के लोगों को दो शती पूर्व ही हो चुका था।

तमिलनाडु में हिन्दी प्रचार :

तमिलनाडु में हिन्दी का प्रचार शतियों पूर्व से ही चलता आ रहा है। तीर्थयात्री, व्यापारी, धर्मगुरु और राजनीति के नेता इस प्रसार को बल देनेवाले थे। हिन्दी को भारत की राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा के रूप में अपनाने की अपील बालगंगाधर तिलक ने पहले दी। भारतीय कांग्रेस महासभा की कार्रवाइयों की लोकप्रियता और व्यापकता के साथ हिन्दी की उपयोगिता बढ़ती रही।

यद्यपि राजा राममोहनराय, केशवचंद्र सेन, दयानंद सरस्वती आदि राष्ट्र नेताओं के प्रयास से हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद स्वीकृत हो चुका था, फिर भी लोकमान्य तिलक के चार सूत्री स्वदेशी कार्यक्रम की प्रस्तुति के बाद ही जनमानस में हिन्दी के प्रति आस्था घर करने लगी।

बीसवीं शती के प्रारम्भ में भारतीय कांग्रेस का राष्ट्रवादी दल (गरम दल), जिसके अग्रणी नेता थे, पंजाब के लाला लाजपतराय, महाराष्ट्र के लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और बंगाल के विपिनचंद्र पाल, अधिक लोकप्रिय था। तमिलनाडु में व० वु० चिदंबरम् पिल्लै, सेलम् विजयराघवाचारी, राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती, राजाजी आदि इस 'लाल-बाल-पाल' वाले राष्ट्रवादी गरम दल के प्रमुख समर्थक थे। इस दल का जबर्दस्त नारा था चारसूत्री कार्यक्रम—स्वदेशी प्रचार, विदेशी बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज। भारत-भर में इस चारसूत्री जन-आन्दोलन का जोरों से प्रचार-प्रसार हुआ था।

यद्यपि राजा राममोहनराय, केशवचंद्र सेन, दयानंद सरस्वती, मदनमोहन मालवीय आदि राष्ट्रनेताओं के प्रयास से हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद स्वीकृत हो चुका था, फिर भी लोकमान्य तिलक के चारसूत्री स्वदेशी कार्यक्रम की प्रस्तुति के उपरान्त ही जनमानस में हिन्दी के प्रति आस्था पनपने लगी।

सन् 1904 में तिलक के यह उद्गार भारत-भर में गूंज उठे—"राष्ट्रभाषा की आवश्यकता अब सर्वत्र समझी जाने लगी है। राष्ट्र के संगठन के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे भारत के सब प्रांतों में समझा जा सके। लोगों में अपने विचारों का अच्छी तरह प्रचार करने के लिए भगवान बुद्ध ने भी एक भाषा प्रधानता दी और उसको बढ़ावा दिया। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा बन

राष्ट्रभाषा सर्वसाधारण के लिए जरूरी होनी चाहिए।"

सन् 1905 में, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा एक सम्मेलन आयोजित हुआ था, जिसकी अध्यक्षता रमेशचन्द्र दत्त ने की थी। यहीं पर लोकमान्य तिलक ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि घोषित किया था। इस संदर्भ में उन्होंने कहा था, "सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्त्व की यह बात ध्यान रखने की है कि एक लिपि निर्धारित करने का यह आन्दोलन केवल उत्तर भारत के लिए नहीं, यह एक वृहत्तर आन्दोलन का समदृष्टिरूप है। मैं कह सकता हू कि समग्र भारत के लिए एक भाषा मान लेने का यह एक राष्ट्रीय आन्दोलन है। क्योंकि किसी जाति को निकट लाने के लिए एक भाषा ही एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। एक भाषा के माध्यम से ही आप अपने विचार दूसरा पर व्यक्त कर सकते हैं।"

उन्होंने आगे चलकर यह भी कहा, "हमारा लक्ष्य न केवल समग्र उत्तर भारत के लिए ही, वरन् मैं तो कहूगा कि आगे चलकर मद्रास के दक्षिणी भाग समेत समस्त भारत के लिए एक भाषा रखने का भी है।"

लोकमान्य तिलक के इस आह्वान की गूज देश के कोने-कोने मे फैल गई और उसका सर्वत्र स्वागत हुआ। राष्ट्रीय नेताओ और कार्यकर्ताओ ने इसे राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप देना आरम्भ कर दिया और हिन्दी-प्रचार का पर्याय बन गया।

तमिलनाडु मे भी राष्ट्रभाषा प्रचार इस जमाने मे शुरू हुआ। तमिल के राष्ट्रीयचेता कविवर सुब्रह्मण्य भारती ने सन् 1906 1907 मे अपने राष्ट्रीयवादी तमिल साप्ताहिक 'इंडिया' मे तिलक जी की प्रेरणा से हिन्दी के पाठ छापे थे। तमिल माध्यम से हिन्दी सिखाने के इस प्रयास का तमिल भाषियो के बीच मे अच्छा स्वागत हुआ था। बाद मे 'स्वदेशमित्रम' आदि राष्ट्रीय विचारवान तमिल पत्र पत्रिकाओ ने भी हिन्दी-पाठ-प्रकाशन करना शुरू किया।

हालांकि महात्मा गाधी नरम दल के थे और आगे चलकर एक युगप्रवर्तक राष्ट्रनेता बने, शुरू से ही हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। सन् 1909 ई० मे गाधीजी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' मे लिखा था, "सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि मे लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिन्दू-मुसलमानो के विचारो को ठीक रखने के लिए बहुतेरे हिन्दुस्तानियो का दोनो लिपिया जानना जरूरी है। उनके अनुसार हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा के दो नाम हैं।"

1918, मार्च, मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, का आठवा अधिवेशन महात्मा गाधीजी की अध्यक्षता मे इदौर शहर म हुआ। गाधीजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण के समापन मे कहा, "... मेरा नम्र, लेकिन दृढ अभिप्राय है कि जब तक हम हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओ को उनका योग्य स्थान नही देते, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक है। इस सम्मेलन द्वारा भारतवर्ष मे इस बडे प्रश्न का निराकरण हो जाए, ऐसी मेरी आशा है और प्रभु के प्रति प्रार्थना है।"

इसी सम्मेलन म निश्चय हुआ कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार केन्द्र खोला जाए और योग्य हिन्दी शिक्षको के द्वारा हिन्दी प्रचार कराया जाए। गाधीजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र देवदास गाधी को मद्रास भेजा। दक्षिण मे प्रथम हिन्दी प्रचारक के रूप मे देवदास गाधी ने हिन्दी सीखने की राष्ट्रीय सेवा मे अपना सहयोग पहुचाया।

17 मई, 1918 को मद्रास शहर के प्रसिद्ध सभाभवन गोखले हाल मे, जो तत्कालीन होम रूल लीग कार्यालय था, डा० एनी बेसेंट (विदेशी महिला जो राष्ट्रीय आन्दोलन की नेत्री थी) की अध्यक्षता मे हिन्दी का प्रथम वर्ग शुरू हुआ। देवदास गाधी के उस महत्वपूर्ण हिन्दी वर्ग के छात्रो मे सी० पी० रामस्वामी ऐयर, के० भाष्यम्, टी० आर० वेंकटराम शास्त्री, एन० सुन्दरय्यर आदि गण्य-मान्य वकील एव पत्रकार, राष्ट्रीय नेता, स्वयसेवक, समाजसेवी थे। उन दिनो तमिलनाडु मे ही नही, पूरे दक्षिण मे हिन्दी वर्ग की माग इतनी बढ गई कि अकेले देवदास गाधी सभाल नहीं सके। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक और प० प्रतापनारायण वाजपेयी उनकी सहायता के लिए आए थे। 1919 म प० हरिहर शर्मा, क० मा० शिवराम शर्मा आदि तमिलभाषी राष्ट्रसेवी प्रयाग मे जाकर हिन्दी पढ आये और तमिलनाडु मे हिन्दी प्रचार का काम पूरे उत्साह के साथ करने लगे। तमिलनाडु मे हिन्दी प्रचार का कार्य सर्वप्रथम सेलम् शहर म राजाजी के सहयोग से शुरू हुआ। उल्लेखनीय बात है कि ईरोड मे ई० वे० रामस्वामी नायकर के घर मे भी हिन्दी वर्ग चलाया गया। उस समय नायकर जी पक्के कांग्रेसी थे। बाद मे नायकर ने हिन्दी, उत्तर भारत, कांग्रेस और धार्मिक-जातीय रीति प्रथाओ को अपने राजनीतिक विरोध के लक्ष्य बनाए। उन्ही के दलवालो न हिन्दी विरोध का विषबीज तमिलनाडु मे बोया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, के तत्वावधान मे दक्षिण के चारो प्रान्तो म हिन्दी प्रचारका कार्य विस्तार से बढता रहा। सन् 1927 से हिन्दी 'दक्षिण भारत प्रचार सभा, मद्रास' के नाम से स्वायत्तशाली सार्वजनिक सस्था के रूप मे सभा हिन्दी प्रचार काय को नये और व्यापक पैमाने पर प्रारभ करने लगी। महात्मा गाधी आजीवन अध्यक्ष रहे। राजाजी का सक्रिय सहयोग सभा को लबे अरसे तक मिलता रहा। अलावा इसके, दक्षिण और उत्तर के राष्ट्रीय नेताओं का पूरा सहयोग सभा को मिलता रहा। जनता का पूरा समर्थन तो था ही। उस जमाने म द० भा० हिन्दी प्रचार सभा का केन्द्रीय कार्यालय न केवल भाषा प्रचार केन्द्र था, अपितु उत्तर-दक्षिण का सास्कृतिक एव राजनीतिक गतिविधियो का सेतुस्थल था। सभी राष्ट्रीय नेता एव कार्यकर्ता सभा-भवन का पुनीत तीर्थस्थल मानकर आया करते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन की कई ऐतिहासिक गतिविधिया के निर्माणस्थल के रूप मे सभा की प्रसिद्धि रही है।

देवदास गाधी ने दक्षिण मे हिन्दी प्रचार का कार्य शुरु किया और कुछ महीने मद्रास शहर एव दक्षिण के अन्य भागों म भ्रमण कर हिन्दी प्रचार केन्द्रो को सगठित किया। बाद की वह पूरा सगठन-कार्य तमिल भाषी, गाधीवादी राष्ट्रसेवी प० हरिहर शर्मा को सौंपकर वापस चले गए।

प० प्रतापनारायण वाजपेयी, प० रघुवरदयालु मिश्र, प० अवधनदन, प० ऋषिकेश शर्मा आदि उत्तर भारतीय हिन्दी प्रचारको के सहयोग से श्री हरिहर शर्मा पूरी लगन के साथ हिन्दी प्रचार कार्य को राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख साधन के रूप म आग बढाने लगे। कई प्रचारक प्रशिक्षण-केन्द्र खोले गए। तीन-चार वर्षो म लगभग दो सौ हिन्दी प्रचारक तैयार हो गए। आम जनता मे हिन्दी के प्रति अभिरुचि बढने लगी। छात्र-छात्राओ की सख्या बढने लगी।

उस जमाने के (सन् 1920-30) सभी कांग्रेसी नेता और गाधीवादी अनुयायी हिन्दी प्रचार म चाव से भाग लेते थे। कांग्रेस महासभा के वार्षिक अधिवेशनों मे

(अखिल भारतीय एव प्रातीय अधिवेशनो मे) एक दिन हिन्दी प्रचार-सम्मेलन के रूप मे बैठक करने की परिपाटी थी। गाधीजी के प्रभाव से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का केन्द्रीय कार्यालय एव इसके शाखा कार्यालय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख केन्द्रों के रूप मे प्रशस्त हुए। तत्कालीन अधिकाश काग्रेसी नेता, उत्तर और दक्षिण के, सभाभवन मे इकट्ठे होते और महत्त्वपूर्ण निर्णयो पर विचार-विमर्श करते। आम जनता के बीच मे द० भा० हिन्दी प्रचार सभा का वर्चस्व समाहृत हुआ। हिन्दी के प्रति लोगो मे दिलचस्पी बढाने का श्रेय हिन्दी साहित्यकारो को भी जाता है। प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, महादेवी वर्मा, दिनकर, सुमित्रानदन पत, काका कालेलकर, प० सुदरलाल आदि साहित्यकार दक्षिण यात्रा के दौरान द० भा० हिन्दी प्रचार सभा और उसके केन्द्रो मे जाते और छात्र छात्राओ को अपने साहित्यिक भाषणो से प्रमुदित करते।

आज भी द० भा० हिन्दी प्रचार सभा की तमिलनाडु शाखा, जो तिरुच्चि नगर मे है, हिन्दी के प्रचार-प्रसार कार्य को बडी लगन के साथ कर रही है। उसके मडल सगठक, प्रशाखा प्रभारी, प्रमाणित प्रचारक और हिन्दी-प्रेमी पूरे तमिलनाडु मे हिन्दी भाषा और साहित्य की निष्ठापूर्ण सेवाए कर रहे है। पूरे तमिलनाडु मे अब तक तीन लाख से अधिक नर-नारी हिन्दी का सामान्य ज्ञान पा चुके हैं। करीब चार हजार हिन्दी शिक्षक एव प्रचारक हिन्दी पढा रहे हैं। अब तमिलभाषी लोगों के मन मे हिन्दी के प्रति लगाव पूर्ववत् बढ रहा है। बीच मे राजनीतिक बहकावे से जो उदासीनता जनमानस मे फैली थी, वह दूर होती जा रही है।

तमिलनाडु मे हिन्दी प्रसार मे राजाजी का सक्रिय सहयोग

राजाजी शुरू से ही हिन्दी के समर्थक थे। हिन्दी को साहित्यिक, सास्कृतिक एव राष्ट्रीय सेतु के रूप मे अपनाने की अपील वे तमिलभाषी जनता से बराबर करते आ रहे थे। 1956 से राजनीतिक प्रतिबद्धता के कारण, हिन्दी को अग्रेजी के विकल्प मे प्रतिष्ठित करने की राजभाषा-नीति को लेकर राजाजी ने खुलकर हिन्दी विरोध किया। लेकिन उस तर्क मे भी वे हिन्दी को राष्ट्रीय सपर्क भाषा के रूप मे प्रचारित करने और अपनाने के पक्ष मे ही थे। उन्होने कोई सकोच नही दिखाया कि हिन्दी विरोध राजनीतिक प्रतिपक्ष के दावपेंच के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। फिर भी जिस मात्रा मे राजाजी की देन हिन्दी को मिली थी, वह कम महत्त्वपूर्ण नही है।

1928 मे राजाजी ने तमिलभाषी जनता से अपील की, "....यदि दक्षिण भारतीय क्रियात्मक रूप से पूरे देश के साथ एक सूत्र मे बधकर रहना चाहते हैं और वे अखिल भारतीय मामलो से तथा तत्सबन्धी निर्णयो के प्रभाव से अपने को दूर नही रखना चाहते, तो उन्हे हिन्दी पढना जरूरी है। यह सभव और वाछित नहीं है कि अग्रेजी को बनाए रखकर पूरे भारत मे जनता द्वारा अपने प्रतिनिधियो पर नियत्रण को कमजोर किया जाए।" भारत की सास्कृतिक एकता के लिए भी एक सर्वमान्य भारतीय भाषा को ग्रहण करना पडेगा। दक्षिण भारतीयो को पूरे भारत मे सरकारी तथा व्यावसायिक नौकरिया पाने के लिए भी हिन्दी बोलने, समझने और लिखने का ज्ञान प्राप्त करना जरूरी होगा।

"हिन्दी के ग्रहण का अर्थ मातृभाषा के महत्त्व को कम करना नहीं है। हिन्दी का महत्त्व केवल उसे भारत की समान्य राष्ट्रभाषा बनाने के सम्बन्ध में ही है। इसलिए दक्षिण के लोगों को हिन्दी सीखनी चाहिए। हां, उन्हें अपनी मातृभाषा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जब हिन्दी अखिल भारत की सरकारी नौकरियों की भाषा और मातृभाषा प्रांत (राज्य) विशेष की राजकीय एवं सांस्कृतिक कार्यों की भाषा बन जाएगी, तो अंग्रेजी पढ़ने में लगनेवाला समय इस सीमा तक बचेगा कि उससे मातृभाषा को पूरा विकास करने का प्रोत्साहन और अवसर प्राप्त होगा।"

राजाजी का यह वक्तव्य उस जमाने में और बाद में भी हिन्दी को अपनाने के पक्ष में समर्थ सहयोग देता रहा। दक्षिण में बहुत दिनों तक हिन्दी स्वराज्य भाषा और हिन्दी की परीक्षाएं स्वराज्य-परीक्षाओं के नाम से पुकारी जाती रहीं। यह नाम खुद राजाजी ने दिया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 26वां अधिवेशन राजाजी के सहयोग से मद्रास शहर में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अहाते में सेठ जमनालाल बजाज के सभापतित्व में 26 से 29 मार्च 1937 तक चला। इस सदर्भ में सभा का पदवीदान समारोह (दीक्षांत समारोह) गांधीजी की अध्यक्षता में हुआ था। अभिभाषणकर्ता थे बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन। इसके साथ भारतीय साहित्य परिषद का दूसरा अधिवेशन महात्मा गांधी के सभापतित्व में सपन्न हुआ। इसके स्वागताध्यक्ष थे तमिल के प्रकांड पंडित एवं प्रख्यात ग्रन्थसंपादक महामहोपाध्याय डा० उ० वे० स्वामीनाथ अय्यर। इस परिषद् के मंत्री थे काका कालेलकर।

इस चतुर्दिवसीय साहित्यिक समारोह में उत्तर और दक्षिण के गण्यमान्य नेता, साहित्यकार, उद्योगपति, शिक्षाशास्त्री आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने सोत्साह भाग लिया, जिनमें श्री जयचंद्र विद्यालंकार, श्रीमती लीलावती मुंशी, श्रीमती कस्तूरबा गांधी, सर्व श्री रामनारायण मिश्र, गणेश नरोत्तम शास्त्री, टी० प्रकाशम्, सांबमूर्ति, रा० कृष्णमूर्ति 'कल्कि' शाडिल्यन आदि प्रशस्त महानुभावों के नाम उल्लेखनीय हैं।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इस छब्बीसवें अधिवेशन को जिस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर मद्रास में बुलाया गया था, वह पूर्ण हुआ। मद्रास जैसे हिन्दीतर प्रदेश में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का होना इसलिए महत्त्वपूर्ण माना गया कि मद्रास ने हिन्दी राष्ट्रभाषा मान लिया है। मद्रास के उस अधिवेशन की यह विशेषता रही कि यहां राष्ट्रीय दृष्टिकोण से हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में विचार किया गया। इस सिलसिले में कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए। उल्लेखनीय है कि उनमें से दो प्रस्ताव राजाजी ने तमिल भाषा में प्रस्तुत किए और उनके समर्थन में दक्षिण के सुप्रसिद्ध नेता 'आन्ध्रकेसरी' श्री टी० प्रकाशम्, श्री सांबमूर्ति, श्री कालेश्वर राव और श्री याकूब हसन हिन्दी में बोले।

राजाजी का पहला प्रस्ताव था—"यह सम्मेलन कांग्रेस की कार्यसमिति से अनुरोध करता है कि वह ऐसा निश्चय करे कि भविष्य में कांग्रेस की और उसकी अखिल भारतीय समिति और कार्य समिति की कार्रवाई में अंग्रेजी भाषा का उपयोग नहीं किया जाएगा और उसके बदले में हिन्दी अर्थात् हिन्दुस्तानी ही इस्तेमाल की जाएगी। लेकिन जो सदस्य हिन्दी में अपना मतलब पूरी तरह से नहीं समझ सकेगा, वह अंग्रेजी भाषा का उपयोग कर सकेगा।

"यह कहना जरूरी नहीं है कि जो सदस्य हिन्दी न जानने के कारण अपनी

प्रातीय भाषा मे बोलना चाहे, उसे कोई प्रतिबंध नही है। इस सम्मेलन की राय है, ऐसी हालत म आवश्यकता होने पर अनुवादक रखे जाए। यदि किसी को अंग्रेजी मे समझने की आवश्यकता पैदा हो, तो अध्यक्ष की सम्मति से कोई भी सदस्य अंग्रेजी का उपयोग कर सकेगा।" (27 मार्च 1937)

दूसरा प्रस्ताव बाबू पुरुषोत्तमदास टडन जी का हिन्दी सरचना मे सुधार लाने के सम्बन्ध म था। उसका विरोध हुआ। राजाजी और अन्य दाक्षिणात्य विद्वान नेता ही उसका डटकर विरोध करते थे। उन लोगो का तर्क था कि भाषा के मौलिक स्वरूप म सुधार करने का प्रयास भाषा को बिगाड़ना है। इस बात पर राजाजी का तर्क था —"हम यद्यपि पानी मिला हुआ दूध (गलत भाषा) पीने की आदत हो गई है, तो भी हम कभी यह सिफारिश नही करेंगे कि गोमाता (हिन्दी) की शरीर रचना मे कोई ऐसा जबर्दस्त वैज्ञानिक परिवर्तन किया जाए कि उससे पानी मिला दूध ही मिला करे। सीखनेवालो की सुविधा के लिए यदि हम व्याकरण मे सुधार करने लगें, तो उन्हीं को आगे चलकर किताबो की और बोलचाल की भाषा सर्वथा भिन्न मालूम होगी। तब वे और भी उलझन मे फस जाएगे। ' यदि हिन्दी के मान्य लेखक और कवि व्याकरण के पुराने बधनो को काटकर उनके विरुद्ध बलवा करने को तैयार हो और वे सुधरे हुए रूप म ही उसका व्यवहार अपनी सभी रचनाओ मे करने लगें तब तो भाषा के लिए कुछ जगह है।"

बावजूद जबर्दस्त विरोध के, यह प्रस्ताव टडन जी के प्रभाव से बहुमत पाकर स्वीकृत हुआ। किन्तु तुर्रा यह है कि बाद म वे भाषाई सुधार कार्यान्वित नही हो सके। राजाजी की दलीलें ही व्यावहारिक साबित हुईं।

राजाजी 1937 मे अतरिम सरकार के मुख्य मत्री बने। दक्षिण मे, विशेषकर तमिलनाडु मे वे हिन्दी प्रचार-सम्बन्धी कार्यकलापो को यथासाध्य सहयोग देते रहे। वे हिन्दी प्रचार-सम्बन्धी सभाओ मे भाग लेना अपना प्रिय कर्त्तव्य समझते थे। उस समय हिन्दी विरोध भी जोर पकडता रहा। राजाजी ने स्कूलो मे हिन्दी शिक्षा को अनिवार्य विषय बना दिया। इससे विरोध और भडक उठा। परन्तु राजाजी विचलित नही हुए। स्कूलो की बैठको मे भाग लेकर अपने प्रयास की उपयोगिता को समझाते। उन दिनो उनके भाषणो मे यही बातें हिन्दी के समर्थन म बार-बार बताई गईं—

"हम प्राप्त सीमित अधिकार के अतर्गत हमने हिन्दी शिक्षा को स्कूलों मे अनिवार्य बनाया है। मुख्यतया छठे से लेकर आठवें वर्ग तक हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था की गई है। इस मौके से लाभ उठाकर हमारे छात्रो को हिन्दी म व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। दक्षिण के युवा वर्ग को अच्छी नौकरिया और ऊचे ओहदो म अधिकतर सफलता पाने एव व्यापक क्षेत्र मे सेवा करने के लिए भी हिन्दी का ज्ञान परम आवश्यक है। इससे राष्ट्रीय एकता को अधिक बल मिलता है।

" भारत की तीन चौथाई तादाद के लोगो म हिन्दी बोली जाती है, इसलिए भारतीय जनता ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया है। सरकार का यह कर्त्तव्य है कि हिन्दी पढाने की पूरी सुविधा कर दी जाए ताकि छात्र छात्राए अपने भविष्य की भलाई के लिए हिन्दी पढ सकें। केवल तमिल का ज्ञान प्राप्त करने से वे तमिलनाडु के अदर ही काम कर सकते ह। मैं चाहता हू कि तमिलभाषी युवक-युवतिया खूब हिन्दी सीखें और भारत के अन्य लोगो मे भी जाकर दक्षता के साथ काम करें। भारत के अन्य

भागों में घूमने के लिए हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है।…

"…बच्चों को एक से अधिक भाषाएं जानना जरूरी है, हितकर भी। युवकों को अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए हिन्दी जानना अत्यंत उपयोगी है। साथ ही, भारतीय एकता के लिए हिन्दी की जानकारी बहुत जरूरी है। मातृभाषा के बाद का स्थान राष्ट्रभाषा को देना उचित ही है। अधिकांश छात्रवर्ग अपने भविष्य के लिए और राष्ट्रीय कर्त्तव्य के लिए हिन्दी पढ़ना चाहते हैं। इसी हेतु हमें हिन्दी शिक्षा को अनिवार्य बनाना पड़ा है। प्रत्येक भारतीय प्रजा को हिन्दी के प्रति आस्था होनी चाहिए और उस भाव से सीखना चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हरेक माता-पिता और विद्यार्थी हिन्दी शिक्षा का स्वागत करेंगे।"

सन् 1955 के बाद राजाजी का हिन्दी-विरोधी रुख केवल राजनीतिक दबाव से प्रेरित था। उस स्थिति में भी राजाजी राष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने की अपील तमिलभाषी जनता से करते थे। वे बड़ी तीव्रता से विरोध करते थे हिन्दी की सत्ताधारी नीति का और दुष्प्रचारित या आशंकित हिन्दी साम्राज्यवादी विभीषिका का।

खैर, अब वह रुख भी फीका पड़ गया। तमिलभाषी जनता अब हिन्दी की उपयोगिता का अनुभव करने लगी है। तथाकथित हिन्दी विरोध जो राजनीतिक कुचक्र था, अब बेकार साबित हुआ। छात्र छात्राएं अधिक संख्या में आशा और आतुरता के साथ हिन्दी सीख रहे हैं।

इतना तो जरूर मानना होगा कि जब तक राष्ट्रीय तत्त्वों का अवमूल्यन होता रहेगा, तब तक हिन्दी विरोध जैसी अराष्ट्रीय प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता रहेगा। राष्ट्रीय चेतना को जनमानस में, विशेषकर छात्र-जगत् में पनपने देना महत्त्वपूर्ण, अनिवार्य शैक्षिक मांग है।

हिन्दी साहित्य को तमिलनाडु की देन

अब तक हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार की बातें की गईं। क्योंकि भाषा के प्रचार के साथ ही साहित्य का प्रसार भी जुड़ा रहता है। मानी हुई बात है कि व्यावसायिक या आर्थिक उद्देश्य से ही इतर भाषाएं सीखने की प्रवृत्ति लोगों में जोर पकड़ती है। साहित्यिक अभिरुचि से प्रेरित होकर नई-नई भाषाएं सीखने की अभिलाषा कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में ही पाई जा सकती है। पहली शर्त है कि व्यक्ति की साहित्यिक अभिरुचि स्वभावतया प्रबल होनी चाहिए और बाद में अभिव्यक्ति की अदम्य आकांक्षा उसे निरंतर प्रेरित करती रहनी चाहिए। इन मौलिक गुणों के बिना कोई भी चिंतनशील व्यक्ति सही साहित्यप्रेमी और साहित्यकार नहीं बन सकता। साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति में साहित्यिक व्यक्तित्व, आंशिक ही सही, पाया जाना प्राकृतिक देन है।

तमिलनाडु में हिन्दी का प्रसार राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही हुआ था और हो रहा है। जहां तक हिन्दी लेखन की बात है, तमिलनाडु के कतिपय लेखकों ने हिन्दी को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। दुर्भाग्यवश यह बद्धमूल थोथी धारणा ही लेखन के क्षेत्र में छाई हुई कि "साहित्य लेन-देनकर भाषा के आवरण में लिपटी हुई कोई चीज है जिसकी खूबसूरती पूर्णतया उसके आवरण के खूबसूरत होने

पर निर्भर करती है।" इस दुर्बल धारणा से यह गलत मान्यता फैली है कि साहित्य में भाषा का सौन्दर्य और टकसालीपन प्रमुख दायित्व निभाये और विचारों व समय-बोधों का कोई महत्त्व नहीं है। इसके नतीजा यही होता है कि साहित्य अपने वास्तविक अर्थ को, अपनी सही शक्ति को खोकर भाषा जैसी दूसरे दर्जे का महत्त्व रखनेवाली चीज का मोहताज होकर दम तोड़ देगा। वस्तुत भाषा साहित्य को अभिव्यक्ति देने का एक माध्यम-भर है। किसी भी लेखक को अपनी क्षमता और अभिरुचि के अनुसार किसी भी भाषाई माध्यम को चुनने का अधिकार है। सबसे अहम् बात यह है कि साहित्य केवल भाषा नहीं है।

तमिलभाषी हिन्दी लेखकों की रचनाएं

हिन्दी प्रदेशों के साथ तमिलनाडु का सम्पर्क प्राचीनकाल से व्यापार, धर्म और तीर्थयात्रा के कारण चलता रहा है। हिन्दी को राष्ट्रीय आंदोलन की प्रमुख सवाहिका रूप में अपनाने की प्रेरणा फैलने लगी इस शती के प्रारंभ में। व्यावहारिक भाषाई माध्यम की भूमिका निभाना मात्र हिन्दी का काम था। 1930 से लेकर साहित्यिक आदान-प्रदान के क्षेत्र में हिन्दी की उपयोगिता महसूस की जाने लगी। पहले हिन्दी से स्पृहणीय साहित्य-रचनाओं का तमिल में तर्जुमा करने की प्रवृत्ति शुरू हुई। तमिल पाठक इस साहित्यिक प्रयास का सहर्ष स्वागत करने लगे। 1930 के आसपास तमिल की पत्र-पत्रिकाओं में प्रेमचंद, कौशिक, जयशंकर प्रसाद, सुदर्शन आदि हिन्दी कथाकारों की रचनाएं छपने लगीं। सर्वश्री आयूर अनंताचारी, अबुजम्माल, वी० एम० कृष्णस्वामी का० श्री श्रीनिवासाचारी आदि तमिल लेखकों ने हिन्दी साहित्य को तमिल में देकर तमिल पाठकों म हिन्दी के प्रति अभिरुचि बढ़ाई। शरत्चन्द्र, बंकिमचंद्र, डी० एल० राय आदि बंगला साहित्यकारों की रचनाएं प्रायः हिन्दी के माध्यम से तमिल में आई। श्रीमती अबुजम्माल का रामचरितमानस का तमिल अनुवाद, जो 1934 में छपा, लोकप्रिय हुआ। बाद से हिन्दी साहित्य को तमिल म लाने के महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय कार्य में सर्वश्री रा० वीलिनाथन, सरस्वती रामनाथन, र० शौरिराजन, एस० राघवन्, तुलसी जयरामन, एम० सुब्रह्मण्यम्, तगप्पन, जयलक्ष्मी, पलैयाणन् आदि दर्जनों लेखकों में उल्लेखनीय सेवा की है और वे अब भी कर रहे हैं।

प्रायः इन लेखकों ने हिन्दी और तमिल के बीच में सेतु का काम किया है। उनमें से कई लेखक सर्जनात्मक रचनाशीलता के कारण दोनों भाषाओं में मौलिक लेखन क्षेत्र में यशस्वी हुए। कई विद्वान् निबंध, तुलनात्मक अध्ययन, भाषा विज्ञान, अनुवाद आदि के क्षेत्रों में प्रशंसनीय सेवा कर रहे हैं। कविता के क्षेत्र में कम ही लोग आए हैं।

तमिल भाषी हिन्दी लेखकों की यह दिक्कत बराबर रहती है कि वे अपनी हिन्दी की अभिव्यक्ति में मातृभाषा के प्रभाव एवं व्याघात से बच नहीं पाते हैं। तमिल द्राविड़कुल की प्राचीनतम भाषा होने के कारण, उसकी शैली, स्वरूप एवं संरचना आर्यकुल की भाषा हिन्दी से बिल्कुल भिन्न होती है। इसलिए अधिकांश तमिलभाषी हिन्दी लेखकों की रचनाओं में सहज प्रवाह एवं जीवंत शैली की कमी पाई जाती है। डा० रांगेय राघव जैसे हिन्दी की धरती में जड़ जमाए और तमिल से बिल्कुल कटे हुए हिन्दी साहित्यकारों की बात अलग है। ऐसे लेखकों का केवल शोभा के लिए 'तमिल भाषी हिन्दी लेखक' मानने में कोई तुक नहीं है। यहां तमिलभाषी हिन्दी लेखकों से

मतलब है जो दोनों भाषाओं में बोलने-लिखने की क्षमता रखते हैं और उनकी जड़ अपेक्षाकृत हिन्दी के, तमिल में स्वाभाविक रूप से अधिक जमी हुई है। इन हिन्दी लेखकों को चाहिए कि हिन्दी की प्रकृति से अधिक परिचित हो और भाषाई पकड़ के लिए सतत अभ्यास करते रहें।

मौलिक सर्जनात्मक साहित्य

तमिलभाषी हिन्दी लेखकों को यह सुयोग कम ही प्राप्त हुआ है कि हिन्दी में सर्जनात्मक रचनाशीलता में रमे-बसे व्यक्तित्व को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर उभर सकें। केवल भाषाई दक्षता और साहित्य परिचय के होने से ही कोई साहित्य रचयिता—वह भी मौलिक साहित्यकार नहीं बन सकता। साहित्यकार के लिए मौलिक अपेक्षा है साहित्यिक प्रवृत्ति, चेतना और अभिव्यक्ति। ये अनिवार्य गुण किसी भी भाषा के संदर्भ में प्रकट हो सकते हैं। जिनमें साहित्यिक सचेतना स्वभावगत प्रकृति नहीं हो, उनसे चाहे तो लेखन हो सकता है, सर्जनात्मक लेखन सही मायने में नहीं हो सकता।

इस शर्त पर, तमिलभाषी हिन्दी लेखक मूलतः लेखक हैं पहले अपनी मातृभाषा के, बाद में सुविधा, स्वेच्छा और माग के अनुसार हिन्दी के भी लेखक हैं। इनमें सर्वप्रथम हिन्दी लेखक की खोज करना शायद संभव नहीं प्रतीत होता।

हिन्दी प्रचार की लोकप्रियता बढ़ने के बाद, इस सदी के चौथे दशक में कुछ उत्साही तमिलभाषी युवकों ने हिन्दी में लिखना शुरू किया। इनमें उल्लेखनीय हैं वी० एम० कृष्णस्वामी, का० श्री० श्रीनिवासाचारी, क० मा० शिवराम शर्मा आदि। इन्होंने अनुवाद अधिक किए, मौलिक लेखन (कुछेक लघुकथाओं, लेखों, रिपोर्ताजों को छोड़कर) बहुत कम किया।

बाद में रा० वीलिनाथन, डा० रा० शारंगपाणि, र० शौरिराजन, उमाचंद्रन, तुलसी जयरामन, डा० पी० जयरामन, सुमतीन्द्रन, विद्वान के० नारायणन, श्रीनिवासन आदि हिन्दी लेखक मौलिक रचनाएं, जो ललित साहित्य की हैं, करने में प्रवृत्त हुए। [इन]की कहानियां, कविताएं, उपन्यास, नाटक आदि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं [औ]र अब भी यदा-कदा हो रही हैं। पुस्तकाकार निकलने का सौभाग्य बहुत कम रचनाओं [को] ही मिला है।

सुमतीन्द्रन हिन्दी के सशक्त प्रगतिशील कवि हैं। इनकी प्रयोगवादी एवं [प्र]गतिवादी कविताओं का संग्रह 'एक पल की याद में' नाम से छठे दशक में प्रकाशित [हु]आ। इनकी कविताओं में हम बिंबों और प्रतिमानों को आंशिक रूप से पाते हैं। यथार्थ-[वा]दी दृष्टिकोण इनकी तथाकथित प्रयोगवादी कोशिश पर हावी है, इसलिए प्रभाव-[का]रिता में इनका वही दृष्टिकोण अधिक साथ देता है।

रा० वीलिनाथन की कहानियां, लघु कथाएं पत्र पत्रिकाओं में यदा-कदा प्रकाशित होती हैं। इनका साहित्यिक दृष्टिकोण अधिकतर सौन्दर्यवादी, वामेतर रवैया का और भावनात्मक होता है। इनकी कथा कहानियों में मध्यम वर्ग की उत्थानलोलुप प्रवृत्तियों, आशा-निराशाओं की व्यंजना का पाया जाना स्वाभाविक है।

डा० रा० शारंगपाणि जो हिन्दी के जाने माने सेवी हैं, लंबे अरसे तक 'दक्खिनी हिन्द' (मद्रास सरकार की पुरानी पत्रिका), 'दक्षिण भारत', 'हिन्दी प्रचार समाचार' (दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, की साहित्यिक एवं शैक्षणिक पत्रिकाएं) के

विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० उपाधि मिली है। इसी वर्ष में विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, से यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ। शोध सम्बन्धी विषयों को आठ प्रमुख अध्यायों में समाहित करने का अद्भुत प्रयास अध्ययनशील लेखक ने किया है। प्रत्येक अध्याय के अंतर्गत विषयानुकूल शीर्षकों के अंतर्गत अनेक विभागों में विषय-विवेचन किया गया है। अध्याय हैं—1 भक्ति का विकास और उसमें तमिल का योगदान, 2 कवि और काव्य, 3 मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करनेवाले 'प्रबंधम्' के तत्व, 4 भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन 5 दार्शनिक विचार और रहस्यात्मक दृष्टिकोण, 6 काव्यकला-1, 7 काव्यकला-2, [redacted] मूल्यांकन और उपसंहार, परिशिष्ट।

इस बहुचर्चित प्रबंध ग्रंथ पर उत्तर प्रदेश सरकार (1966 में) और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने (1968 में) विद्वान लेखक को पुरस्कृत किया। ऐसी भावात्मक एकता और सांस्कृतिक समन्वय को स्फूर्ति देनेवाली सारस्वत सेवा के लिए तमिल लेखक संघ ने भी आपको विशेष रूप से सम्मानित किया है। श्री मलिक मोहम्मद का दूसरा महत्त्वपूर्ण एवं पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ है 'वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन', जो पूर्वरचित ग्रन्थ की पूरक रचना है। यह आगरा विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए लिखा गया शोध प्रबन्ध है, जो अपने स्तर, विषय विवेचन एवं गहन-विपुल अध्ययन-आकलन का सुफल है। इस पर आपको डी० लिट्० की उपाधि 1970 में प्रदान की गयी। 1971 में राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित यह बृहद् ग्रंथ विद्वानों से प्रशंसित, अनुमोदित हुआ है। यह विद्वान लेखक की उत्तम मौलिक उपलब्धि है। इस ग्रंथ की सार्थक मौलिकता के बारे में स्वयं ग्रन्थकार ने निवेदन किया है—'प्रस्तुत ग्रंथ अनेक दृष्टियों से मौलिक है। वैष्णव भक्ति भावना के क्रमिक विकास की विविध अवस्थाओं का परिचय देकर तमिल-प्रदेश के योगदान पर लेखक ने जो मान्यताएं व्यक्त की हैं, वे मौलिक हैं। पूरे ग्रंथ में शोधपरक दृष्टिकोण को रखा गया है।' "

यह ग्रंथ दस अध्यायों में विभाजित है—1 विषय का सीमा निर्धारण, 2 वैष्णव भक्ति का उद्भव और विकास (भक्तिभावना से भक्ति आंदोलन तक), 3 तमिल-प्रदेश का वैष्णव भक्ति आंदोलन (छठी से नवीं शताब्दी तक), 4 मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति-आंदोलन का प्रमुख स्रोत, 5 आलवारोत्तर काल में तमिल प्रदेश का वैष्णव भक्ति आंदोलन, 6 मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति-आन्दोलन का दूसरा प्रमुख स्रोत श्रीमद्भागवत् और 'प्रबन्धम्' से उसकी तुलना, 7 हिन्दी साहित्य को वैष्णव भक्ति-आंदोलन की देन, [redacted] हिन्दी भक्ति-साहित्य पर श्री सम्प्रदाय का प्रभाव, 9 उपसंहार। इस उपादेय ग्रंथ पर भी विद्वान लेखक को कई पुरस्कार मिले हैं और पारखी पंडित जनों की प्रशंसा मिली है।

अमीर खुसरो सप्तम शताब्दी समारोह के सन्दर्भ में 'अमीर खुसरो भावात्मक एकता के अग्रदूत' नाम से एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का आपने संपादन किया जो राजपाल एण्ड सन्ज की ओर से 1975 में प्रकाशित हुआ। भावात्मक एकता के क्षेत्र में अमीर खुसरो के महान सन्देश को विशाल जन-समाज तक पहुंचाने में इस ग्रन्थ का बहुत बड़ा श्रेय है। 'भक्ति आंदोलन के प्रेरणास्रोत' शीर्षक एक किताब का प्रणयन भी आपने किया है जिसका प्रकाशन 1971 में रंजन प्रकाशन द्वारा हुआ। भक्ति आंदोलन

हि-

का बीजवपन और उसके विकास के विविध पडावो का सागोपाग और सविस्तृत चित्रण इसमें प्राप्त होते है।

हिन्दी भाषा और साहित्य से सम्बन्धित आपके कई आलोचनात्मक निबन्ध हिंदी की विविध पत्र-पत्रिकाओ मे समय समय पर निकलते रहते हैं। भारतीय सामासिक संस्कृति और राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दिशा मे आपका प्रयास अत्यत महत्वपूर्ण माना जाएगा।

डॉ० ना० सुन्दरम् को भावना-जगत् के विशिष्ट शोध-प्रबंध 'मीरा और आण्डाल का तुलनात्मक अध्ययन' के कारण अच्छी ख्याति मिली है। यह जबलपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए 1967 मे स्वीकृत शोध प्रबंध है और 1971 मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित है। विद्वान लेखक ने दोनो प्रेम बावरी कवयित्रियो का सागोपाग अध्ययन किया है और काव्यगत सरस तत्वो का उपयुक्त सयोजन इस ग्रंथ म किया है। इस ग्रंथ के इन अध्यायों से विषय विवेचन का पता चल सकता है—1 प्रस्तावना, 2 भक्ति सिद्धात और व्यवहार, 3 आलवार साहित्य एव आण्डाल और मीरा का जीवनवृत्त, 4 मीरा और आण्डाल की भक्ति भावना, एव भक्तिस्वरूप, 5 मीरा और आण्डाल की वियोगानुभूति, 6 मीरा और आण्डाल के पदो मे अप्रस्तुत योजना, 7 मीरा एव आण्डाल का भाषाप्रयोग एव काव्यत्व, 8 सामाजिक परिवेश मे आण्डाल तथा मीरा, 9 मीरा एव आण्डाल के काव्य म सगीत तथा छद विधान, 10 उपसहार।

डॉ० म० वी० राजगोपालन् का प्रौढतर शोध प्रबन्ध है 'तमिल और हिन्दी मे काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन'। इसपर विद्वद्वर लेखक को सन् 1966 मे आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० उपाधि मिली है। इस दुरुह विषय का यह प्रामाणिक एव प्रथम ग्रंथ है। यह 1969 म आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ के अध्याय है—1 विषय-प्रवेश, 2 अध्ययन की सीमाए, 3 तमिल और हिन्दी के काव्यशास्त्रो का तुलनात्मक अध्ययन, 4 पोरुल्, अहम्, पुरम् के विवेचन, 5 तमिल लक्षण शास्त्र मे अलकार, 6 हिन्दी और तमिल काव्यशास्त्रो की तुलना, 7 भारतीय काव्यशास्त्र मे तमिल, सस्कृत और हिन्दी काव्यशास्त्र की विशिष्टताए, 8 उपसहार, 9 परिशिष्ट1-(तमिल काव्यशास्त्र), 10 परिशिष्ट-2 (अहम् के उदाहरण, पुरम् के उदाहरण)।

हिन्दी, तमिल और सस्कृत मे पर्याप्त पाडित्य होने के कारण विद्वान लेखक का यह गहन विषय अच्छे प्रतिपादन के साथ प्रस्तुत किया गया है।

डॉ० के० सुदर वल्ली का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी और तमिल के आधुनिक गद्य का विकास' सन् 1967 मे सागर विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया है। चार खडो मे विभक्त एव उपयुक्त अध्यायो से प्रतिपादित यह ग्रंथ शोध प्रक्रिया का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

डॉ० पी० जयरामन ने 1965 मे सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि पाने के लिए अपना विद्वत्तापूर्ण शोध-प्रबन्ध 'महाकवि सुब्रह्मण्य भारती एव महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्यो का तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत किया है जो बाद मे ग्रन्थाकार प्रकाशित हुआ है।

यह ग्रंथ चार खडो और ग्यारह अध्यायो मे विभाजित है। प्रथम खड सास्कृतिक,

राजनैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिवेशों की विवेचना के साथ तुलनात्मक अध्ययन का प्रारूप प्रस्तुत करता है। इस खंड में दोनों महाकवियों के जीवनवृत्तों का वर्णन और उनमें पाई जानेवाली समानता पर रोचक प्रकाश डाला गया है। दूसरे और तीसरे खंड में दोनों महाकवियों का विचारगत, काव्यसम्बन्धी और शिल्प-विधान की बातें विवेचनात्मक शैली में बताई गई है। तीसरे खंड में दोनों कवियों के गीतों, काव्यों और राष्ट्रीय सामाजिक प्रतिबद्धताओं का तुलनात्मक अध्ययन है। चौथे खंड में उपसंहारस्वरूप पूर्वोक्त बातों का सामंजस्य और दोनों महाकवियों का युगप्रतिनिधित्व आवश्यक उद्धरणों एवं आधारों के साथ प्रतिपादित हुए हैं।

महाकवि भारती के प्रभावशाली, मधुर पद्यों का हिन्दी में पद्यानुवाद हुआ है, जो विद्वान लेखक का नया प्रयास है। डा० जयरामन का प्रौढतर शोध-प्रबन्ध जो सागर विश्वविद्यालय द्वारा 1973 में डी० लिट्० के लिए स्वीकृत हुआ है, 'हिन्दी एवं तमिल के वैष्णव भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' महत्त्वपूर्ण प्रदेय है। विद्वान लेखक ने पांडित्यपूर्ण विवेचन और प्रतिपादन के साथ इस शोध रचना को प्रस्तुत किया है।

डॉ० एस० लक्ष्मी के शोध-प्रबन्ध 'डॉ० नगेन्द्र की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा विश्लेषण और मूल्यांकन' पर 1965 में श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय ने इस विदुषी लेखिका को पी-एच० डी० की उपाधि दी है। यह प्रबन्ध रंजन प्रकाशन, आगरा से प्रकाशित हुआ है।

इस ग्रंथ में, नौ अध्यायों एवं पांच परिशिष्टों में विवेच्य विषय का विशद रूप से प्रतिपादन किया गया। अध्यायों के शीर्षक हैं—1 विषय प्रवेश, 2 जीवनी, व्यक्तित्व तथा जीवन-दर्शन, 3 डॉ० नगेन्द्र का कृतित्व, 4 डॉ० नगेन्द्र की सैद्धांतिक समीक्षा, 5 डॉ० नगेन्द्र की व्यावहारिक समीक्षा, 6 डॉ० नगेन्द्र की समीक्षा शैली, 7 डॉ० नगेन्द्र का आचार्यत्व, 8 डॉ० नगेन्द्र एवं हिन्दी के कुछ आलोचक, 9 उपसंहार—हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में डॉ० नगेन्द्र का योगदान।

डॉ० एस० वसन्ता के शोध-प्रबन्ध जो श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति द्वारा पी एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत है, और 1975 में वाणी प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है, का नाम है, 'आधुनिक हिन्दी कविता में दुरूहता'। प्रतिपाद्य विषय का विशदीकरण इन अध्यायों में हुआ है—1 प्राक्कथन, 2 सिद्धांत, स्थापना (दो खंड), 3 प्राचीन काव्यों में दुरूहता, 4 आधुनिक कविता की प्रवृत्तियां, 5 छायावाद में दुरूहता, 6 आधुनिक हिन्दी कविता पंचम चरण, 7 उपसंहार। लगभग 130 शीर्षकों में आधुनिक कविता के समस्त आयामों और अंगों पर अध्यवसायपूर्ण विवेचन किया गया है।

डॉ० वी० के० प्रेमा के द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए लिखा गया स्तरीय शोध प्रबन्ध है 'हिन्दी काव्य में स्वप्न'। इसपर लेखिका को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के विश्वविद्यालय विभाग द्वारा डाक्टर की उपाधि प्रदान की गई है।

विषय-प्रतिपादन, गहन अध्ययन का परिचय, विपुल सामग्री संकलन, सुंदर प्रस्तुतीकरण आदि के कारण यह उच्चकोटि का शोध प्रबन्ध माना जा सकता है। सम्पूर्ण प्रबन्ध दो भागों एवं सात अध्यायों में विभाजित है। लेखिका ने पाश्चात्य काव्यों एवं वैज्ञानिक निष्कर्षों से पर्याप्त सहयोग लिया है। यह शोध प्रबन्ध अपने

विषय का एकमात्र विश्वकोशात्मक ग्रन्थ माना जा सकता है।

डॉ० के० उमारानी द्वारा द० भा० हिन्दी प्रचार सभा के विश्वविद्यालय विभाग से पी०एच०डी० की उपाधि पाने के लिए तैयार किया गया शोध-प्रबन्ध है 'दक्षिण में हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'। यह 1972 में स्वीकृत हुआ है। प्रायः समग्र दक्षिण भारत में दाक्षिणात्यों द्वारा विरचित हिन्दी साहित्य पर समीक्षात्मक दृष्टि से लिखा गया यह प्रथम प्रबन्ध है। यह कुल आठ अध्यायों में विभक्त है। उपलब्ध अपर्याप्त सामग्रियों से तैयार किया गया यह ग्रन्थ संपूर्णता एवं विवेचनात्मकता की दृष्टि से अधूरा ही माना जाएगा।

डॉ० के० आर० नजुंडन के शोध-प्रबन्ध 'तिरुमूलर और गोरखनाथ' पर मेरठ विश्वविद्यालय ने 1973 में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की है। विद्वान लेखक ने परिश्रमसाध्य एवं गहन अध्ययन-साधित इस प्रबन्ध के द्वारा एक अछूते और महत्त्वपूर्ण विषय का प्रतिपादन किया है। तमिल सिद्ध साहित्य उत्तर भारत की सिद्ध परंपरा से अनुप्राणित है। संपूर्ण सिद्ध साहित्य का गहरा अध्ययन कर विद्वान लेखक ने इस श्रेष्ठ ग्रंथ की रचना की है। हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित करने वाले इस प्रबंध का विद्वन्मंडल द्वारा समादृत होना स्वाभाविक है। भारतीय सांस्कृतिक कड़ी को मजबूत करने में इस प्रबंधकार का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाएगा।

डॉ० सुब्बुलक्ष्मी का राष्ट्रीय चेतना प्रेरित शोध प्रबन्ध है 'तमिल और हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना।' इसपर सागर विश्वविद्यालय से 1963 में डॉक्टर की उपाधि लेखिका को प्राप्त हुई है। यह भी राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में उल्लेखनीय शोध-प्रबंध है। अन्य शोध प्रबंधों में जो अब तक पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुए हैं, या प्रकाशनाधीन हैं, डॉ० बी० आर० जगन्नाथन का 1968 में प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध-प्रबंध 'सूर और पेरियालवार की कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन', 1966 में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबंध 'हिन्दी एवं तमिल के वाक्य-विन्यास का तुलनात्मक अध्ययन' जो डॉ० जे० पार्थसारथी का है, डॉ० नागलक्ष्मी द्वारा उस्मानिया विश्वविद्यालय से उपाधि पाने के लिए प्रस्तुत 'मैथिलीशरण गुप्त और भारती का तुलनात्मक अध्ययन' आदि शोध-प्रबंध भी अच्छे विषय प्रतिपादन और विवेचन की दृष्टि से उत्तम उपलब्धि माने जा सकते हैं।

शोध-प्रबंध शैली में लिखे गए लघु निबन्धों की रचना में अनेक तमिल भाषी लेखकों ने श्लाघ्य सेवा की है। श्री वा० श्री० श्रीनिवासाचार्य के 'तमिल के प्राचीन महाकाव्य', 'शैवसिद्धांत की परंपरा' आदि निबन्ध, श्री पूर्णम् रामचन्द्रन (उमाचन्द्रन) का निबन्ध 'तमिल का आधुनिक काव्य-साहित्य', श्री रा० वीलिनाथन के 'तमिल साहित्य में हिन्दी का प्रभाव', 'तमिल साहित्य में गांधी जी का प्रभाव', 'तमिल का नाटक साहित्य', श्री० र० शौरिराजन के 'द्रविड़ जाति और द्रविड़ भाषाएं', 'दक्षिण भारत में भक्ति-मार्ग', 'द्रविड़ संस्कृति का समन्वयात्मक इतिहास', 'तमिल महाकाव्य शिलप्पधिकारम् और जीवक चिन्तामणि', श्री रामानुजाचार्य का 'श्री वैष्णव संप्रदाय', 'तमिल साहित्य की अद्यतन प्रवृत्तियां', डॉ० बी० रा० जगन्नाथन का 'हिन्दी और तमिल की समान ध्वन्यात्मक शब्दावली', श्री धर्मराजन का 'तमिल और हिन्दी का तुलनात्मक व्याकरण', डॉ० नजुंडन का 'तमिल में सिद्ध साहित्य', रा० वेंकटकृष्ण ऐय्यंगार का 'वैष्णव संत कवि आलवारों का जीवन और साहित्य', श्री राजुशर्मा का

'शैव सत कवि नायनमारो का साहित्य' आदि शोधपरक निबंध सचमुच हिन्दी को सपन्न करनेवाले है। प्राय पूर्वोक्त लेखको की छोटी-बडी रचनाए जो तमिल साहित्य और जन-जीवन मे सम्बन्धित है, हिन्दी की सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओ मे और विशिष्ट अभिनन्दन ग्रथो या स्मारिकाओ मे प्रकाशित होती है।

यद्यपि इनमे ठोस और प्रौढतर ग्रथो की रचना नही हो पा रही है (प्रोत्साहन और साधन के अभाव से), फिर भी इनके साहित्यिक प्रदेय हिन्दी के राष्ट्रीय महत्त्व एव *व्यक्तित्व के सदर्भ मे विशेष मूल्यवान हैं।*

अनुवाद और अन्य ग्रथ :

किसी भी भाषा साहित्य के लिए यह अनिवार्य विकास-तत्त्व है कि इतर भाषाओ की उत्तम, प्रतिनिधि साहित्य-कृतियो को अनुवाद के माध्यम से प्राप्त करे। इस दिशा मे हिन्दी शायद राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने के कारण, अत्यत सुसम्पन्न हुई है। भारतीय भाषाओ मे से जितने उपादेय रचनाओ के अनुवाद हिन्दी मे हुए, उतने अन्य किसी भाषा मे नही पाए जा सकते।

लगभग चालीस वर्ष पूर्व तमिल से हिन्दी मे प्रतिनिधि रचनाओ का अनुवाद कार्य शुरू हुआ। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के कार्यकर्ता इस दिशा मे सोत्साह प्रवृत्त हुए। सर्वश्री क० मा० शिवराम शर्मा, का० श्री० श्रीनिवासाचार्य, बी० एम० कृष्ण स्वामी और एस० महालिंगम् ने उस ज़माने मे तमिल से कथा-कहानी, लेख आदि का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किए। महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की भावना-प्रधान रचना तराजू, ज्ञानरथम् आदि को हिन्दी मे देने का श्रेय श्री क० मा० शिवराम शर्मा को है। 'हस', 'भारती', 'गल्पससारमाला', 'आजकल', आदि के माध्यम से तमिल साहित्य की नवीन उपलब्धियो को हिन्दी मे देने का प्रशसनीय प्रयास का० श्री० निवासाचार्य ने किया। इसी प्रकार बी० एम० कृष्ण स्वामी ने भी पत्र-पत्रिकाओ के द्वारा तमिल की कहानियो, नाटको व लेखो को हिन्दी जगत् से परिचित कराया। इस पुरानी पीढ़ी से प्रेरणा पाकर अनुवाद-क्षेत्र मे आगे आए शा० रा० शारगपाणि, रा० वीलिनाथन, सरस्वती रामनाथ, र० शौरिराजन, तुलसी जयरामन आदि।

शारगपाणि ने अपना दीर्घ सेवाकाल हिन्दी पत्रकारिता मे व्यतीत किया। उनके द्वारा सपादित 'दक्खिनी हिन्द', 'दक्षिण भारत', 'हिन्दी प्रचार समाचार', और 'विश्वात्मा' हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास मे उल्लेखनीय स्थान पा गए हैं। इन्होने स्तरीय तमिल कविता और लेख हिन्दी मे दिए।

रा० वीलिनाथन तमिल भाषी हिन्दी लेखक के रूप मे आज भी सुख्यात हैं। इन्होंने मौलिक एव अनूदित रचनाए सर्वाधिक की हैं। और अब भी क्रियाशील रचयिता हैं। तमिल मे भी आपकी दर्जनो साहित्यिक रचनाए पुस्तकाकार छपी हैं। तमिल की तरह हिन्दी के भी आप मजे हुए लेखक हैं। इनके हिन्दी अनुवाद पर केन्द्र सरकार का पुरस्कार मिला है। वीलिनाथन की प्रकाशित प्रमुख अनूदित रचनाए—

1. सुप्रसिद्ध लोकप्रिय तमिल साहित्यकार 'कल्कि' के सामाजिक उपन्यास 'शोलैमलै इलवरसि' का हिन्दी रूपान्तर 'शोलैमलै की राजकुमारी' जो साप्ताहिक हिन्दुस्तान मे धारावाहिक छपा था।

2. प्रसिद्ध तमिल लेखक रा० गणपति के 'जय जय शकर' (आद्य शकराचा

की जीवनी' का हिन्दी अनुवाद जो साप्ताहिक हिन्दुस्तान में धारावाहिक छपा था।

3 तमिल महाकाव्य शिलप्पधिकारम् के आधार पर औपन्यासिक ढंग से लिखी गई 'नूपुरगाथा' जो पाडुलिपि के रूप में है।

4 सुख्यात तमिल साहित्यकार बी० एस० रामैया के नाटक 'पदच्चोर' का अनुवाद 'कमेटी' और ति० जानकी रामन के नाटक वडिवेलु वातियार का रूपान्तर 'मास्टर जी'। ये दोनों पाडुलिपि के रूप में हैं।

5 'कल्कि' के ऐतिहासिक उपन्यास 'पार्थिवन् कनवु' का हिन्दी अनुवाद 'पार्थिव का सपना' जो साहित्य अकादमी का प्रकाशन है।

6 तमिल के प्रसिद्ध कथाकार ना० चिदंबर सुब्रह्मण्यम् के पुरस्कृत सामाजिक उपन्यास 'हृदयनादम्' का अनुवाद 'हृदयनाद'—सस्ता साहित्य मंडल का प्रकाशन।

7 'कल्कि' के स्वतन्त्रता-आन्दोलन पर आधारित प्रभावशाली उपन्यास 'अलै ओसै' का अनुवाद 'लहरों की आवाज' जो नेशनल बुक ट्रस्ट का प्रकाशन है और जिस पर अनुवादक को केन्द्र सरकार के शिक्षा मन्त्रालय की ओर से पुरस्कार मिला है।

8 युवा पीढ़ी का प्रतिभाशाली, नामी लेखक जयकान्तन् के राष्ट्रीय चेतना का बढ़ावा देनेवाले उत्तम उपन्यास 'जीवगीतम्' का अनुवाद 'बाहर का आदमी', जो नेशनल बुक ट्रस्ट का प्रकाशन है।

राजाजी की बोधप्रद पुस्तक 'भजगोविन्दम्' का जो आद्य शंकराचार्य की तत्त्वपरक, उद्बोधक रचना की तमिल व्याख्या है, हिन्दी अनुवाद 'भज गोविन्दम्', सस्ता साहित्य मंडल की ओर से प्रकाशित है।

अलावा इनके बीलिनाथन की दर्जनों मौलिक एवं अनूदित रचनाएं हिन्दी की शीर्षस्थ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं और आकाशवाणी में प्रसारित हुई है।

श्रीमती सरस्वती रामनाथन ने भी अनुवाद-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सेवा की है। लगभग पच्चीस वर्षों से इनकी यह सेवा चलती आ रही है। इनकी उल्लेखनीय रचनाएं हैं

1 सुप्रसिद्ध तमिल साहित्यकार अखिलन की प्रतिनिधि कहानियों का अनुवाद 'गोपुर का दीप', कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर के द्वारा प्रकाशित है। यह भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत है।

2 तमिल के प्रतिनिधि कहानीकारों की चुनी हुई कहानियों का हिन्दी रूपान्तरित संग्रह 'फौ फटेगी ?' शीर्षक से भारतीय साहित्य सदन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ है।

3 अखिलन का लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास 'पण्' का अनुवाद 'नारी' राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली का प्रकाशन है।

4 तमिल की शीर्षस्थ लेखिका श्रीमती राजमकृष्णन का आंचलिक उपन्यास 'कुरिंचि तेन्' का हिन्दी रूपान्तर पाडुलिपि के रूप में तैयार है।

5 तमिल महाकाव्य कम्ब रामायण का कथासार प्रकाशनाधीन है।

6 तमिल के युग-प्रवर्तक प्रगतिशील साहित्यकार जयकान्तन की चुनी हुई रचनाओं का अनुवाद-संकलन पाडुलिपि के रूप में है।

7 सुब्रह्मण्य भारती की प्रतीक-कथाओं का अनुवाद जो नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशनाधीन है।

4

हिन्दी साहित्य को कर्णाटक की देन

डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति

कर्णाटक और हिन्दी-प्रदेशो के बीच हजारो वर्षो का सम्बन्ध रहा है। इस सम्बन्ध को हम राजनैतिक तथा सास्कृतिक इस प्रकार दो वर्गों मे बाट सकते है।

राजनैतिक सम्बन्ध कर्णाटक के मोलकालमूर, जटिंग रामेश्वर आदि स्थानो में प्राप्त अशोक के अभिलेखो से पता चलता है कि कर्णाटक के कुछ भाग मौर्य साम्राज्य मे सम्मिलित थे। कहा जाता है कि जब उत्तर भारत मे घोर अकाल पडा तब चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और कर्णाटक के कटवप्र अथवा वर्तमान श्रवण बेळगोळ मे अपने अन्तिम दिन काटे। आज भी श्रवण बेळगोळ मे 'चन्द्रगुप्त बसदि' नामक एक जैन मदिर है।

चौथी शती ईसवी मे कदबवश के सस्थापक मयूर शर्मा ने अपने अभिलेखो मे कहा है कि उसने त्रिकूट, आभीर, मैद्रक आदि राज्यो को जीता और गगा तीर से वैदिक ब्राह्मणो को बुलाकर कर्णाटक म बसाया। इसी वश के राजा काकुरस्थ वर्मा अपनी वीरता के लिए भारत-भर मे विख्यात था। उसने गुप्तवशी नरेशो से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था। इसी काकुरस्थ वर्मा के प्रपौत्र मृगेश वर्मा ने केकम राज-कुमारी प्रभावती से विवाह किया था।

गगो के समय तो कर्णाटक की कीर्ति दिगत विख्यात हुई। गगवश की एक शाखा छठी शती ईसवी मे कलिंग मे स्थापित हुई तथा और एक शाखा 889 ई० में नेपाल मे। गगो के पश्चात् आने वाले चालुक्यो ने भी कर्णाटक की कीर्ति को उत्तर तक ले जाने का प्रयत्न किया। उत्तरापथेश्वर श्रीहर्ष को विगलित हर्ष करने का श्रेय चालुक्य चक्रेश्वर परमेश्वर पुलिकेशि को मिलना चाहिए। इसी चालुक्यवश के एक और राजा विनयादित्य ने उत्तरापथ के आदित्य सेन को परास्त कर गगा-यमुना प्रात को वश मे किया।

राष्ट्रकूटो के समय तो समग्र भारतवर्ष कर्णाटक साम्राज्य की छत्रछाया मे आ गया था। इस वश के दतिवर्मा द्वितीय ने उत्तर मे माही तथा नर्मदा तक अपने राज्य का विस्तार किया। गोविंद तृतीय ने गुर्जरो को पराजित करने के उपरात विंध्य प्रात के अनेक राजाओ को परास्त किया। मालव, कान्यकुब्ज आदि देशो का इसने जीता। इसके समय मे हिमाचल से कन्याकुमारी तक भूभाग राष्ट्रकूटो की क्रीडाभूमि बना।

कलचुर्य वश के राजाओ के साथ डाहल (बुदेलखण्ड) मडल तथा कालिजर का सपर्क था। होयसळ नरेशो ने भी उत्तर की विजय-यात्रा की थी। रायग

(1137 ई०) ने मालव पर चढाई कर धारा नगरी को जलाया था। यही नही, कर्णाटक के विख्यात राजवशो ने उत्तर में अपनी शाखाए स्थापित की थी। कर्णाटक के राष्ट्रकूट ही राजस्थान के राठौर हुए। चालुक्य ही सोलकी हुए। प्रतीहार भी कर्णाटवशी थे। कर्णाटक के सिंध वशी राजा ही ग्वालियर के सिंधिया कहलाए।

राजनैतिक ही नही, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भी कर्णाटक और उत्तर-भारत के बीच निकट का सम्बन्ध था। हमने ऊपर देखा कि कर्णाटक के राजघरानो का सम्बन्ध उत्तर के राजघरानो से हुआ था। ब्राह्मण आदि वर्गों का यहा से उत्तर जाना और उत्तर से यहा आना, और बसना उन दिनो साधारण था। कदब साम्राज्य सस्थापक मयूर शर्मा ने रोहिलखण्ड के अहिच्छत्र से श्रोत्रिय ब्राह्मण कुटुम्बो को बुलाकर अपने राज्य मे बसाया था। कर्णाटक मे आज भी रहनेवाले सहवासी, सारस्वत, वीर बणजु आदि कुल अपने औत्तरेय मूल की साक्षी देते है। काश्मीर के कालामुख शैव कर्णाटक मे आकर बसे थे।

अलाउद्दीन के दरबार के गायक सुप्रसिद्ध सगीतकार गोपाल नायक कर्णाटक के थे। जब अलाउद्दीन दक्षिण की विजय-यात्रा पर आया था तब उसको हस्तगत होने वाले अमूल्य रत्नो में गोपाल नायक भी एक थे। आगे चलकर उन्होने ब्रजभाषा में पदरचना भी की। उनके पदो का एक नमूना

काधे कामरी गो अलाप के नाचे जुमुना तीर।
पौछे रे पाव रे लेति नाचि लोई मागवा।
मुखप्राली मृदग बासुरी बजावै गोपाल बैन।

बतरस ले आनद।—'रागकल्पद्रुम' से

कर्णाटक के सगीतज्ञ कलाकारो का सपर्क उत्तर के साथ बराबर रहा करता था। अल्लाउद्दीन के दिल का कला से जीतकर अपनी अपहृता पत्नी को वापस लाने वाले कर्णाटक के एक महान् कलाकार सौरसी का बहुत सुदर चित्रण 'छिताईवार्ता' नामक हिन्दी के एक प्रेमाख्यान मे मिलता है। यह द्वारसमुद्र के होयसलवश का राजकुमार था। गोपाल नायक, समरसिंह आदि के बारे मे 'छिताईचरित' के सपादक श्री हरिहर निवास द्विवेदी जी का वक्तव्य द्रष्टव्य है—'छिताई चरित' सगीत के माहात्म्य निरूपण का आख्यान काव्य है। प्रारम्भ से अत तक गान, नृत्य और वाद्य की महिमा और उनके उपकरणो का वर्णन इसम मिलता है। अलाउद्दीन सगीत का मर्मज्ञ है। रामदेव भी गुणग्राही है। छिताई और समरसिंह दोनो ही सगीत मे प्रवीण है, उनका वीणावादन अद्वितीय है और चराचर को सम्मोहित करनेवाला है। ऐसे काव्य म अलाउद्दीन के समकालीन महान् सगीतज्ञ नायक गोपाल का उल्लेख न होना ही आश्चर्यजनक होता। छिपाईचरित के अनुसार वह दक्षिण का निवासी था। वहा से अलाउद्दीन के आश्रय मे आया और फिर समरसिंह के साथ दक्षिण लौट गया। गोपाल नायक के विषय म विवरण पूर्णत इतिहाससम्मत है।[1]

'छिताईचरित' से यह भी स्पष्ट होता है कि उन दिनो 'जगम' सगीत के विशेषज्ञ थे। उनका क्या हिन्दू क्या मुसलमान सबके दरबार मे आदर था। स्व० वृन्दावनलाल वर्मा जी ने अपने 'मृगनयनी' उपन्यास मे विजयजगम नामक एक कलावत

1 छिताईचरित—स० हरिहरनिवास द्विवेदी, वक्तव्य, पृ० 60 एव अगरचद नाहटा

का परिचय दिया है जो वीणा-वादन-पटु था और वीरशैव था। यहा ध्यान देने की बात यह है कि ये जगम वीरशैवमतावलबी कर्णाटक के थे। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने *'चारु चद्रलेख'* नामक उपन्यास मे *'गुण्डकेश्वर'* नामक एक वीरशैव महत का चित्रण किया है। तात्पर्य यह है कि तेरहवी चौदहवी सदी मे उत्तर भारत मे वीरशैव जगम लोग काफी सख्या मे पाए जाते थे, धार्मिक क्षेत्र ही नही कला के क्षेत्र मे भी उनका स्थान महत्त्वपूर्ण था।

धार्मिक क्षेत्र मे कर्णाटक और हिन्दी-प्रदेश का सम्बन्ध काफी गहरा रहा है। मध्ययुग के महान् धार्मिक ग्रथ भागवत का प्रभाव हिन्दी पर अद्भुत रूप से पडा है। विद्वानो का कहना है कि भागवत का प्रणयन कर्णाटक मे हुआ। इस सम्बन्ध मे डा० नगेन्द्र जी का वक्तव्य द्रष्टव्य है—"स्वय भागवत को भी कन्नड प्रदेश मे रचित कहा गया है।"

कर्णाटक जैन धर्म का प्रसिद्ध केंद्र था। राष्ट्रकूट नरेश अपभ्रश के पृष्ठपोषक थे। अपभ्रश के आदिकवि स्वयभू कर्णाटक के थे। डॉ० ह० चु० भयाणी जी को भ्रम हो गया था कि स्वयभू बरार प्रात के रहे होगे। किन्तु स्वयभू के परिवार के सदस्यो के नामो का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे कर्णाटक के थे। स्वयभू की पत्निया थी—सामियब्व अथवा आभियव्वा, अइच्चम्मा तथा सुअव्वा। ये अव्वा, अम्मा शुद्ध द्रविड शब्द हैं। इन सबके आधार पर डा० देवेन्द्र कुमार जैन ने ठीक ही अनुमान लगाया है कि स्वयभू कर्णाटक के थे। स्वयभू राष्ट्रकूट सम्राट ध्रुव के आश्रित थे। स्वयभू के महत्त्व के बारे मे राहुलजी का वक्तव्य द्रष्टव्य है—"हमारे इसी युग मे नही हिन्दी कविता के पाचो युगो (1 सिद्ध सामत युग, 2 सूफी युग, 3 भक्त युग, 4 दरबारी युग, 5 नवजागरण युग) के जितने कवियो को हमने यहा सगृहीत किया है, उनमे यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि स्वयभू सबसे बडा कवि था। वस्तुत वह भारत के एक दर्जन अमर कवियो मे एक था।"[1]

स्वयभू के काव्यो मे सैकडो कन्नड के शब्द प्राप्त होते है। इससे भी इस तथ्य का समर्थन होता है कि स्वयभू कन्नड-भाषी थे।

अपभ्रश के दूसरे महान् कवि पुष्पदत यद्यपि कन्नड-भाषी नही थे फिर भी वे कर्णाटक के आश्रित थे। वे राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण तृतीय के समकालीन थे तथा उनके मत्री भरत के आश्रित थे। इनके काव्य मे बहुत से कन्नड शब्द मिलते हैं।

चौरासी सिद्धो मे प्रसिद्ध कण्हपा या कृष्णपाद का जन्म राहुलजी के अनुसार कर्णाटक मे हुआ था। वे पीछे पूर्वी भारत मे चले गए।

गोरखनाथ के जन्मस्थान के बारे मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। किन्तु कर्णाटक की परपरा उन्हे कर्णाटक के मानती है। *'योगिसप्रदयाविष्कृति'* नामक ग्रथ मे गोरखनाथ के जन्मस्थान के बारे मे यो उल्लेख है—

"अस्ति याम्या दिशि कश्चिद्देशो वडवनामक ।
तत्राजनि   मावुद्धिर्महामत्रप्रसादत ॥

अर्थात् दक्षिण दिशा मे बडवनामक एक देश है। वहा महामत्र प्रसाद से महाबुद्धि गोरखनाथ ने जन्म लिया।

---

1 हिन्दी काव्य धारा, पृ० 50।

इसीके आधार पर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदीजी का कहना है कि यह वडव देश गोदावरी तीर पर था। वास्तव मे यह 'वडव' द्राविड शब्द 'वडग' का अपभ्रश है जिसका अर्थ है 'उत्तर दिशा'। आज भी उत्तर कर्णाटक 'वडगनाडु' कहलाता है।

कहा जाता है कि पीछे गोरखनाथ दक्षिण कर्णाटक के मगलूर आए थे तथा वहा के 'कदारिका' नामक बौद्ध विहार का नाथ सप्रदाय के मठ के रूप मे परिवर्तित किया था। आज भी वहा नायपथी मठ विद्यमान है।

वीरशैव सत रेवणसिद्ध तथा अल्लमप्रभु देव के नाम नाथ सूची मे मिलते हैं, यथा

श्री आदिनाथ मत्स्येंद्रशावरानद भैरवा।
चौरगी मीन गोरक्ष विरूपाक्ष बिलेशया॥
मथानी भैरवो योगी सिद्धिर्बुद्धश्चकथडि।
कोरटक सुरानद सिद्ध पादश्च चर्पटि॥
कानेरी पूज्यपादश्च नित्यनाथो निरजन।
कपाली बिंदुनाथश्चकाकचडीश्वराह्वय॥
अल्लाम प्रभुदेवश्च घोडाचोली च टिटिणि।
भानुकी नरदेवश्च खड कापालिकस्तथा॥[1]

वीरशैव साहित्य म अल्लम प्रभु तथा गोरखनाथ की मुठभेड की कहानी भी मिलती है। जो भी हो, इससे एक बात स्पष्ट है कि नाथ योगी कर्णाटक मे भी थे। उनके और वीर शैवसतो के बीच यदाकदा मुठभेड भी होती थी।

यही नही, उत्तर म भी अल्लाउद्दीन के समय वीरशैव जगम काफी सख्या मे पाए जाते थे। कबीर, जायसी आदि हिन्दी सतो ने जगम का उल्लेख किया है। यथा कबीर

इक जगम इक जटाधर, इक अगविभूति करै अपार।
इक मुनियर हम मनहूलीन, जैसें होत होत जग जात खीन।
इक अराधै सक्तीसीव, इक पडदा देदे वधै जीव।
इक कुल देव्या कौ जपहि जाय, त्रिभुवनपति भूले त्रिविध ताप।
इक पढहि पाठ इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरतर रहे निवास।
इक जोग जुगति तन हहि खीन, ऐसो रामनाम सग रहैं न लीन।
इक हूकि दीन इक देहिदान, इक करैं कपाली सुरापान।
इक तत्रमत्र ओषधवान, इक सकल सिध राखै अधान।[2]
....

× × ×

मैंला ब्रह्मा मैंला इदु
मैंले जोगी जगम जटा सहति।
मैंली काइआ हस समेति।[3]

---

1 हठयोग प्रदीपिका, वेंकटेशमुद्रणालय, बम्बई, पृ० 89।
2 कबीर (सं० डा० रामकुमार वर्मा), पृ० 208।
3 कबीर ग्रथावली (सं० श्यामसुदर दास), परिशिष्ट, पृ० 317।

जायसी .

.. .. ।

कोई रिखेस्वर कोइ सन्यासी । कोई रामजन कोई मसवासी ॥
कोई ब्रह्मचर्ज पथ लागे । कोइ दिगम्बर आछहि नागे ।
कोई सरसुती सिद्ध कोइ जोगी । कोइ निरास पथ बैठ वियोगी ।
कोइ महेसुर जगमजती । कोइ एक परखै देवी सती ॥
सवरा सेतरा बानपरस्ती सिध साधक अवधूत ।
आसन मारि बैठ सब जाति आतमा भूत ॥[1]

ऊपर हमने देखा कि कबीर ने 'जगम' शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि कबीर को वीरशैव सन्यासी जगमो का परिचय था। किन्तु इन उद्धरणो में यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कबीर ने उपर्युक्त जगम आदि विभिन्न पथी सतो की ओर श्रद्धा नही तिरस्कार प्रकट किया है। किन्तु तिरस्कार प्रकट करने से यह नही कहा जा सकता कि वे उनके प्रभाव म नही पडे।

बगाल के चैतन्य सप्रदाय का प्रभाव हिन्दी भक्तो पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। इस चैतन्य सप्रदाय पर माध्व सप्रदाय का प्रभूत प्रभाव है। इस सप्रदाय के प्रवर्तक मध्वाचार्य कर्णाटक के ही थे।

वल्लभाचार्य तो कर्णाटक के बेल्लारी के थे। कहा जाता है कि वे पुष्टिमार्ग का प्रवतन करने के पश्चात् दक्षिण आए थे। विजयनगर सम्राट् कृष्णदेवराय ने उनका कनकाभिषेक कराया था। उस समय विजयनगर के राजगुरु थे व्यासतीर्थ। वल्लभाचार्य इस वैष्णवयति से अवश्य प्रभावित हुए होगे। कर्णाटक के सुप्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र उडुपि मे माध्वो के अष्टमठ हैं। हमारा यहा तक अनुमान है कि इन्ही अष्टमठो से 'अष्टछाप' की प्रेरणा मिली होगी।

हिन्दी मे मौलिक साहित्य की रचना

मुहम्मद बिन तुगलक ने जब देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया तब उनके साथ दिल्ली से काफी सख्या मे लोग आए। उनके कारण दक्खिनी नामक एक अलग भाषा का ही निर्माण हुआ। दक्खिनी को रूप देने वालो मे गुलबर्गा, बीदर और बीजापुर के बादशाह अग्रगण्य हैं। बीजापुर के अली आदिलशाह द्वितीय ने (1763 ई०) स्वय हिन्दी काव्य रचे और अनेको दक्खिनी कवियो को आश्रय दिया।

उर्दू के प्रथम कवि कुली कुतुब शाह अली कर्णाटक के बीजापुर के थे। किन्तु इनसे भी पहले यहा के कई हिन्दुओ ने दक्खिनी हिन्दी म स्वप्रेरणा से काव्य-सर्जना की है। इनमे सर्वप्रथम हैं श्री सिद्धलिंगेश। सिद्धलिंग (1378-1428 ई०) वीरशैव सत थे। ये शोलापुर के समीप 'वडवाळ' नामक ग्राम मे रहते थे। वहा के तत्कालीन सत सिद्ध नागेश आपके गुरु थे। ये सूफी सतो से विशेष प्रभावित थे। दिल्ली के नसीरुद्दीन चिराग को भी ये अपने गुरु मानते थे। निराकार ईश्वर की भक्ति, गुरु पर अनन्य श्रद्धा, योग को महत्ता, वेद कुरान आदि मे अभेद आदि बातें आपकी वाणी मे पाई जाती हैं। आपकी वाणी के एक-दो उदाहरण

---

1 पदमावत (स० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल), पृ० 34।

(1)

फिक्रि छोड फकीर हो जकीर कर खुदा की ।
मठ मा दुनिया फजाह तिल्ल घडी की ।।
शक्कर सू मीठ पीर का नाम लेणा ।
कहे सिद्ध लिंग कमाई कमाना ।।
दरदूरकर दिल दरवेश होणा ।
हर कदम पीयूष जिवलाणा ।।
आरिफल अवजूर परत क्या तु बनो ।
कहे सिद्ध लिंग गुरु कु मनावा ।।

(2)

मुझे लाल ने लाल लाली लगाया ।
हुवा लाल मैं लाल मैदान पाया ।।
दिया लाल लत्ता सोही मर्द सारा ।
बड्या लाल वो सिद्ध साहेब मेरा ।।
लगाया बडा लाल निशान ऊचा ।
खडा हुए आय सिद्धय नागेश नीचा निशानि आलैखा ।।

सिद्धलिंग ने कई ऐसे पद भी रचे हैं जिनमे एक पक्ति हिन्दी की है तो दूसरी पक्ति कन्नड की । दोनो मे तुक मिलाई गई है ।

अली आदिलशाह द्वितीय (1763 ई०) आपने 'कुल्लि याते शाही' नामक एक काव्य-सग्रह रचा है । यह आगरा विश्वविद्यालय से 'अली आदिलशाह का काव्य सग्रह' नाम से प्रकाशित हुआ है । आपकी भाषा मे सस्कृत शब्द भी पाए जाते हैं । एक उदाहरण—

कोई जाओ मुझ साजन साथ ।
मैं नेह बाधी तुमको था घाट ।
दिल मेरे अपने साथ किया ।।
मुझ विरह मे दिन-रात किया ।
दिल दरी भी न बात किया ।
कि मुझ सुन ऐसी घाव किया ।

दक्खिनी के विकास मे मुसलमानो का ही विशेष हाथ रहा है । और इनमे भी बहुत-से लोग कर्णाटक के थे । इनमे प्रमुख हैं गुलबर्गा के बदेनवाज, बीजापुर के नुसरती, मीर हाशिमी बीजापुरी, कादिर बीजापुरी आदि ।

महीपति (1611-1681) महीपति कर्णाटक के महान् सतो मे एक हैं जिनमे भक्ति, ज्ञान एव योग का त्रिवेणी सगम हुआ है । आप बीजापुर के मुहमद आदिलशाह के दीवाने थे । सूफी सत शाह वली नम के सपर्क से आपके जीवन की गति ही बदल गई और आप सर्वसगपरित्यागी विरागी बने गुरु की खोज मे चल पडे । तत्कालीन महायोगी भास्कर स्वामी की कृपा से आप योग मार्ग मे दीक्षित हुए । द्वैत मतावलबी होते हुए भी आप उसकी सीमाओ से ऊपर उठकर ज्ञान की चोटी पर पहुच गए । आपने कन्नड मे हजारो पदो की रचना की है । आप कन्नड, सस्कृत, मराठी,

तेलुगु, हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। आपने
कुछ उदाहरण—

(1)

अलख निरंजन परज्योति बावा
व्यापक जी त्रिभुवन जी ॥ टेक ॥
जाके चरनन के ब्रह्म सेवक
शंकर करे जिन ध्यान रे ॥ 1 ॥
सो दत्त दिगम्बर साईं हमारा
स्मरन करूँ दीनानाथ जी ॥ 2 ॥
ब्रह्म-भुवन के हम परदेशी।
गोरखपंथ का जोगी जी ॥ 3 ॥
माता-पिता बंधु-गुरु हमारा।
बाबा रे 'महीपति' प्रभुजी ॥ 4 ॥

(2)

आया रे मेरा साहेब घर कु। दीनदयाल कृपाल रे।
नग्न दिगम्बर नरसुरपालक। नजर करने मुझे आया रे ॥ 1 ॥
त्रिंदावन के नजदीक पूरन। चरन दरशन मैं पाया रे।
धन धन हुआ मेरा तनु मन धन प्राण। अनुभवामृत मैं पीयारे ॥ 2 ॥
को बुलाकर मुझे। पुरस्या आया साईं रे॥
बडा साहेब भगत कृपा निधि। त्रिभुवन को दाता रे ॥ 3 ॥
क्या करूं साहेब का खिदमत। मैं जन को करूं बलिहार रे॥
दीनदयाल कृपानिधि सागर। पतित पावन गुरु मेरा रे ॥ 4 ॥
अपना भगत का याद कर कर। आपे खोकर आया रे॥
महीपति के प्रभु दत्त दिगम्बर। किया मुझे मनोहारा रे ॥ 5 ॥

कृष्णराय। कवि कृष्णराय ने भी कन्नड तथा हिन्दी में पदरचना की है। आपने कन्नड में गेय पदों के अतिरिक्त खंडकाव्य भी लिखे हैं। आपके लगभग 30-40 हिन्दी पद प्राप्त हैं। एक बानगी—

राग सारंग—ताल त्रिताल

ऐसी क्या कर जी भूले।
कहा किये क्या ले चले ॥ टेक ॥
जो दिन को दुनिया मे होकर।
वे याद से चल भी चले ॥ 1 ॥
सारासार विचार करो तुम।
हरि ध्यान पल न टले ॥ 2 ॥
महागुरु 'कृष्ण' को बोध मनन करो।
सहज ऊपर पथ मिले ॥ 3 ॥

रंगनाथ पंडित (1610-1170 ई०) आप महीपति के सामयिक थे, सिद्ध थे। विजापुर के अंतिम बादशाह मुहम्मद आदिलशाह तथा सिकंदर आदिलशाह ो गुरुस्वरूप मानते थे। आप महान् वैद्य भी थे। आपके सैकड़ो शिष्य महाराष्ट्र कर्णाटक में फैले हुए हैं। 'गुरुमालिका' नामक मराठी काव्य में आपका चरित्र है। आपने कन्नड, संस्कृत, मराठी एवं हिन्दी में पद-रचना की है। आपके पदों द्वैतानुभूति का सुन्दर वर्णन मिलता है। एक उदाहरण—

मन मतवाला बिखिया रस पीयो
कुछ बोलत कछु हेरत है, चहु और फिरत है बेहाला ॥ ध्रु० ॥
धुंड फिरा सब देस नदी जहां तहां लोक गंवाला।
अब जु अचानक बैंद मिला गुरु 'रंगम' किया अपगला ॥ 1 ॥

लक्ष्मीपति (1780 ई०) आप भी गुरु की भांति एक पहुंचे हुए साधक थे, त्री थे। आपने हिन्दी तथा मराठी में काफी संख्या में पद रचे हैं। आपके 50 न्दी पद प्राप्त हैं। प्रो० आर० जी० कुलकर्णी जी का कहना है कि आपके द्वारा चित कृष्णलीला सम्बन्धी पद सूरदास की याद दिलाते हैं। एक उदाहरण—

मो सो पतित केते उधरें
एक बार मुख नाम जु ले ताहि प्रभु अपने से करे ॥ ध्रु ॥
गज, गनिका, अजामिल, वाल्मिक वट परि तन टरे।
औरस रस पायी जन हम से जात पात बिगरे ॥ 1 ॥
भाग्यहीन इनमें तुम मोको समझ मौन धरे।
नाम समान किधौं नहिं पातक जन मन के तुम हरे ॥ 2 ॥
सुनि करुनाधन, अधम उधारन आवत द्वार खरे।
लछमीपत' राखत ही राखी जस लालच पकरे ॥ 3 ॥

सकल मत संस्थापक माणिक प्रभु दत्त संप्रदाय की एक शाखा कर्णाटक और महाराष्ट्र में विशेष रूप से प्रचारित हुई। इस शाखा के कई महानुभावों ने हिन्दी, मराठी आदि में पद रचना की है। उनमें श्री माणिक प्रभु का नाम अन्यतम है। आप गुरु दत्तात्रेय के अवतार माने जाते थे। आपने चैतन्यवाद के एक नये पंथ की स्थापना की। उसको सकलमत-संप्रदाय कहते हैं। आत्मा की सर्व-व्यापकता, सर्वतंत्र स्वतंत्रता तथा सहज मुक्ति को मानने वाले इस संप्रदाय ने सर्वधर्म समन्वयात्मक तत्त्व को अपनाया है। श्री माणिकप्रभु जी ने मराठी, हिन्दी, कन्नड और उर्दू में पद रचे हैं। आपकी गद्दी गुलबर्गा के पास हुम्नाबाद में है। उसे माणिकनगर कहते हैं। आपके हिन्दी पद सैंकड़ों हैं। एक नमूना—

भाई मोरे नयन बसे रघुवीर ॥ टेक ॥
शंख चक्र गदा पद्म विराजे
कोमल गात्र शरीर।
झमकत बादल चमकत बिजली
घसड बरसत नीर।
माणिक के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल मन धीर ॥

इस संप्रदाय के अन्य गुरु मनोहर माणिक प्रभु, मार्तंड माणिक प्रभु आदि ने भी हिन्दी में पद-रचना की है।

इसी समय के एक अन्य कवि है, रघुनाथदास जिनका समय अनुमानत 1640 ई० के करीब माना जाता है। इसके अतिरिक्त इस कवि के बारे मे और कुछ मालूम नही है। इनकी हिन्दी रचनाओ की एक बानगी—

राग काफी

आरत कीजै मदन गोपाल की ।। टेक ।।
हरति सकल सताप जन्म की ।
मिटति तलब जम काल की ।। 1 ।।
गो, घृत रचित कपूर वाती ।
झलकत कचन थाल की ।। 2 ।।
चद्र कोटि, भानुकोटि द्युति ।
मुख शोभानन्द जाल की ।। 3 ।।
घटा, ताल, मृदग, झालरी ।
मजुल कुसुम गुलाल की ।। 4 ।।
हम बलि-बलि रघुनाथ दास प्रभु
मोहन मदन गोपाल की ।।५।।

तिम्पणार्य : आपका समय, जीवन आदि अज्ञात हैं। किन्तु इनकी कन्नड भाषा के आधार पर हम इन्हे अठारहवी सदी के मान सकते हैं। इनके तीन ग्रन्थ मिले हैं। दो कन्नड के और तीसरा पाच भाषाओ म है। तीनो 'यक्षगान' नामक लोक-नाटक हैं। पहले के दो ग्रन्थ 'कालिय मर्दन' तथा 'हनुमद्विलास' कन्नड मे हैं तो तीसरा ग्रन्थ 'श्रीकृष्ण बाल लीले' कन्नड, तमिल, तेलगु, मराठी तथा हिन्दी मे है। 'श्रीकृष्ण बाललीले' मे इन पाँचो भाषाओ के अतिरिक्त बीच-बीच मे सस्कृत के श्लोक भी हैं। तीनो ग्रन्थो के अत मे कवि ने थोडा-सा आत्म-परिचय दिया है।

कवि माध्वमत का अनुयायी था। 'श्रीकृष्ण बाललीला' मे हमे कुल मिलाकर हिन्दी के बीस छन्द मिलते हैं। इनम 'दोहरा' को छोडकर शेष सब कन्नड के छद हैं। कन्नड की भाति इसम द्वितीयाक्षर का प्रास मिलता है। इस दृष्टि से कन्नड के छदो मे थिरकने वाली इस हिन्दी-नदिनी की छटा द्रष्टव्य है। तिम्पणार्य की हिन्दी दक्षिणी हिन्दी है। कुछ उदाहरण—

(1)
राग पूर्वी

बाल गोपाल खेले । गोकुल मे श्री बालगोपाल खेले ।। टेक ।।
नयन कमल सब दिन खुले देखत चले
पायल झुन-झुन-झुन हलते ।। 1 ।।
वदन पदम कु उप्परद पीथी
कर कर खुशी पद नूपुर बाजे ।। 2 ।।
सगा नही किए गाव के
सब छोटो के घुघुरू घन हलते ।। 3 ।।
गरजत बादल को हले
गोकुल भरे चरण कमल फिरते ।। 4 ।।

या उपनाम से आपने सैकड़ो पद कन्नड तथा हिन्दी मे रचे हैं। आप एक पहुचे हुए रहस्यवादी तथा मस्ती के आलम म रहनेवाले थे। आपके पद लोकगीतो के तर्ज मे हैं, आज भी लोककठकूजित हैं। वे साहित्यिक गुणो स उन्नत है, भक्ति-भाव के भार स अवनत है। साहित्य, सगीत का अप्रतिम सगम इनकी विशेषता है। कुछ उदाहरण —

(1)
राग कल्याणी-छत्य ताल

दुख मे पड़ा मन
सुख नही भाया
टर्कति मग्न रखवाल रे ॥ टेक ॥
खाता, पीता, सोता सब दिन
बात ये गफलत खेल रे ॥ 1 ॥
तीन रोज गुजराना जीवन का
ये तन माटी मेल रे ॥ 2 ॥
रोशन हो 'शिशुनाळ' जगत
पर मेरा पिया के साल रे ॥ 3 ॥

(2)
राग टोडी आदि ताल

राज पलग पर खेलूगी साजन सोवति बोलूगी ॥ टेक ॥
मैंने बैठकर। मदन पीठ पर सहन मे सो भर ले जा लूगी ॥ 1 ॥
सात माल म बैठिए बेलि जावन आवत खेलूगी।
सुन सुन सखिया बोलूगी। राजपलग पर खेलूगी ॥ 2 ॥
सब्व पर है भिनाव हरमा। अब्बर के से कु बोलूगी ॥
शिशुनाल भेम मे खेलूगी। ऱ्ााने जगत पर लोलूगी ॥

आधुनिक युग

ऊपर हमने देखा कि कर्णाटक म हिन्दी लेखन किसी राजनैतिक दबाव या कारण से नही बल्कि स्वप्रेरणा से हो रहा था। मुसलमान शासको के कारण वह एक अतप्रातीय भाषा बन गई थी। उसकी इस महत्ता को पहचानकर उसम सतो व महतो ने स्वप्रेरणा स साहित्य रचना की। व्यापारी तथा सिपाहियो के कारण भी उसकी अतर्प्रांतीयता के विकास मे मदद मिली। आधुनिक युग म दयानन्द सरस्वती, केशव-चद्रसेन आदि अहिन्दी क्षत्र के नताओ न हिन्दी के इस अतर्प्रांतीय स्वरूप को शीघ्र ही पहचाना और उसे विशेष प्रोत्साहन दिया। महात्मा गाधीजी ने भी तुरत हिन्दी के महत्व को पहचाना। सन् 1918 तक गाधीजी सारे भारत का दौरा कर चुके थे। उन्होने महसूस किया कि साधारण जनता तक स्वतत्रता का सदेश सुनाने की क्षमता न अग्रेजी मे है न किसी क्षत्रीय भाषा म। आसतु हिमालय बसनेवाल हिन्दू, मुसलमान, भ्रमण करने वाले साधु-सत, तीर्थयात्रा करने वाले हिन्दू, व्यापारी और फौजो मे

रहने वाले सिपाही आदि के बीच हिन्दी-हिन्दुस्तानी खूब चलती थी। अब गांधीजी ने देखा कि भारत की एकता को बनाए रखने का जबर्दस्त साधन हिन्दी है। तुरन्त उन्होंने हिन्दी प्रचार को अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में एक बनाया और हिन्दी प्रचार की प्रेरणा दी।

कर्णाटक में भी हिन्दी-आंदोलन जोरों से शुरू हुआ। फलत 1929 ई० में प्रौढशालाओं में द्वितीय भाषा के रूप में उसने स्थान पाया। 1938 ई० में मैसूर विश्वविद्यालय में हिन्दी ने स्थान पाया। शुरू में इण्टरमीडिएट के स्तर पर उसे स्थान मिला। 1959-60 में मैसूर विश्वविद्यालय में हिन्दी एम० ए० की पढ़ाई शुरू हुई। कर्णाटक विश्वविद्यालय में भी 1959 में हिन्दी एम० ए० की पढ़ाई शुरू हुई। जब हिन्दी का उच्चस्तरीय अध्ययन तथा पठन-पाठन शुरू हुआ तो सहज ही शोधकार्य की ओर कुछ लोग प्रवृत्त हुए। फलत. मैसूर तथा कर्णाटक विश्वविद्यालय से दर्जनों अनुसंधित्सुओं ने शोधकार्य किया और तुलनात्मक अनुसंधान में विशेष रुचि ली।

इससे भी पूर्व विश्वविद्यालय से दूर ही रहकर कई हिन्दी-प्रेमी स्वप्रेरणा से साहित्य-निर्माण में लगे हुए थे। इनमें से बहुत-से लोगों ने रंगमंच के द्वारा भी हिन्दी-प्रचार में हाथ बंटाया। मेवाड़-पतन, वीर अभिमन्यु आदि नाटक सफलता से खेले गए।

इन स्वयंप्रेरणा के लेखकों में मूर्धन्य हैं स्व० पंडित तारानाथ जी।

पंडित तारानाथ (—1942 ई० तक) : आधुनिक काल के हिन्दी कवियों में पं० तारानाथ जी मूर्धन्य हैं। आप कर्णाटक के बहुमुखी प्रतिभासंपन्न महापुरुषों में एक थे। आप दार्शनिक थे, योगी थे, वैद्य थे, बहुभाषाविद् थे, अप्रतिम वक्ता थे, जन्मजात नट थे, समाजसुधारक थे और सबसे बढ़कर चिंतनशील साहित्यकार थे। कन्नड में आपने अनेकों ग्रंथ रचे हैं। हिन्दी में आपने बहुत-से पद रचे। आपके दो हिन्दी नाटकों ने एक समय भारत-भर में ख्याति पाई। आपका विख्यात नाटक 'दीनबंधु कबीर' महात्मा गांधीजी के सम्मुख बंगलूर में खेला गया। इसमें स्वयं तारानाथ जी ने 'कबीर' की भूमिका निभाई। महात्माजी इस नाटक को देखकर बहुत ही प्रभावित हुए और उन्होंने उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उनकी कविता के कुछ उदाहरण '

(1)

भारत में कैसे कैसे हुए वीर जिन्होंने आन बान पर,
जिन्होंने एक जबान पर कटा दिया शरीर ॥ टेक ॥
कह दी जो बात थी हरदम वे साथ लाख विपत आन पड़े रखते थे धीर।
भारत निवासी की संपति थी दासी।
हुए जब करम रहित, धरम रहित, शरम रहित,
मरम रहित विभूति हुई सारी ॥ 2 ॥

(2)

कहो राम राम राम राम राम एक दिन
माटी में मिल जाना एक दिन खाक में खप जा

एक दिन भाग मे जन जाना ॥ टेक ॥
हाडी जले जब लकडी जले ले चले यम दास ।
सोना पहनो रूपा पहनो सरग को नहीं भाव पास ॥ 1 ॥
देश देश था बैद बुलाया लाया जड बूटी ।
जड बूटी तो ग्रम तो नही लगी राम नगर की मूर्चा ॥
भूठी है अपनी माया गुलाबी रंग समाया ।
फूटी अपनी काया पतगी रंग लगाया ॥2॥
दस दरवाजा ख्वर निकल गई रह गए आपने आप ।
कहत कबीर सुनो भाई साधु कौन बेटा कौन बाप ॥ 3 ॥

(3)

काम कर जाग मन ध्यान धर राम का ।
मर जगत सोपान मोक्ष निष्काम का ॥
धर्मध्वज धीरपर धरत आधीन तन ।
चाल निज धाम सुख तोड भव बंधन ।
कर नाम रूप का ज्ञान रा त्याग ।
तत्व यही निजयोग दव इह पर भोग ।
साच गुरुज्ञान धन सोचकर साफ मन ।
मार भवभेद गुण तारायोगेन वन ॥

(4)

मैं गुलाम तेरा, तू है साहेब मेरा ।
एक रोटी दे, लगोटी द्वारा तेरा पाऊ ।
काम-क्रोध छोडकर हरि गुण गाऊ ।
रूप नही रंग नही और नही छाया ।
निरजन निराकार तू है गुरु राया ।
मेहरबानी, महरबानी, महरबानी तेरी ।
दास कबीर खडा लाज रखो मेरी ॥

1926 मे आपका 'दीनबधु कबीर' नाटक लिखा गया। आपने स्वप्रेरणा से हिन्दी सीखी थी। आपकी हिन्दी बिलकुल जानदार और फडकने वाली है। आपके गद्य का एक नमूना—

कबीर—काम करना, जिस काम से अपना भला हो, जग का भला हो। जग मे दारिद्र्य बढता है लोगन के हृदय दारिद्र्य से। धन-दारिद्र्य दया-दारिद्र्य की संतान है। जहा दया नहीं वहा अन्न नहीं, हया नहीं। जहा लोग धन और जन्म से बडे होते हैं न कि धर्म और कर्म से, वहा अनाचार जरूर बढेगा। धोखेबाजी पर ही जिंदगी का आधार होगा। मा की गोद मे ही बच्चों का स्व पर वचन का सस्कार होगा। अन्याय-पीडित लोग एक-दूसरे के अनुयायी भी होगे। न चाहे भी तो जरूर होगे। पाप होता है अपने पाप से मगर मूढ दूसरो पर भार डालते है। सच तो यह है कि हम करते हैं

जगत का नाम अपने ही हाथ में सारा काम है।[1]

ऊपर तारानाथ जी के नाटक की चर्चा हुई। इस क्षेत्र में काम करने वाले दूसरे सज्जन हैं श्री० आर० सी० मूसनूरमठ। आपका सर्वप्रमुख नाटक है 'हरळय्या-मधुवय्या'। हरळय्या-मधुवय्या कर्णाटक के महान् वीरशैव संत बसवेश्वर के अनुयायी थे। बसवेश्वर जाति-पाति, छुआछूत तथा वर्णाश्रम धर्म के विरोधी थे। उन्होंने अंतर्जातीय विवाह को भी प्रोत्साहन दिया। हरळय्या एक अंत्यज था और मधुवय्या ब्राह्मण था। मधुवय्या की पुत्री के साथ हरलय्या के पुत्र का विवाह उन्होंने सम्पन्न कराया। ऐसी घटना आज भी क्रांतिकारी है तो बारहवीं शती में पूछना ही क्या? सनातनियों ने उसका जमकर विरोध किया और तत्कालीन राजा बिज्जल के पास शिकायत की। बिज्जल ने हरळय्या-मधुवय्या की आँखें फुड़वाईं। तब वीरशैवों ने राजा के विरुद्ध विद्रोह किया। इसी परिस्थिति में संत बसवेश्वर की मृत्यु हुई। इस तरह एक ज्वलंत समस्या को लेकर नाटककार ने अत्यंत कलात्मकता के साथ यह नाटक रचा है।

चंद्रकांत कुसनूरकर प्रसिद्ध कहानीकार चंद्रकांत कुसनूरकर एक नाटककार भी हैं। आपने कन्नड में नाटक, कविता, कहानी आदि की रचना सफलता के साथ की है। 'महापुरुष' आपका प्रसिद्ध नाटक है। इसका नायक युद्धजं है। कल्पना और स्मृति इन दोनों के साथ उसका पाला पड़ता है। कल्पना के साथ उसने विवाह किया था। किंतु वह किसी की समर्पिता थी। अंत में युद्धज से स्मृति को विवाह करना पड़ा। एक नौजवान अविवाहित स्त्री का इधर मध्यवर्गीय समाज में क्या हाल होता है उसका जीता-जागता मार्मिक चित्र नाटककार ने यहाँ स्मृति के चरित्र-चित्रण द्वारा प्रस्तुत किया है। नाटक में अद्भुत गति है। शैली बहुत ही सहज एवं प्रभविष्णु है। एक बानगी —युद्धज· "यदि तुम्हें जीवित रहना है तो भावुक न बनो। मत बहो भावना में ''मन बहो। जीवन को मीठा बनाना चाहती हो तो तोड़ दो सारे बंधन, काट दो सभी सूत्र। अकेले रहो। प्रेम एक छलावा है, स्मृति, धोखा है। आज की दुनिया में कोई किसीसे प्यार नहीं करता'''नहीं करता—तुम प्यार मत करो, स्मृति मत करो'''मत करो।'[2]

श्री जयसिंह रेड्डी ने 'हुमायुन' नामक एक नाटक लिखा है। उसमें हुमायुन की मानवीयता का सुंदर निरूपण है। इसके साथ ही इन्होंने एक एकांकी-संग्रह भी प्रकाशित किया है। यह उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत है।

श्री के० गणपति भट्ट हमारे एक और उल्लेखनीय नाटककार हैं। आपने तीन-चार नाटक लिखे हैं जिनमें 'साधना', 'कौंतेय' आदि प्रमुख हैं।

श्री एम० वी० चित्रलिंगय्या जी का 'लाजवती-सतवती' नामक नाटक अप्रकाशित होने पर भी कई बार मंचित हुआ है। आपने कन्नड में भी 'इन्नेनितेनु' नामक नाटक लिखा है। स्वयं अभिनेता होने के कारण आपके नाटक अभिनेयता की दृष्टि से संपन्न हैं।

डा० एम० वी जवूनायन् जी ने 'सती शर्मिष्ठा', 'दानवीर सुमन' आदि सफल

1 दीनबंधु कबीर, पृ० 12।
2 महापुरुष

नाटक लिखे है ।

उपन्यास

हिन्दी म मौलिक उपन्यास लिखनेवालो मे सर्वप्रथम हैं उडुपि के श्री लक्ष्मीनारायण किणि । आपका सर्वप्रथम उपन्यास है 'बदलता जमाना' । यह एक सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास के उद्देश्य के बारे मे लेखक ने यो कहा है, "आज हमारे समाज मे—मानव-समाज म, पच्चीस से भी अधिक उम्र की बिन ब्याही लडकिया जीवन की सरस घडियो के लिए तरस रही हैं । अगर वे कही अपने स्तर से फिसल जाए तो समाज को चाहिए कि उनपर सहानुभूति दर्शाए, न कि घृणा । यो देखा जाए, तो ऐसे कोई भी नही जो कहे कि मैं गगाजल हू । हर एक मे एक न एक प्रकार की कमजोरी रहेगी ही ।"

स्पष्ट है कि बदलते जमाने के युवक-युवतियों की चारित्रिक शिथिलता की समस्या विशालहृदयता तथा सहानुभूति की दृष्टि से चित्रित करना इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है । उपन्यास का कलात्मक सौन्दर्य उसके मार्मिक चरित्र-चित्रण, विशिष्ट कथन-शैली तथा पात्रोचित प्रवाहशील भाषा से निखर उठा है । अपनी मातृभाषा हिन्दी न होते हुए भी श्री किणी जी ने इस उपन्यास मे भाषा पर जो असाधारण अधिकार दिखाया है वह प्रशसनीय है ।

डा० एम० एस० कृष्णमूर्ति 'इन्दिरेश' कर्णाटक के हिन्दी उपन्यासकारो मे आपका विशिष्ट स्थान है । आपने तीन उपन्यास लिखे हैं—1 अपराजित, 2 राग-कानडा तथा 3 परसराम की बहनें । प्रथम दो ऐतिहासिक हैं तो तीसरा सामाजिक । 'अपराजित' मे विजयनगरपूर्व कर्णाटक के एक महान् लोकवीर कुमार राम तथा उत्तर मे आने वाले मुसलमानो को रोकने मे उसने जो बहादुरी दिखाई इसका बहुत ही भव्य वर्णन है । राम का चरित्र-चित्रण एकदम सुदर है । राम लोकवीर है किन्तु विधि-विलास स उसकी सौतेली मा उससे प्रणय-याचना करती है और उसमे विफल होकर वह उसकी जान की गाहक बनती है । इस प्रकार यह एक दु खात उपन्यास है । इस सम्बन्ध मे दिल्ली की पत्रिका 'प्रकर' का मत द्रष्टव्य है—"पात्र सख्या की बहुलता एव घटनाक्रम की तीव्रता तथा एक के बाद एक घटनाओ की समायोजना ऐसी लगती है मानो लेखक इस उपन्यास को राष्ट्रीय महाकाव्य के निकट लाना चाहता है । उपन्यास की भाषा सस्कृतनिष्ठ है यद्यपि मुसलमानी शासन के सदर्भ मे उर्दू शब्दों की कमी नही है । मुहावरो और कहावतों ने भाषा को प्रभावी बनाया है । शैली की विवरणात्मक शक्ति अद्वितीय है । वीरतापूर्ण प्रसगो की भाषा बडी प्रभावी है और रासो-वर्णनो से मेल खाती है ।"

'राग कानडा' मे कर्णाटक के एक अल्पज्ञात किंतु महान् कलाकार सौरसी तथा उसकी पत्नी छिताई की कहानी है । 'छिताईवार्ता' हिन्दी का विख्यात प्रेमाख्यान है । इसकी विलुप्त कडियो को जुडाकर लेखक ने एक अत्यत कलात्मक उपन्यास प्रस्तुत किया है । सारा उपन्यास कलात्मकता से मडित है । इसमे चित्रकला है, स्थापत्य है, सगीत है । नायिका छिताई वीणावादन पटु है । राजकुमार सौरसी प्राणियो व पक्षियों को भी बेसुध करनेवाला कलाकार है । गोपाल नायक, अमीर खुसरो, अलाउद्दीन, रामदेव, ऐसा मध्ययुगीन भारत अपनी समस्त सस्कृति के साथ यहा प्रस्तुत है । अला-

उद्दीन का चरित्र चित्रण लेखक ने अत्यंत सहृदयता के साथ किया है। वातावरण के निर्माण में लेखक को अद्‌भुत सफलता मिली है।

'परसराम की बहनें' आपका सामाजिक उपन्यास है जिसमें कर्णाटक और महाराष्ट्र के अंचल के रेणुका देवी के भक्तों में प्रचलित देवदासी प्रथा का चित्रण है। धर्म की आड में शिकार खेलने वाले पण्डे-पुरोहितों का इसमें भण्डाफोड किया गया है, साथ ही अबोध, अपढ़ कन्याएं किस प्रकार इस जाल में पड़कर समाज का अभिशाप बनती हैं इसका मार्मिक चित्रण है। यह एक प्रकार से कर्णाटक का 'मैला आंचल' है। इसका चित्रण अत्यंत सजीव हो उठा है। लेखक की उपन्यास कला यहां निखर उठी है।

कहानी

कहानी के क्षेत्र में भी कर्णाटक के हिन्दी लेखकों ने काफी काम किया है। इस क्षेत्र में भी मूर्धन्य हैं श्री चंद्रकांत कुसुनूरकर। आप कन्नड के भी जाने-माने कहानीकार हैं। हिन्दी पर तो आपका अधिकार प्रशंसनीय है। 'कांच की गुड़िया' आपका प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है जिसको राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुका है।

डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति 'इन्दिरेन' जी ने एक दर्जन से अधिक कहानियां लिखी हैं। 'केला और अकेला', 'अंधकार की प्रतीक्षा में', 'रक्षाबंधन' आदि आपकी प्रसिद्ध कहानियां हैं। इनमें मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ निरूपण है। 'हाथी की मौत' में आपने एक राजा के गतवैभव तथा परंपरा-प्रेम का बहुत ही सजीव चित्र अंकित किया है।

श्री० के० एस० वेंकटरामय्या जी ने 'राशन', 'पश्चात्ताप' आदि कहानियां लिखी हैं। वेंकटरामय्या जी को कविता से अधिक कहानियों में सफलता मिली है। उनकी भाषा चलती और मुहावरेदार है। श्री एम० के० भारतीरमणाचार्य जी ने 'गिलहरी के गल्प' नामक एक कहानी-संग्रह प्रकाशित किया है। प्राणी-जीवन की घटनाओं का काफी सरस निरूपण इसमें है।

रेखाचित्रकारों में प्रो० ना० नागप्पा जी का स्थान मूर्धन्य है। 'बुआजी' आपका प्रतिनिधि रेखाचित्र-संग्रह है। इसमें कुल ग्यारह रेखाचित्र हैं जिनमें लेखक ने अपने बाल्यजीवन की स्मृतियों को अत्यंत सजीवता के साथ उजागर किया है। आपकी भाषा एकदम चलती और मुहावरेदार है। एक उदाहरण

"बुआजी के बिना मेरी दुनिया सूनी। मेरे बिना बुआजी अधी। बुआजी और मैं—बस, यही हमारी दुनिया थी।

जब पहले-पहल मैंने बुआजी को देखा था, अर्थात् जब से मैंने होश संभाला तभी वह बूढ़ी थी। हाथ खुरदरे, पांव लंबे, गाल चुचके पिचके, दांत मजबूत, बाल भूरे, चेहरे पर ऐसा नूर कि हर बात में उस चेहरे वाली का फैसला अंतिम। जो भी फैसला होता उसपर अडिग—उसपर अमल करने में एकदम स्थिर।"[1]

हास्य-व्यंग्य लेखकों में श्री रेवण्णा पी० जी० वेंकटगिरि आदि उल्लेखनीय हैं। रेवण्णा जी का 'भोलानाथ पुराण' इस क्षेत्र की एक उल्लेखनीय कृति है। आपकी

1 ना० नागप्पा—बुआजी, पृ० 1

भाषा सजीव एव प्रभावी है।

संस्मरण लिखने वालो मे श्री गुरुनाथ जोशी आदि प्रमुख हैं। जीवनियो मे प्रो० जी० सच्चिदानन्द जी की 'अनतार्य की जीवनी', श्रीमती एम० एन० तुगावाई की 'सरदार पटेल की जीवनी' आदि प्रमुख है।

गद्यकाव्य मे श्री रगनाथ रामचद्र दिवाकर जी का 'अतरात्मा से' बहुत ही महत्त्वपूर्ण कृति है।

आलोचना

अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा आलोचना के क्षेत्र मे अधिक प्रगति हुई है। कर्णाटक प्रदेश के हिन्दी विद्वान समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे आलोचनात्मक तथा परिचयात्मक लेख लिखते रहे हैं। जब विश्वविद्यालयो मे एम० ए० की पढाई होने लगी तब कई लोग शोध की ओर प्रवृत्त हुए। कर्णाटक प्रदेश से हिन्दी मे सर्वप्रथम पी-एच० डी० पाने वाले है डा० हिरण्मय जी। आपने 'हिन्दी एव कन्नड मे भक्ति-आदोलन' नामक विषय पर तुलनात्मक अध्ययन किया। सतुलित विचार एव विद्वत्तापूर्ण प्रस्तुतीकरण आपके इस प्रबध की विशेषता है। आपने कन्नड के वीरशैव एव वैष्णव भक्तो के साथ हिन्दी के निर्गुण सत तथा सगुण भक्तो की तुलना की है। इसके अतिरिक्त आपने कन्नड साहित्य, सस्कृति आदि पर सैकड़ो आलोचनात्मक निबध प्रस्तुत किए है।

प्रो० ना० नागप्पा जी ने रसात्मक बोध के विविध रूपो की चर्चा करते हुए आलोचना के अतर्राष्ट्रीय रूप का प्रतिपादन किया है। हिन्दी व्याकरण के प्रश्नो पर आपने सबसे पहले लिखा। भाषा वैज्ञानिक विषयो पर भी आपने सबसे पहले कलम चलाई। आपके आलोचनात्मक निबध यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं।

जब से मैसूर विश्वविद्यालय मे एम० ए० वर्ग खुला तब से शोधकार्य को विशेष बढावा मिला और अनेक लोगो ने शोधार्थी के रूप मे अपने नाम पजीकृत किए। किन्तु शोध की गति तीव्र नही है। विषय तुलनात्मक ही अधिक रहे हैं। मैसूर विश्वविद्यालय से अब तक एक दर्जन लोगो ने शोध-प्रबध प्रस्तुत कर पी-एच० डी० डिग्री प्राप्त की है। उनकी सूची इस प्रकार है—

1 डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति—1966
   विषय—हिन्दी एव कन्नड के साहित्य की प्रमुख धाराओ का तुलनात्मक अध्ययन।
2 डॉ० वी० कृष्णस्वामी अय्यगार— 1967
   हिन्दी एव कन्नड के अलकार ग्रन्थो का तुलनात्मक अध्ययन।
3 डॉ० एस० एम० रामचद्र स्वामी—1968
   कन्नड के रामकाव्य के पात्रो का तुलनात्मक अध्ययन।
4 डॉ० पी० सी० मानव—1970
   हिन्दी के लावणी साहित्य का अध्ययन।
5 डॉ० वी० वेंकटेश—1971
   बसव और कबीर का तुलनात्मक अध्ययन।
6 डॉ० पी० एच० सेतु माधवराव—1971

हिन्दी एव कन्नड के नाटको का तुलनात्मक अध्ययन।

7 डॉ० पी० वी० नजराजे अरसु—1972
हिन्दी एव कन्नड के लोकगीतो का तुलनात्मक अध्ययन।

8 डॉ० श्रीमती राधाकृष्णमूर्ति—1972
दक्षिण का सत-साहित्य

9 डॉ० मे० राजेश्वरय्या—1972
हिन्दी के निर्गुणिया सत एव कन्नड के शरण साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।

10 डॉ० एस० वेणुगोपलाचार—1974
हिन्दी एव कन्नड मे वैष्णव भक्ति—एक अध्ययन।

11 श्रीमती सरसम्मा—1975
हिन्दी एव कन्नड की महावतो का तुलनात्मक अयध्यन।

12 डॉ० एम० के० भारती रमणाचार—1975
हिन्दी और कन्नड मे राम-तत्त्व।

डॉ० कृष्णमूर्ति जी ने अपने शोध-प्रबध मे हिन्दी और कन्नड की वीर, भक्ति एव शृगार रसधाराओ की तुलना की है। यह तुलना व्यापक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे की है। तुलना और प्रभाव निर्देश इस शोध प्रबध की महती उपलब्धि है। कर्णाटक ही एक ऐसा देश है जहा वीरशैव, वीरवैष्णव आदि धर्म मिलते हैं। भक्ति के अतर्गत आपने यह दिखाया है कि कबीर वीरशैव सतो से प्रभावित थे, तुलसी का हरि-हर समन्वय कर्णाटक के भागवत सप्रदाय के प्रभाव का परिणाम है। यह प्रभाव दो प्रकार का है—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष म काशी के जगमवाडी मठ तथा वहा के वीर-शैव मतो का कबीर पर प्रभावित प्रभाव। कबीर न वीरशैव सत 'जगम' का अनेक बार उल्लेख किया है। दूसरा मराठी मतो द्वारा मराठी सतो के प्रभाव को हिन्दी विद्वानो ने भी स्वीकार किया है। आपने कई प्रमाणो द्वारा यह सिद्ध किया है कि मराठी मत वीरशैव मतो मे प्रभावित हैं।

डॉ० कृष्णस्वामी अय्यगार जी ने हिन्दी तथा कन्नड के अलकार-ग्रथ, उनमे दिखाई देने वाले साम्य तथा उनके मूल उत्स आदि को अत्यत प्रौढ एव पाण्डित्य-पूर्ण शैली मे प्रतिपादित किया है।

डॉ० रामचद्र स्वामी जी ने हिन्दी एव कन्नड के रामकाव्यो के पात्रो की तुलना मूल वाल्मीकि रामायण के परिप्रेक्ष्य मे की है। तुलसी, नागचद्र, मैथिलीशरण गुप्त, कुवेंपु आदि प्राचीन व अर्वाचीन कवियो की रामायणो का चरित्रगत साम्य व वैषम्य तथा उनकी सास्कृतिक एव ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का चित्रण किया है।

डॉ० पी० सी० मानव जी ने लावणी शब्द की व्युत्पत्ति, उसकी व्यापकता आदि का विवेचन करते हुए उसे एक सशक्त लोक-साहित्य विधा के रूप मे प्रस्तुत किया है। दक्षिण म प्रचलित लावणी साहित्य का उल्लेख परिधि से बाहर होने हुए भी ग्रथ को और भी उपादेय बनाता है।

डॉ० वी० वेंकटेश ने अपने प्रबध म निम्नांकित अशो पर प्रकाश डाला है·

1 उत्तर भारत के निर्गुण मतो को महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदायो के द्वारा जो निर्गुण भक्ति प्राप्त हुई, कही जाती है, वह निर्गुण भक्ति

वारकरमत के वीरशैव सप्रदाय मे प्राप्त रही ।

2 'सरवरवादी शून्य' की भावना कबीर आदि हिन्दी सतो को गोरखनाथ के माध्यम से वीरशैव शरणो की देन रही ।

3 कबीर प्रत्यक्षत और परोक्षत कर्णाटक के वीरशैवमत से प्रभावित हुए होंगे ।

डॉ॰ पी॰ एच॰ सेतुमाधव राव ने अपने शोध-प्रबध में हिन्दी और कन्नड के सामाजिक नाटको की तुलना की है । इस शोध-प्रबध में हिन्दी और कन्नड के सामाजिक नाटको का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए दोनो भाषा-प्रदेशो की जनता के जीवन की विभिन्न परिस्थितियो एव समस्याओ को परखने और उनके माध्यम से उन मूल तत्त्वो का उद्घाटन करने का भरसक प्रयास किया गया है जिनके द्वारा भारत की भावात्मक एकता का क्षेत्र प्रशस्त तथा दृढ हो ।

डॉ॰ पी॰ वी॰ नजराजेअरसु जी ने 'हिन्दी और कन्नड के लोक-गीतो का तुलनात्मक अध्ययन' मे सप्त अध्याय है । प्रथम अध्याय मे लोक-गीतो का प्रारभ, उनका स्वरूप, उनकी परिभाषा आदि पर विचार कर यह स्पष्ट किया गया है कि साहित्य में लोक-गीतो का महत्त्वपूर्ण स्थान है । द्वितीय अध्याय मे कन्नड भाषा, उसकी भौगोलिक सीमा तथा कर्णाटक की सास्कृतिक परपरा का परिचय दिया गया है । तृतीय अध्याय में कन्नड प्रदेश के विविध भागो मे प्रचलित भिन्न-भिन्न प्रकारो के लोक-गीतो का विश्लेषण किया गया है । इन लोक-गीतो की प्राचीनता, इनकी टेक, गान का तरीका आदि पर भी प्रकाश डाला गया है । चतुर्थ अध्याय में हिन्दी और कन्नड के लोक-गीतो का तुलनात्मक एव समन्वयात्मक अध्ययन किया गया है । इस अध्ययन से भारतीय सस्कृति का आधार क्या है, उसका विकास कैसे हुआ, यह जानने मे एक नया दिशा दर्शन करने का प्रयत्न किया गया है । पचम अध्याय मे कन्नड लोक-गीतो मे आने वाले विविध भावो का विवेचन किया गया है ।

'दक्षिणी भारत की सत-परपरा' नामक अपने प्रबध मे श्रीमती राधाकृष्णमूर्ति ने दक्षिण भारत के तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम तथा मराठी के सत-साहित्य का परिचय दिया है ।

डॉ॰ एम॰ राजेश्वरय्या जी ने अपने शोध-प्रबध मे कन्नड शरण-साहित्य एव हिन्दी सत साहित्य मे प्राप्त निर्गुण भक्तिधारा का तुलनात्मक अध्ययन किया है। वीरशैव सता की औत्तरेय सतो से क्या विशिष्टता है, उनकी देन क्या है आदि का विवरण इसमे है । औत्तरेय सतो पर वीरशैव प्रभाव की भी चर्चा है ।

डॉ॰ वेणुगोपालाचार्य जी ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी और कन्नड मे वैष्णव भक्ति' में कर्णाटक मे वैष्णव धर्म पर प्रकाश डाला है । डॉ॰ हिरण्मय जी ने अपने शोध-प्रबध मे इस विषय पर अच्छा काम किया था ।

डॉ॰ मरसम्मा जी ने 'हिन्दी और कन्नड की कहावतो का तुलनात्मक अध्ययन' नामक अपने शोध प्रबध म कहावत की व्याख्या, दोनो जनपदो की कहावतो द्वारा दर्शित जीवनदर्शन, पद्धति, विश्वास आदि का सुदर विश्लेषण किया है । कहावतें भाषाई भिन्नता के होते हुए भी किस प्रकार समष्टिगत अचेतन मन की अभिव्यक्ति करती हैं, इसका प्रतिपादन किया गया है ।

डॉ॰ भारती रमणाचार्य जी ने हिन्दी और कन्नड मे अभिव्यक्त रामतत्त्व

विषय पर काम किया है। राम का स्वरूप विभिन्न मतो के परिप्रेक्ष्य मे कैसे रूपायित हुआ, इसमे आधुनिक युग का योगदान क्या रहा आदि विषयो पर प्रकाश डाला है।

इनके अतिरिक्त कर्णाटक, मैसूर तथा बेंगलूर विश्वविद्यालयो मे बीसियो विषय शोध के लिए पजीकृत हुए हैं।

अन्य आलोचनात्मक ग्रथो मे श्री सिद्धलिंग पट्टण शेट्टीजी का 'कन्नड एव हिन्दी की नई कविता,' डॉ० रारजेश्वरय्या जी का 'उर्मिला', डॉ० सरगु कृष्णमूर्ति का 'पपरामायण तथा तुलसी रामायण की तुलना,' डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति का 'कवि श्री कुवेंपु तथा कवि श्री बेंद्रे' आदि उल्लेखनीय हैं। साहित्य के इतिहासो मे गुरुनाथ जोशी का 'कन्नड साहित्य-परिचय', डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति का 'कर्णाटक तथा उसका साहित्य', डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति का 'कर्णाटक भारती', डॉ० हिरण्मय जी का 'कन्नड साहित्य सौरभ', श्री सिद्धगोपाल का 'कन्नड साहित्य' तथा काशीनाथ हळ्ळीकेरी का 'कन्नड साहित्य' उल्लेखनीय हैं।

कोश तथा व्याकरण ग्रथो के क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्व का काम किया है डॉ० एम० बी० जबुनाथन जी ने। आपने हिन्दी-कन्नड-कोश, उर्दू-हिन्दी-कोश, हिन्दी मुहावरा-कोश, सरल हिन्दी व्याकरण आदि ग्रथ रचकर इस क्षेत्र की कमी को पूरा किया है। आपका हिन्दी-कन्नड कोश आज भी एक आदर्श कोश है। अन्य कोश-ग्रथो मे गुरुनाथ जोशी जी के हिन्दी कोश तथा कन्नड-हिन्दी कोश, जे० जी० मैसाळेली का कन्नड-हिन्दी कोश, डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति का कन्नड-हिन्दी कोश आदि उल्लेखनीय है। व्याकरण के क्षेत्र मे प्रो० ना० नागप्पा ने ठोस काम किया है। आपके 'अभिनव हिन्दी व्याकरण' तथा 'हिन्दी एव कन्नड का व्यतिरेकात्मक अध्ययन' बहुत ही प्रौढ एव विद्वत्तापूर्ण हैं। हिन्दी एव कन्नड व्याकरणो की तुलना श्री श्रीकठ मूर्ति ने भी की है।

दार्शनिक ग्रथो मे डॉ० र० रा० दिवाकर जी के 'वचनशास्त्र' तथा 'कर्मयोग' उल्लेखनीय हैं। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र मे प्रो० ना० नागप्पा तथा डा० एम० एस० कृष्णमूर्ति ने उल्लेखनीय कार्य किया है। प्रो० नागप्पा का 'कन्नड-भाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन', डा० कृष्णमूर्ति का 'हिन्दी मे द्राविड शब्द', 'कबीर मे द्रविड शब्द' आदि उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी मे रीडरो के निर्माण द्वारा हिन्दी भाषा के प्रचार मे योग देनेवालो मे सर्वश्री प्रो० ना० नागप्पा, प्रो० राजेश्वरय्या, प्रो० जी० सच्चिदानदन, श्री पी० आर० श्रीनिवास शास्त्री आदि प्रमुख हैं।

कविता :

कविता के क्षेत्र मे इक्के-दुक्के प्रयत्न ही हुए हैं, प्रोत्साहन के अभाव के कारण कोई सग्रह नही निकला। यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओ मे इन कवियो की कविताए प्रकाशित हैं। इन कविताओ को प्रकाशित करनेवाली पत्रिकाओ मे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की 'हिन्दी प्रचार समाचार', कर्णाटक प्रातीय हिन्दी प्रचार सभा की 'भारत वाणी' तथा मैसूर हिन्दी प्रचार सभा की हस्तलिखित पत्रिका 'जागृति' का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

इदिरा देवी : श्रीमती इदिरा देवीजी विख्यात गाधीवादी प्रो० टी० कृष्णमूर्ति

की श्रीमती है। आपने गाधीजी के रचनात्मक कर्यक्रमो मे सक्रिय रूप से भाग लिया। हिन्दी स्वय सीखी ही नही, उसका प्रचार भी आपने किया। 'जागृति' पत्रिका का सपादन भी आपने किया। 1935 ई० मे ही आपने बहुत-सी कविताए लिखी थी। 'बचपन' आपकी एक उल्लेखनीय कविता है। एक उदाहरण

मेरा उपवन

मेरा उपवन छोटा-सा
खिलते जहा मधुर मृदु फूल।
मेरे मन को यह हरषाता
जिसमे जाती हू दुख भूल।
खग स्वागत का गाना गाते
मलयानिल बहता है मद
अलि को देख खिलते सब फूल।
प्रगटाते अपना परमानद।
मधु पी-पीकर वह मतवाले
अलि गाते है मधुमय गान।
सूरज की ये कोमल किरणें।
भर जाती जीवन मे प्रान।[1]

डॉ० हिरण्मयजी ने भी इसी पत्रिका के लिए कुछ कविताए लिखी थी। 'जागृति' मे लिखनेवाले अन्य लेखको मे श्री एच० बी० भुजगाचार, के० एस० वेंकटरामय्या, आर० पी० मोहन, के० प्राणेशाचार्य, एम० बी० चित्रलिंगय्या आदि प्रमुख है।

श्री भुजगाचार जी की कविताए अत्यत मार्मिक है। 'दिल के तार हिलाऊ' आपकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता है। यद्यपि आपने कोई सग्रह प्रकाशित नही किया है, फिर भी एक सग्रह के लायक सख्या मे आपकी कविताए है। सुकुमार भावना तथा सुदरपदावली आपकी कविताओ की विशेषता है। एक बानगी

मेरा देश

मेरा देश दुनिया मे सबसे निराला।
साहस सस्कृति की यह पाठशाला
यह शीश पर देख, काचन मुकुट है।
उत्तर म पावन हिमालय विकट है।
करुणा की धार-सी गगा प्रकट है।
जमुना तथा सिधु नदिया सुतट हैं।
सागर चरण धो रहा उर्मिवाला ॥ 1 ॥
यहा राम साम्राज्य तज वन चले थे।
लोकार्थ कर्तव्य करते चले थे।
यहा कृष्ण गीता सुनाते चले थे।

1. जागृति, 1935 जनवरी-फरवरी अक

मनुष्यत्व शिक्षा दिलाते चले थे ।
यही है हमारे दिलो का उजाला ॥ 2 ॥
यहा साधु-सतो ने जाना निगम है ।
अहिसा यहा धर्म पावनपरम है ।
निकली यहा काव्य सरिता प्रथम है ।
विज्ञान सूरज का पहला उगम है ।
यही देश आर्यों का इतिहास वाला ॥ 3 ॥

के० एस० वेंकटरामय्या 'वेंकटेश' आप एक पुराने हिन्दी-प्रचारक हैं । हिन्दी-प्रचार के साथ-साथ आप हिन्दी मे कविता, कहानी आदि भी लिखते रहे । दक्षिण गगा, बापू, सुख-दुख आदि आपकी प्रसिद्ध कविताए है । एक बानगी

नदी का दुख

हाय मेरा अत आया ! हाय मेरा अत ।
लगी रोने नदी जब आई सागर तीर ।
मैं थी कितनी प्रसन्न पिता गिरि के घर,
फूली-फली वहा अतुलित अभग आनद ॥
कूद नीचे-ऊचे गिरि से बही सैकडो कोस
पाट के विस्तार-सा बढ रहा मम उत्साह
भर-जीवन मे थी चचल पुलकित अपार
जानती क्या अत होगा मिलके पारावार ।
सोचकर या लगी रोने नदी अपना अत,
पर पल-पल बदलती नदी कभी वह नही वह
पल-पल उसका जल जाता बहता निरतर ।
सत्य यह कि नित्य नूतन है नदी की धार ।
बूद बारिश की भी है सदा हालत यही,
जो है गिरती उन्नत अनत से इस मही
पर न उसका आदर इस धरा पर कभी,
रूप रग जो है नही उसका कारण यही ॥

श्री आर० पी० मोहन 'मुदी मोहन' के नाम से आपने दर्जनो कविताए लिखी, जो 'जागृति' के पुराने अको मे बिखरी पडी हैं । दुखियारा, दीपशिखा आदि आपकी प्रमुख *कविताए हैं । सजीवता एव प्रवाहमयी भाषा आपकी कविताओ की* विशेषता है । एक बानगी

मनमारा

आज चुप कैसे रहू मैं
याद आता विगत चित्रण ।
प्यासे नशीले नयन मे
मादकता थी मदिरा की ।
नित रस भरी उमगो के

गीत गाती बीन मन की।
मन जमुना के पानी मे
आशा भरे सितारा था।
यौवन के मस्त दिनो मे
सुरपुर का सुख लूटा था।
जीवन के निशा समय मे
व्याकुल बैठा मन मारा।
निराशा तम की रात मे
भगवान का ही सहारा।
आज चुप कैसे रहूं मैं
याद आता विगत जीवन का।

के० प्राणेशाचार्य आपने भी 'जागृति' के लिए बहुत-सी कविताए लिखी थी। आपकी शैली सस्कृत-निष्ठ है। एक उदाहरण—

कामना

मैं तव सेवक बन जाऊ,
सुदर उपवन रचकर
मैं तव लीला गाऊ
प्रतिदिन तेरे दरसन करके
दिन भर स्मरण करू
भक्तिभाव मे तुझे बुलाऊ।
अपने पन की सुधि भूलू।
मम कुटिया का तू स्वामी।
तव महिमा नित गाऊ।
मम जीवन का दिया जलाकर।
उज्ज्वल जोत जलाऊ।
तव मूरति मैं स्थापित कर
नित नित भजन करू
तव क्रीडा मे रत होकर
तन मन से मैं गाऊ।

'जागृति' के अन्य कवियो मे उल्लेखनीय हैं, सर्वश्री ना० विनायकराव, चित्रलिंगय्या 'अन्तर्मुखी' आदि।

प्रो० राधाकृष्ण मुदलियार बहुभाषाविद् प्रो० मुदलियार ने अठारह भाषाओ मे अपनी कलम चलाई है, सो भी कविता मे। आपकी कविताए यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं। आपकी प्रसिद्ध रचना 'द्युतिश्रुति वाहिनी' मे अठारह भाषाओ मे लिखित जो कविताए हैं, उनमे हिन्दी की भी कविताए हैं। इनके अतिरिक्त स्वरचित इन कविताओ का हिन्दी अनुवाद भी है। भाव-तीव्रता, विचार गाभीर्य एव भाषा प्रौढता आपकी कविता की विशेषताए हैं। कुछ उदाहरण .

व्यवस्थापन

अनूठी जगती पटी है मानव-चेतना से लबालब,
मक्करी बस्ती बटी है दानव-प्रेरणा से घुटकर।
निखिल विश्व में फैली है चित्शक्ति की चिरवहिति,
पृथक् प्रदेश में मची है घोरवृत्ति की लय-संहति।
समरस ही करता है 'परिवर्तन' विकार का औषधोपचार
सविस्तार ही करता है 'परिभ्रमण' संस्कार का पुनराख्यान।
प्रकृतिस्थ ही करता है 'संवेदन' सर्वलोकमंगल का समाहार।
स्वायत्त ही करता है 'संगठन' विश्व कुटुंब का संविधान।

निरुपाय नरनायक

पेड़ तले बैठा है सुरता फुरती धूनी रमाये बेघर,
हरी दूब बिकती है अशर्फियों के मोल खुले बाजार।
झूठी आन निभाता है मरने के जीविन पर एक ही बेबस
हर्षे चढ़ा लेता है दबंग को छलछंद से नीतिवान ही बेजार।
दे रहे ये प्रजाराज को दुहाई बल खाकर चुपके से सभी
आने लगती हैं सुख की हिलोरें हाला की पिनक में अभी
माक विहान पड़ रही हून-फूही इनकी हाँकने वालों पे यहाँ
फिर भी हारे दर्जे ही लेते हैं विद्रोह की राह भगत यहाँ।

कर्णाटक के अन्य हिन्दी कवियों में उल्लेखनीय हैं सर्वश्री सिद्धलिंगपट्टण शेट्टी, सत्यानंद, पंचाक्षरी हिरेमठ, डॉ० सरगु कृष्णमूर्ति, दा० रा० पुराणिक आदि। श्री सिद्धलिंगपट्टण शेट्टी कन्नड के भी ख्यातनामा कवि हैं। आपकी कविताएं 'शैल और सागर' नामक संग्रह में संगृहीत हैं। डॉ० सरगु कृष्णमूर्ति जी के काव्य-संग्रहों में 'ज्वाला केतन' तथा 'मधुस्वप्न' प्रमुख हैं। आपकी कविताओं में मानवता की दुहाई है और दुर्धर्ष जीवन का दहकता चित्र है, नवनिर्माण के लिए चुनौती है, भावों में याढ़ है और भाषा में गति है। एक उदाहरण :

हमको मत रोको

अब वक्त नहीं विनत करने हम आग जुटाने निकले हैं।
हमको मत रोको, कथा पर आकाश उठाने निकले हैं।
मत बोलो, सुनने सुनने को ये कान आज तैयार नहीं।
मत बोलो, कुछ अपनाने को ये प्राण आज तैयार नहीं।
प्राणों में ज्वाला की जमना आँखों में पावक की गंगा।
लेकर उर में प्रचंड आँधी हम स्वर्ग हटाने निकले हैं।
अब तक थे हम भी अपने ही अब बने पराये निकले हैं।
अब तक थे शिशु मन हाथों के, अब हाथ बढ़ाये निकले हैं।
मत ली रावण की अब मानें मत ली दुर्योधन की मानें।
अब राम पार्थ के धनुष लिये टंकार जगाने निकले हैं।

क्या कहा ? 'रात है शेष अभी', हम नये सूर्य बन जाएंगे।
क्या कहा ? 'मौत की आहट है', हम जीवन गान सुनायेंगे।
क्या कहा ? 'साप फुफकार रहे', हम उनके सिर पर नाचेंगे।
जिसने घूरा है, उसके दृग तलवार चलाने निकले हैं।
हम भी अब तक पत्थर पत्थर के सम्मुख हृदय नवाते थे।
हम भी अब तक अपनी जुबान की बिजली अनय बुझाते थे।
पर अब पत्थर मे अगारो की जीभ लगाने निकले हैं।
तूफान और आधी के उसको मौत सिखाने निकले हैं।
गाधी के घर में सापो की बाबिया बनायी जाती हैं।
गौतम के घर मे तलवारो की तान सुनाई जाती है
ठहरो, ठहरो देखेंगे हम—हा, देख लिया, अब देखो तुम
गाधी गौतम के मदिर को हम शुद्ध कराने निकले है।

अनुवाद

अनुवाद ही एक ऐसा क्षेत्र है जिसम पर्याप्त मात्रा मे कार्य हुआ है। अनूदित ग्रन्थो के द्वारा प्रदेश-विशेष या भाषा विशेष की सस्कृति का सजीव चित्रण प्राप्त होता है। इस दृष्टि से सच्चे अनुवाद एक नयी भावभूमि लाने मे समर्थ होते हैं।

उपन्यास—कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यासकार शिवराम कारतजी के 'मरळि मण्णिगे' का अनुवाद श्री बाबूराम कुमठेकर ने बहुत समय पहले ही किया था। किन्तु मूल का सौन्दर्य यहा नही आ पाया है। कारत जी के 'अळिद मेले' (मरने पर) का अनुवाद श्री गुरुनाथ जोशी जी ने किया है। श्री अ० न० कृष्णराव जी के 'कित्तूरराणी चेन्नमा' तथा 'सध्याराग' आदि का हिन्दी अनुवाद हो चुका है। श्री० त० रा० सुब्बाराव जी के 'हसगीते' का अनुवाद प्रताप सुधाकर ने किया है। डा० हिरण्मयजी ने श्री के० वी० अय्यर जी के 'शातला' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद किया है। श्रीमती वी० के० सुब्बलक्ष्मी जी ने श्री निरजन के 'विमोचने' का हिन्दी अनुवाद किया है। डॉ० एस० एल० भैरप्पा जी के 'वशवृक्ष' का सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है डॉ० वासु बी० पुत्रन ने। श्री चद्रकात कुसनूरकर ने श्रीकृष्ण आलनहल्ली के 'काडु' (जगल) का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। प्रो० ना० नागप्पा ने श्रीरगजी के 'अनादि अनत' का हिन्दी अनुवाद किया है। डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति का 'रत्नाकर' (मूल लेखक जी० ब्रह्मप्पा), डॉ० भारतीरमणाचार्य का 'दान चितामणि' (जी० ब्रह्मप्पा), डा० रामचद्र-स्वामी का 'अपस्वर' (मूल लेखिका श्रीमती त्रिवणी), श्री रसिक पुत्तिगे का 'कृष्ण देवराय' (मूल लेखक सूर्यनाथ कामत), एन० डी० कृष्णमूर्ति का 'उदयरवि' आदि इस क्षेत्र की उल्लेखनीय कृतिया हैं।

कहानी—डा० रामचद्र स्वामीजी ने 'त्रिवेणी सप्तक' 'श्रीनिवास अष्टक' नाम से श्रीमती त्रिवेणी तथा डा० मास्तीजी की कहानियो का अनुवाद प्रस्तुत किया है। अनुवाद वाछित परिणाम प्रस्तुत करने मे विफल है। श्री सु० रामचद्रजी ने श्री अश्वत्थ जी की कहानियो का बहुत ही सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है। कहानियो के अन्य अनुवादको मे उल्लेखनीय हैं सर्वश्री पी० वी० नजराजे अरसु, एम० वी० चिन्नलिगय्या, डा० एम० एस० कृष्णमूर्ति, के० सी० सारगमठ तथा प्रताप सुधाकर।

नाटक—सबसे पहले डॉ० र० रा० दिवाकरजी ने स्व० एम० आर० श्रीनिवास मूर्तिजी के 'नागरिक' नामक नाटक का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। श्रीप्रताप सुधाकर ने कुवेंपुजी के 'श्मशान कुरुक्षेत्र' का अनुवाद किया। डॉ० हिरण्मयजी ने कुवेंपुजी के 'रक्ताक्षि' का अनुवाद किया है। डॉ० राजेश्वरय्या तथा गुरुदत्त ने डॉ० प्रभुशंकर के 'अगुलीमाल' का अनुवाद किया है। श्री बी०वी० कारत ने श्रीरंगजी के 'वैळुजनमेजय तथा गिरीश कार्नाड के 'तुगलक' का सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है। श्रीमती चन्द्राबाई ने डॉ० प्रभुशंकर के 'अंबपाली' का अनुवाद किया है।

निबंध तथा रेखाचित्र—निबंधों के अनुवाद बहुत ही कम हुए हैं। प्रो० नागप्पा ने प्रो० ए० एन० मूर्तिराव जी के 'हगलगनसुगळ्' (दिवास्वप्न) का सुंदर अनुवाद किया है। डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति ने स्व० सिद्धवनहळ्ळी कृष्णशर्मा के कुछ निबंधों व रेखाचित्रों का हिन्दी अनुवाद किया है। श्रीबालचंद्र जयशेट्टी ने एन० प्रह्लादराव के निबंधों का अनुवाद किया है। श्रीतिप्पेस्वामी ने प्रो० एच० एस० के० तथा डॉ० हा० मा० नायकजी के कुछ रेखाचित्रों का अनुवाद किया है। कुवेंपुजी के मलेनाड चित्र का सुंदर अनुवाद प्रो० कम्पोकेरी तथा शिवमूर्ति स्वामी ने किया है।

वचन-साहित्य—वचन-साहित्य कन्नड की अपनी साहित्य विधा है। यह एक प्रकार का पद्य-गंधी गद्य है। इसमे वीरशैव संतों ने अपनी अनुभूतियों को वाणी दी है। इसकी परपरा आज तक चली आई है। इसका यथेष्ट अनुवाद हिन्दी मे नहीं हो पाया है। बसवेश्वर के वचनों का सर्वश्री रामेश्वरय्या, उमापति शास्त्री तथा मूसनूरमठ ने किया है। उमापति शास्त्री ने अक्कमहादेवी के वचनों का भी अनुवाद प्रस्तुत किया है।

कविता—'भारतीय कविता' माला मे साहित्य अकादेमी के लिए कन्नड के प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का अनुवाद सर्वश्री प्रो० नागप्पा, डॉ० हिरण्मय, वी० आर० नारायण आदि ने किया है। वर्धा से प्रकाशित कवि श्रीमाला के लिए डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति ने श्री कुवेंपु तथा बेंद्रेजी की कुछ कविताओं का गद्यानुवाद किया है। प्रो० जी० सच्चिदानंदन ने बीस साल पहले कुवेंपु, बेंद्रे, गोविंद पै आदि की कविताओं का हिन्दी अनुवाद 'आजकल' मे प्रकाशित किया था। डा० सरोजिनी महिषी ने कुवेंपुजी के महाकाव्य 'रामायण दर्शनम्' के एक खंड का हिन्दी अनुवाद किया है। इसी लेखिका ने डॉ० डी० वी० गुंडप्पाजी के 'मंकुतिम्मनकग्ग' का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री शिवमूर्ति स्वामीजी ने श्रीमती जयदेवी तायी लिगाडे के 'जयगीत' का सफल अनुवाद किया है।

प्राचीन कविताओं मे प्रो० मा० देवेगौड ने होन्नम्मा की विख्यात कृति 'हदिबदेय धर्म' का 'सती गीत' नाम से काव्यानुवाद किया है जो काफी सफल है। डा० दक्षिणामूर्ति ने 'जैमिनी भारत' का गद्यानुवाद किया है। भक्त श्रेष्ठ पुरदर दासजी के गेयपदो का अनुवाद बाबूराव कुमठेकर ने 'पुरदरदासजी के भजन' नाम से किया है।

5

हिन्दी साहित्य को आंध्र की देन

डॉ० भीमसेन निर्मल

आर्य और द्रविड़ के संगम स्थान पर स्थित आंध्रों ने आर्य संस्कृति को अपना कर, आर्य भाषाओं की सराहनीय सेवा की है। क्या संस्कृत, क्या प्राकृत, क्या अपभ्रंश, क्या हिन्दी—सभी भाषाओं में साहित्य भंडार की श्रीवृद्धि में उन्होंने अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है। संस्कृत साहित्य की कुछ शाखाओं में तो आंध्रों ने अपनी रचनाओं को सर्वमान्य बनाकर, अपने ग्रंथों को उस क्षेत्र की आधिकारिक एवं प्रामाणिक रचनाएं बनाई हैं। वैदिक विज्ञान में विद्यारण्य स्वामी, दार्शनिक साहित्य में कुमारिल भट्ट, व्याख्या-रचना में मल्लिनाथ सूरि, काव्य-शास्त्र में पंडित जगन्नाथ सा सरस्वती के ऐसे ही वरदपुत्र हैं, जिनपर आंध्र जाति समुचित गर्व कर सकती है।

ईसा की प्रारंभिक शतियों में आंध्र देश पर सातवाहनों का शासन रहा। सातवाहनों के युग में प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं का पर्याप्त प्रचार रहा। प्राकृत साहित्य के लिए मानो यह स्वर्णयुग था। महाराजा हाल द्वारा संकलित 'गाथा सप्तशती' मानो इस स्वर्णयुग का मणिदीप है। हिन्दी साहित्य की अत्यधिक लोकप्रिय साहित्य-विधा 'सतसई' का मूल प्रेरणा-स्रोत 'गाथासप्तशती' को ही मान सकते हैं। इसे हिन्दी के लिए आंध्र की सर्वप्रथम तथा सर्वप्रधान देन माना जा सकता है।

संस्कृत और प्राकृत के बाद आंध्रों ने उन भाषाओं के उत्तराधिकार से संपन्न हिन्दी भाषा तथा साहित्य की अनुपम सेवा की है और इस दिशा में सतत प्रयत्नशील हैं।

हिन्दी में स्वयं न लिखकर भी, हिन्दी साहित्य को अप्रतिम रूप से प्रभावित करनेवाले आचार्य श्री वल्लभ आंध्र थे। ये कंभपाटिवाले त्रिलिंग ब्राह्मण थे। वल्लभ संप्रदाय ने हिन्दी साहित्य भंडार को जो अक्षयनिधियां प्रदान की हैं, वे किसीसे छिपी नहीं हैं।

मध्ययुगीन साहित्य में वल्लभाचार्य के बाद पद्माकर तथा लाल कवि का नाम लिया जा सकता है। रीतिकालीन कवियों में भाषा के विचार से प्रौढ़, वाग्विदग्ध एवं कुशल कलाकार पद्माकर जी तैलंग ब्राह्मण थे।

रीतिकाल के अन्य प्रसिद्ध कवि लाल कवि उपनाम गोरेलाल के पूर्वज आंध्र के निवासी थे। इन दोनों कवियों ने व्रजभाषा के प्रचलित साहित्यिक रूप का प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं को रीतिकालीन साहित्य में समादृत स्थान प्राप्त है।

उपर्युक्त महानुभावों ने हिन्दी भाषी प्रान्त में रहकर हिन्दी साहित्य की सेवा की है। इन महानुभावों की परंपरा में आधुनिक काल के प्रसिद्ध कवि श्री सी० बालकृष्णराव का नाम सादर लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त हिन्दी-भाषी

प्रांतो मे कई ऐसे आंध्र होंगे, जो हिन्दी-शारदा की अर्चना कर रहे हो।

दक्षिण मे—अहिन्दी भाषी प्रांत मे—रहकर भी कुछ सरस्वती-पुत्रो ने हिन्दी साहित्य की सेवा की है। इनमे 17वी शती मे तंजाऊर पर शासन करनेवाले भोसल वंशीय शाहजी महाराज (सन् 1684-1712) का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। इन्होंने हिन्दी भाषा मे दो यक्षगानो की रचना की थी। संगीत और साहित्य के प्रकांड विद्वान, उत्कृष्ट कवि और अनन्य आश्रयदाता के रूप मे शाहजी महाराज तेलुगु साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय स्थान के अधिकारी हैं। शाहजी ने तेलुगु मे 21 यक्षगानो की रचना की थी। शाहजी-कृत हिन्दी यक्षगानो मे 'राधा वंशीधर विलासनाटक' राधा और कृष्ण के संयोग-वियोग के वर्णन से संबंधित है तो 'विश्वातीत विलास नाटक' शिव की महिमा से संबंधित है। शाहजी ने 'पंचभाषा विलास नाटक' मे संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी, तेलुगु, मराठी, तमिल, मलयालम भाषाओ का स्पृहणीय प्रयोग किया है। इन नाटको मे प्रयुक्त हिन्दी बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा है और गीतो के राग-ताल कर्नाटकसंगीत के अनुसार है। दक्षिण भारत के संगीत के सांचे में, हिन्दी भाषा को ढालने का यह प्रथम एवं सफल प्रयास है, जो राष्ट्रीय भाव-समैक्य का सुंदर उदाहरण है।

सन् 1880 के लगभग श्री शिष्टु कृष्णमूर्ति शास्त्री तथा मेडा कामय्य अथवा नरहरि शास्त्री नामक दो महानुभावो ने गोस्वामी तुलसीदास के मानस का तेलुगु भाषा मे सुंदर काव्यानुवाद किया है। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि अनुवादको ने मूल हिन्दी ग्रंथ मे प्रयुक्त छन्दो मे अर्थात् दोहा, चौपाई, सोरठा आदि छन्दो मे तेलुगु भाषा को ढालने का स्तुत्य प्रयास किया है। यह अनुवाद अपने ढंग का अद्वितीय है। यह अभी अप्रकाशित है।

सन् 1884-86 के मध्य, मछलीपट्टणम के निवासी, तेलुगु और संस्कृत के विद्वान श्री नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि ने हिन्दुस्तानी मे एकाध नही, 32 नाटको की रचना की है। उस समय महाराष्ट्र प्रांत से आई हुई नाटक-कंपनियो के रंगमंचीय नाटको की धूम थी। इन नाटको की भाषा हिन्दी हुआ करती थी। इन हिन्दी नाटको की देखा-देखी श्री पुरुषोत्तम कवि ने स्वयं हिन्दी नाटको की रचना की और स्वयं सूत्रधार बनकर अपने नाटको को अभिनीत कराया। श्री पुरुषोत्तमजी की हिन्दी रचनाओ की लिपि तेलुगु है। इन 32 नाटको मे से 'रामदास चरित्रम्' स्वयं लेखक द्वारा तेलुगु लिपि मे ही सन् 1961 मे प्रकाशित किया गया है। दुर्भाग्य की बात है कि ये सभी रचनाएं आज प्राप्त नहीं हैं। 32 म से केवल 14 नाटक और कुछ फुटकल भजन ही उपलब्ध है। हिन्दी नाटक साहित्य को श्री पुरुषोत्तमजी की देन अद्वितीय है और इन रचनाओ को हिन्दी-नाटक साहित्य के इतिहास मे समादृत स्थान मिलना चाहिए।

श्री पुरुषोत्तमजी के अतिरिक्त, 19वी शती के अन्तिम दशको मे हिन्दी मे नाटको की रचना करनेवाले तथा उन हिन्दी नाटको को अभिनीत करनेवाले आंध्रो का नामोल्लेख श्री पसुमर्ति यज्ञनारायण शास्त्रीजी के—'आंध्र नट प्रकाशिका' (सन् 1930) नामक ग्रंथ मे मिलता है। इस ग्रंथ के 310 से 352वें पृष्ठ तक के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आंध्र के नाटक-साहित्य ने प्रारंभकाल म हिन्दी हिन्दुस्तानी मे पर्याप्त मात्रा म नाटक लिखे गए थे और उनका अभिनय भी हुआ था। श्री यज्ञनारायण शास्त्रीजी के विवरण का मुख्य भाग निम्न प्रकार का है।

1. विशाखापट्णम के जगन्मित्र समाज ने (जिसका प्रारभ 1885 मे हुआ था) 1889-90 मे हिन्दी मे नाटक अभिनीत किए थे।

2 प्रियसल्लाप नाटक कपनी (अल्लीपुरम) ने हिन्दी मे कई नाटको का प्रदर्शन किया। इस कपनी के प्रमुख अभिनेताओ मे गोविंदराव, शकरम आदि थे। ये आसपास के गावो मे भी नाटको का प्रदर्शन करते थे।

3 काकिनाडा के वेदुरुमूडि शेषगिरिराव ने 'शिवाजी चरित्र', 'पेशवा नारायण राव वध' आदि हिन्दी नाटको की रचना की थी।

4 वामन भट्ट जोशी एलूरु मे सन् 1885 से लेकर 1890 तक हिन्दी नाटको का प्रदर्शन करते रहे।

5. सन् 1902 मे नरसापुर मे बुद्धिराजु ब्रह्मानदम्, बोम्मकोट कृष्णमूर्ति और मामिल्लपल्लि केशवाचार्य ने 'आर्यानद हिन्दू नाटक समाज' की स्थापना कर, हिन्दी मे नाटको को प्रदर्शित किया।

6 केवल हिन्दी नाटको के प्रदर्शन के लिए भी मुनिपट्टणम मे 'भक्ति विलासिनी समाज' की स्थापना हुई। इस सस्था के सस्थापक श्री मिंदी रामचद्रराव थे जो अच्छे अभिनेता थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि आध्र नाटक-साहित्य के प्रथम उत्थान काल मे, हिन्दी-हिन्दुस्तानी मे पर्याप्त मात्रा मे नाटक लिखे गए थे और उनका प्रदर्शन भी हुआ था।

एक और बात। दक्खिनी हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध पुराने हैदराबाद राज्य के तेलगाना और कर्नाटक प्रातो से अधिक रहा है। प्राप्त प्रमाणो से यह सिद्ध होता है कि दक्खिनी साहित्य हैदराबाद को केंद्र बनाकर विकसित हुआ था। तेलगाना का केंद्र अथवा मध्यबिंदु लगभग हैदराबाद ही है। अत यह मानने मे कोई आपत्ति नही हो सकती कि तेलगाना ही दक्खिनी साहित्य का रगस्थल रहा है। दक्खिनी के सुप्रसिद्ध कवि मुल्ला वजही (सन् 1609 के आसपास) के निम्न उद्धरण से यह बात सिद्ध हो जाती है।

"दखिन-सा नही ठार ससार मे
निपज फाजिला का है इस ठार मे।
दखिन है नगीना अगूठी है जग
....
अगूठी कू हुर्मत नगीना ही लग।
दखिन मुल्क कू धन अजब साज है
कि सब मुल्क सिर होर दखिन ताज है।
....
दखिन मुल्क मौतेव खासा अहे
तिलगाना उसका खुलासा अहे।[1]
....

दक्खिनी हिन्दी साहित्य के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो सकती है कि उसमे

1. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा—म० प० राहुल साकृत्यायन, पृ० 23।

अधिकांश भाग तेलुगु भाषी प्रांत मे रचा गया है। हा, यह कहा नही जा सकता कि उसमे कितना भाग आंध्र भाषा-भाषियो का है। यह अभी शोध का विषय है।

उपर्युक्त सभी रचनाए स्वच्छंद रूप से हुई हैं। इन लेखको पर न किसी प्रकार का शासकीय प्रभाव था, न उनके सामने कोई राजनैतिक आदर्श ही था। ये समस्त रचनाए इस तथ्य को सिद्ध करती हैं कि इस रचनात्मक कार्य के पीछे 'मध्यदेश' की भाषा की सार्वदेशिकता की ही भावना थी, कोई राजनैतिक अथवा व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना नही।

20वी शती के प्रारभ में पूज्य बापूजी की सत्प्रेरणा से दक्षिण भारत मे नियमित रूप से हिन्दी का पठन-पाठन शुरू हुआ। महात्माजी का सदुद्देश्य था कि इस प्रकार के प्रयत्न से, भाषा की विभिन्नताओ के कारण और अग्रेजी शासन की कूटनीति के कारण खंडित भारत की आत्मा के एकत्व का परिचय कराकर, समस्त राष्ट्र को 'भारतीयता' के एक सूत्र मे निबद्ध किया जाए।

सन् 1918 मे इदौर में सपन्न हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन मे महात्मा गाधीजी अध्यक्ष चुने गए। इस अधिवेशन मे दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का प्रारभ कर देने का प्रस्ताव पास किया गया और तदनुसार 1918 में ही 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार कार्यालय' की स्थापना की गई। यही कार्यालय आगे चलकर 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' बना और यह अपने विस्तृत तथा प्रशसनीय कार्य के कारण राष्ट्रीय महत्व की सस्था बन गई है। बापूजी ने प्रथम हिन्दी प्रचारक के रूप मे अपने पुत्र श्रीदेवदास गाधी को और उनके साथ स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को मद्रास भेजा। सन् 1918 में सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर की अध्यक्षता मे स्व० एनीबेसेंट ने मद्रास नगर के जार्ज टाउन नामक मुहल्ले के गोखले हाल मे हिन्दी वर्गो का उद्घाटन किया। तदुपरात उत्तर से कई सज्जन हिन्दी प्रचार के लिए दक्षिण मे भेजे गए। दक्षिण के कुछ उत्साही नवयुवको को उत्तर भेजा गया जिन्होने इलाहाबाद अथवा काशी मे रहकर हिन्दी सीखी और फिर दक्षिण मे हिन्दी प्रचार के कार्य को सभाला। इनमे सर्वश्री जध्याल शिवन्न शास्त्री, पीसपाटि वेंकटसुब्बाराव, मुडुबि नरसिंहाचार्य, मल्लादि वेंकट सीतारामाजनेयुलु, दम्मालपाटि रामकृष्णशास्त्री, मेडिचर्ल वेंकटेश्वरराव, राजामिट्टु दोड्डादि नरसिंहाराव आदि आंध्रो के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी प्रचार के प्रारंभिक समय मे इन महानुभावो ने सराहनीय कार्य किया है।

आन्ध्र मे हिन्दी-प्रचार

आन्ध्र की जनता ने प्रारभ से ही गाधीजी के स्वराज्य आदोलन का हृदय से स्वागत किया। हिन्दी-प्रचार तो गाधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का एक अग था। अत आन्ध्र के राजनैतिक नताओ ने भी हिन्दी प्रचार का समर्थन किया और इस कार्य मे सक्रिय सहयोग दिया। आन्ध्र म हिन्दी-प्रचार के कार्य को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए आन्ध्र मे सभा का शाखा-कार्यालय 1920 मे खोला गया।

सन् 1921-22 मे राजमहेन्द्रवरम म हिन्दी-प्रचारक विद्यालय खोला गया। प० हृषिकेश शर्मा उस विद्यालय के अध्यापक नियुक्त किए गए। इस विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त करने वालो मे सर्वश्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्य, एस० वी० शिवराम शर्मा, भट्टराम वेंकट सुब्बय, उन्नव वेंकटप्पय्य, जध्याल राममूर्ति, इरगवरपु

रामसोमयाजुलु आदि प्रमुख हैं। ये सभी सज्जन विगत 40-50 वर्षों से हिन्दी-प्रचार कार्य में सक्रिय भाग ले रहे हैं।

सन् 1923 के दिसंबर महीने में, आन्ध्र देश के काकिनाडा नगर में अखिल भारतीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। आन्ध्र के सैंकड़ों हिन्दी-प्रचारकों ने इस अधिवेशन में स्वयंसेवकों के रूप में काम किया। स्वागत समिति के अध्यक्ष स्व० देश-भक्त कोंडा वेंकटप्पय्य ने हिन्दी में ही अध्यक्षीय भाषण देकर दर्शकों को मुग्ध कर दिया। इस अधिवेशन के कारण आन्ध्र प्रान्त के हिन्दी-प्रचार कार्य को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

साहित्यिक आदान-प्रदान द्वारा उत्तर और दक्षिण के मध्य सौजन्यपूर्ण सांस्कृतिक संपर्क स्थापित करने के लिए दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की ओर से एक हिन्दी-प्रेमी यात्रीदल सन् 1934 में उत्तर भारत की यात्रा करने निकल पड़ा। इस यात्रीदल का नेतृत्व श्री मोट्टूरि सत्यनारायण जी ने किया।

सन् 1936 के बाद आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार के इतिहास में नया अध्याय शुरू होता है। आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ का कार्यालय विजयवाड़ा में खोला गया। इसी वर्ष से मद्रास सरकार की परीक्षा एस० एस० एल० सी०(सेकण्डरी स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट) (मैट्रिक के समकक्ष) में भी हिन्दी को स्थान मिला।

स्व० डॉ० सी० आर० रेड्डी (जो आधुनिक तुलुगु आलोचना के जन्मदाता हैं) ने आन्ध्र विश्वविद्यालय में बी० काम तथा बी० काम आनर्स की परीक्षाओं के लिए हिन्दी को अनिवार्य विषय बना दिया। यह भारतीय विश्वविद्यालयों के इतिहास में एक अविस्मरणीय घटना है।

सन् 1938 में श्री सी० राजगोपालाचार्य मद्रास प्रदेश (जिसमें आन्ध्र प्रदेश भी शामिल था) के मुख्यमंत्री बने तो मिडिल स्कूल की कक्षाओं में हिन्दी की शिक्षा का अनिवार्य बना दिया। तीन वर्ष के बाद जब कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया तो स्कूलों में हिन्दी शिक्षा के कार्य को थोड़ा धक्का लगा, किन्तु सार्वजनिक रूप से जनता हिन्दी सीखती ही रही।

सन् 1942 के आंदोलन के समय जेलों में हिन्दी-प्रचार का जोर रहा। आन्ध्र के कई नेताओं ने इस समय हिन्दी सीखी थी। स्व० अल्लूरि सत्यनारायणराजू ने (जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री तथा आन्ध्र प्रदेश के मन्त्रिमंडल के सदस्य थे) जेल में रहते समय हिन्दी सीखी और महापंडित राहुल सांकृत्यायन के 'वोल्गा से गंगा तक' का तलुगु में अनुवाद किया।

हैदराबाद रियासत में हिन्दी प्रचार के कार्य के लिए सन् 1935 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के तत्त्वावधान में 'हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना हुई। निजाम के शासनकाल में इस संस्था के साथ कंधा जोड़कर आर्य समाज ने भी हिन्दी प्रचार के कार्य में सराहनीय योगदान दिया है। सन् 1952 में आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ ने हैदराबाद में एक शाखा खोली थी।

संप्रति हिन्दी प्रचार सभाएं विभिन्न परीक्षाओं का संचालन कर हिन्दी प्रचार का कार्य कर रही हैं। सरकारी तौर पर मिडिल तथा हाईस्कूल की कक्षाओं में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। जूनियर (इंटर) तथा डिग्री कालेजों में हिन्दी की शिक्षा ऐच्छिक विषय के रूप में हो रही है। तीनों विश्वविद्यालयों—आन्ध्र, उस्मानिया एवं श्री

वेंकटेश्वर—में हिन्दी में एम० ए० तथा पी-एच० डी० तक के शिक्षण की व्यवस्था है और प्रतिवर्ष कई उत्साही युवक-युवतियाँ एम० ए० तथा पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त कर रहे हैं।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य का अध्ययन कर, हिन्दी का काम चलाऊ ही नहीं साहित्यिक ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त कई आन्ध्रों ने हिन्दी में मौलिक रचनाएं की हैं और कर रहे हैं। हिन्दी में लिखने वाले आन्ध्रों की संख्या पर्याप्त है। इन लेखकों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा रहा है।

1. हिन्दी में मौलिक रचनाएं करनेवाले, 2. तेलुगु रचनाओं का हिन्दी अनुवाद करनेवाले और 3. हिन्दी से तेलुगु में अनुवाद करनेवाले।

प्रथम वर्ग के लेखकों में भी कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि साहित्यिक विधाओं के आधार पर पुनः विभाजन हो सकता है।

किन्तु यह विभाजन केवल मोटे तौर पर किया गया है, क्योंकि मौलिक रचनाएं करनेवालों ने अनुवाद भी किए हैं और अनुवाद करनेवालों ने मौलिक रचनाएं।

काव्य

हिन्दी में कविता करनेवाले आन्ध्रों में सर्वश्री आलूरि बैरागी, डॉ० चावलि सूर्यनारायण मूर्ति, सरगु कृष्णमूर्ति, वारणासि राममूर्ति रेणु, बी० बी० सुब्बाराव 'हरिकिशोर', डॉ० पी० आदेश्वर राव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। खडकाव्य, लंबी कविताओं की अपेक्षा छोटी मुक्तक कविताएं और गीतों की संख्या ही अधिक है।

अब यहां आन्ध्रों द्वारा हिन्दी में लिखी गई काव्यकृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाएगा। प्रथमतः खडकाव्यों की चर्चा हो जाए।

श्री बी० बी० सुब्बराव जी का लिखा 'मृणालिनी' नामक खडकाव्य सन् 1959 में प्रकाशित हुआ था। यह पौराणिक धरातल पर रचा गया काल्पनिक प्रणय-काव्य है। इसमें द्विज कन्या मृणालिनी तथा क्षत्रिय युवक ऊप्मबाहु के प्रेम तथा परिणाम-स्वरूप विवाह के फलस्वरूप, वेदपुरुष द्वारा पंचमवर्ण की सृष्टि की कल्पना की गई है। वेद पुरुष का आशीर्वाद है—

"हरिजन' का देकर पावन नाम तुम्हें।
सदा रहे अमर तव कुल-नाम महा।"

सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह—वह भी पवित्र प्रणय के कारण—के फलस्वरूप पंचमवर्ण—हरिजन—के उद्भव की कल्पना कुछ ऊटपटांग लगती है। किन्तु कवि ने स्थान-स्थान पर पवित्र प्रणय की परिभाषा एवं उसकी जो रूपकल्पना की है, वह भव्य बन पड़ा है। कवि ने काव्य-नायिका मृणालिनी के शब्दों में पवित्र प्रेम की निम्न प्रकार से व्याख्या प्रस्तुत की है—

'जिसके अन्तराल में घनीभूत हुआ है
प्रेम भावी-जीवन का भय उसको कहां,
क्या डर होता है ? प्रेम बलिदान का महा
आदर्श-भवन अक्षर-सा निर्माण करे।
चातुर्वर्ण से पृथक् हो, पंचम वर्ण की
सृष्टि करें, पीड़ित प्रणयी जन उसमें

सुखपूर्ण जीवन बितावें, पुलकित हो
पुरखों की भव्यलीला-कल्पना पर अहा।"

'मृणालिनी' को प्रतीकात्मक काव्य भी माना जा सकता है। 'उष्णदाहु' सूर्य तथा 'मृणालिनी' कमल के प्रतीकों के रूप में चित्रित किए गए हैं। सन् 1565 के प्रसिद्ध 'तालीकोट' युद्ध को जिसमें विजयनगर साम्राज्य का पतन हो गया था, केन्द्र-बिन्दु बनाकर, कवि ने अलिय-रामराजु के चरित्र का भव्य चित्रण किया है। इस काव्य में मजुवाणी, जो विजयनगर की तमोलिन है, एकदम काल्पनिक है। अलिय रामराजु को धोखे से हरा देनेवाले उलमुल्क की हत्या कराने के लिए कवि ने इस पात्र की कल्पना की है।

'हम्पी के खडहर' म कवि ने विजयनगर साम्राज्य के अनुपम वैभव विलास को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है।

"बीती निशा, उग चला गगन पर अशुमाली।
गुल गुलाबी-गध से मुख पर व्यापी लाली॥
सात सुदृढ कोटो स वेष्टित है हेमपुरी।
इसके सम्मुख राई-रत्ती है अमर पुरी।
सुख-सुविधा सम्पद का निलय है यह पुरी।
अत नाम इसका यह है सार्थक हेमपुरी॥
लता-निकुज, हरित गुल्म तरु बीच विजयनगरी।
देव भूमि-सी भुवि पर बिछी जो है शुभकरी॥
× × ×
कर्म भिन्न मनुज-मनुज में भेद नही सृजते।
ऐसा विचार मन मे सब मिल-जुल रहते॥
सच है, मनुज तरु नही वर्ण पर्ण के उगते।
वह निर्जीव नही, जड-जग मे जड हो रहते॥
धर्म भिन्न कर्मो की जनता मिलजुल रहती।
यह है साम्राज्य-नीति अलिय राम की कहती॥"

उपर्युक्त दो काव्यो के अतिरिक्त श्री सुब्बारावजी के 'रेशमी कुर्ता' तथा 'भारत श्री' नामक काव्य-सग्रह भी उल्लेखनीय है। इन दोनो काव्यों में पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण मे पागल बनी भारत की नवीन सभ्यता पर करारा व्यग्य किया गया है और भारत की प्राचीन सभ्यता व सस्कृति के गुण गाए गए हैं।

इन दो खडकाव्यो के अतिरिक्त श्री हरिकिशोरजी की मुक्तक कविताओं के दो सकलन 'प्रणय' (1955) तथा 'मेरी काव्य साधना' (1973) नाम से प्रकाशित है। इनमे विभिन्न विषयो पर समय-समय पर रची गई कविताओं का सकलन है। कुछ तेलुगु कविताओं के श्री सुब्बारावजी के हिन्दी अनुवादो को भी सम्मिलित किया गया है।

आन्ध्र के लोक-साहित्य मे उर्मिला उपेक्षिता नारी नही है। उसके चरित्र का मार्मिक चित्रण करनेवाले कई लोकगीत-कथात्मक प्रचलित है। इन लोकगीतो से कथावस्तु को ग्रहण कर, डॉ० चावलि सूर्यनारायण मूर्ति ने 'सती उर्मिला' (1961) नामक खडकाव्य की रचना की है। उर्मिला का चरित्र-चित्रण आदर्श भारतीय नारी

के अनुरूप ही हुआ है। उर्मिला की दयनीय स्थिति का चित्रण करनेवाली निम्न पंक्तियां बड़ी मार्मिक हैं।

'पड़ी रही तरु-विच्छिन्न लता।
फिर भी अघट रही कोमलता॥
सुमन-मुकुल है तरु से टूटा।
सूखा तो भी सौरभ फूटा॥"

शृंगार रसात्मक यह खडकाव्य करुण रस में भी आप्लावित है।

सफल नाटककार होने के कारण मूर्तिजी के इस काव्य में संवाद-योजना नाटकीय हो प्रभावशाली बन पड़ी है। भाषा संस्कृतमिश्रित होने पर भी सरल एवं प्रवाहयुक्त है। कवि ने काव्य को चार (?) तरंगों में विभक्त किया है। आदि से अन्त तक एक ही छन्द का निर्वाह किया गया है।

उर्मिला की दयनीय दशा देखकर लक्ष्मण की दशा का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। एक छन्द लीजिए—

"देख दशा लोचन भर आए।
आलिंगन को भुज फैलाए॥
पर रोका लक्ष्मण ने निज को।
धैर्य बंधाया आतुर मन को॥"

आन्ध्र देश के इतिहास में 'पलनाटि युद्धमु' (पलनाडु का युद्ध) कुरुक्षेत्र-संग्राम का स्मरण दिलानेवाला है तो ब्रह्मनायक के पुत्र बालचन्द्र का चरित्र वीर अभिमन्यु के चरित्र का। बालचन्द्र को कथानायक बनाकर श्री कनकमेडल वेंकटेश्वर राव जी ने 'महावीर बालचन्द्र' (1954) नामक प्रबन्धात्मक लंबी कविता लिखी है। इतिहास सम्मत कथानक में कोई परिवर्तन किए बिना ही श्री वेंकटेश्वर रावजी ने बालचन्द्र के चरित्र को उजागर किया है।

अनावश्यक रक्तपात को रोकने के लिए संधि-कार्य के लिए तत्पर पिता को ललकार कर बालचन्द्र इस प्रकार कहता है—

"जिनके कारण भोगना पड़ा हमें था यह प्रवास।
नष्ट-भ्रष्ट हुआ था हमारा सारा वैभव विलास॥
नहीं छोड़ूंगा उन्हें किए बिना अब सर्वनाश।
नहीं हो सकती है अब संधि छोड़ दीजिए आप॥"

वीररसपूर्ण यह काव्य दु:खांत है। बालचन्द्र की पत्नी वीरनारी माचाला का चरित्रचित्रण भी प्रभावशाली है। वह वीरनारी पति को युद्धक्षेत्र में भेजकर, स्वयं छद्मवेश धारण कर, रणरंग में जाती है और पति के साथ वीरस्वर्ग को प्राप्त करती है।

इस काव्य की भाषा सरल एवं प्रवाहयुक्त है। संस्कृत शब्दों के साथ कवि ने कहीं-कहीं अरबी फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है।

श्री रापति सूर्यनारायण जी ने 'योजनगन्धा' तथा 'तारकेश्वर महिमा' नाम से दो प्रबन्धकाव्यों की रचना की थी। इनमें 'योजनगन्धा' 1961 में 'दक्षिण भारत' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। यह सफल प्रबंध काव्य द्वादश सर्गों में विभक्त है। कथ वस्तु महाभारत के शांतनु तथा योजनगन्धा (सत्यवती) के प्रणय वृत्तान्त पर आधारित

है। इस काव्य को हिन्दी के प्रबध काव्यो मे समुन्नत स्थान मिलना चाहिए। एक सपूर्ण सर्ग को शार्दूलविक्रीडित छन्द मे लिख सकने की क्षमता बहुत कम कवियो मे पाई जाती है। यह क्षमता श्री सूर्यनारायणजी मे है। कवि के काव्य-कौशल के उदाहरणस्वरूप दो छन्द प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

"कामिनी मे काम है या कामुको मे काम
काम करता काम, बनता रागयुत निष्काम।
कामना विरहित मुनीश्वर कामिनी अनुरक्त
बह रहा उद्विग्न हो या ऊर्ध्व गति मुनि रक्त।

× × ×

अन्त म तो पूर्ण प्रकटा मौनि मन का स्वाद
रुक गई गति वायु की, या स्यगित हृदय-निनाद
प्रकृति थी निस्तब्ध देखे तीव्र प्राणायाम
लय रहित मुनि-योग साधन-लक्ष्य था भी वाम॥"

'तारकेश्वर महिमा' श्री सूर्यनारायण जी का अधूरा खडकाव्य है जिसमे ग्वाल मुकुन्द की भक्ति तथा तारकेश्वर की महिमा का वर्णन है। यह अधूरा होते हुए भी कवि-कौशल का दृष्टान्त उपस्थित करनेवाला है।

हिन्दी के सफल लेखक डा० ऐ० पाडुरगाराव जी का 'कामाक्षी विलास' बहु प्रशसित रचना है।

'देवी की स्मर सेना उमडी। कामनयन वीक्षण प्रसरण मे।
फिर शकर की, फिर गौरी की। कोटिकोटि सेनाए रण मे॥
कूद पडी और खूब लड पडी। रुद्र स्मरो से, स्मर रुद्रो से।
भीषण युद्ध हुआ दोनो म। शूलायुध कुसुमायुध भुलसे॥
शूल विचक्षण, सुमन विलक्षण। एक दूसरे मे घुसमिलकर।
लडभिडकर, उठ गिरकर, डटकर। लडे उभयदल हार जीतकर।
और अन्त मे जीत गए स्मर। शिव सेना को नष्ट भ्रष्ट कर।
भोला शकर एक अकेला। बचा अत मे बेचारा हर।
कमलालय बन गया रुद्र का। घर श्मशान भी पद्मशरो से।
दिव्य देह बन गया शमु का। घोर शरीर अशोक शरो से॥
दिव्याबर बन गया दिगबर। चर्मवसन सहकार शरो से।
अहिभूषण सुभहार बन गए। मल्ली के उल्लसित शरो से॥
कालानल बन गया सुधारस। नीलोत्पल के मृदुल शरो से।
इस प्रकार शिव को समलकृत। कर स्मर किंकर पाच शरो से॥

सफल आलोचक डा० शकर राजु नायडु (प्रो० एव अध्यक्ष हिन्दी विभाग मद्रास विश्वविद्यालय) सफल कवि भी है। आपके द्वारा रचे गए गीतो का सकलन 'गीतोपहार' नाम स 1940 म प्रकाशित हुआ है। इस सकलन मे 21 गीत हैं जो विविध राग रागिनियो के अनुकूल लिखे गए हैं। ये गीत गाधीजी की प्रशस्ति, राष्ट्रीय समस्याओ का चित्रण, साप्रदायिक एकता के लिए उद्बोध, समाज-सुधार का प्रबोध आदि से सम्बन्धित है।

राष्ट्रीय, सामाजिक एव प्रगतिवादी विचारधारा से युक्त यह सकलन डॉ०

शकरराजु नायडू को सफल कवि सिद्ध करनेवाला है। भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण एवं प्राजल है। खेद इसी बात का है कि डॉ० शकरराज नायडू ने दुबारा काव्य-वीणा को झंकृत करने का प्रयास नहीं किया है।

श्री वाराणसि राममूर्ति रेणु सफल कवि हैं। रेणुजी के गीतो का सकलन 'विहगगीत' सन् 1951 मे प्रकाशित हुआ है। इस सकलन मे कुल मिलाकर 13 गीत हैं। कुछ ऐतिहासिक गीत हैं तो कुछ राष्ट्रीय भावनाओ से परिपूर्ण।

'देसिंग का युद्ध-प्रयाण' में चेंजी नामक राज्य के वीर की कहानी है, तो 'कृष्णा-विलाप' म कृष्णानदी के द्वारा आन्ध्र के अतीत वैभव का गान किया गया है। 'विहग गीत' तथा 'जागृति' शीर्षक कविताओ मे भारत के प्राचीन वैभव का गुणगान कर कवि वर्तमान दयनीय दशा पर आठ-आठ आसू रोता है। संस्कृत-गर्भित होने पर भी भाषा प्राजल एव प्रवाहपूर्ण है। अलकारो का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है। प० हृषीकेश शर्मा जी के शब्दो म कह सकते हैं कि "सरल कोमल पदावली, कल्पना का कौशल और भीनी-भीनी भावना मे रेणुजी ने कविता को साज-सवारकर जीवन-स्पर्शी बना दिया है।"

अत्यन्त भावनाशील एव प्रतिभासम्पन्न कवि आलूरि वैरागी चौधरी की कविताओ का सकलन 'पलायन' नाम से सन् 1951 में प्रकाशित हुआ था। काव्य गुण एव रचना-सौष्ठव के कारण चौधरी जी की कविताओ का विशिष्ट स्थान है। 'पलायन' की कविताओ पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव लक्षित होता है। समाज के शापित पीड़ित तथा दलित वर्ग के प्रति कवि समवेदना व्यक्त करता है और उन्हे प्रतिरोध करने को प्रेरित करता है।

कवि के स्वर मे विद्रोह ही नही, प्रेम की भावना के दर्शन भी होते हैं। एक स्थान पर कवि लिखता है—

"हा, मैंने भी कभी किसी से प्यार किया था।
जड-जीवन की शुष्क शाख पर फूलो का शृगार किया था।
कभी किसी के नील नयन युग
प्रलय जलधि से छा लेते जग
मन की नैया करते डगमग
कभी किसी की चितवन भर से हरा-भरा ससार किया था।"

आन्ध्र के हिन्दी कवियो मे श्री चौधरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपकी भाषा भावो के अनुकूल ओज, माधुर्य, प्रसाद गुण से युक्त हो, पाठक को अत्यधिक प्रभावित करती है।

मानवतावाद के कवि समकालीन मानव की शोचनीय अवस्था का निम्न पक्तियों मे प्रभावशाली चित्र उपस्थित करते हैं।

"कहो, किधर, किसी की आज्ञा से जीवन-यान चलाया जाता ?
हाक-हाककर यह पशुओ का झुड कहा पहुचाया जाता ?
किसकी मर्जी ? कौन बेरहम हम को कहा खदेड रहा है ?
खूनी कोडे से पीठा का नगा चाम उधेड रहा है ?
मानवता है कहा अरे ! यह गूगे पशुओं का जमात है,
हा, सज-धजकर कही जा रही जिंदा लाशो की बरात है।"

'प्रणय' श्री वी० वी० सुब्बाराव 'हरिकिशोर' की मुक्तक कविताओं का सकलन है। यह सन् 1955 मे प्रकाशित है।

'प्रणय' की कविताए छायावादी काव्यधारा मे स्थान पाने योग्य है। यौवन प्रेम और सौंदर्य की भावनाओं को प्रकृति के माध्यम द्वारा प्रकट करने का कवि ने सफल प्रयास किया है। जैसे शीर्षक से स्पष्ट है कि इन कविताओं का प्रधान विषय प्रणय रहा है।

नारी और आसू के प्रति कवि के उद्‌गार उल्लेखनीय है। नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कवि कहता है कि—

"सुख म सोती, दुख में रोती
नारी जीवन यह है हाय।
नारी जीवन का मर्म आज
कर लिया ग्रहण मैं ने हाय॥"

आसू का सबोधन करते हुए कवि कहता है—

'रे आसू! विरह ताप से
तेरी मति भ्रष्ट हुई क्यो?
दग्ध हृदय भीतर है तो
बाहर-बाहर बहना क्यो?"

प्रेयसी के सौंदर्य से मुग्ध बन कवि अपनी अभिलाषा को यो व्यक्त करता है—

"ओठो की मधु लाली को
तोता बन चोच लगाऊ।
उज्ज्वल मुख की रजनी मे
मलयानिल बन बह आऊ।"

'प्रणय' मे कवि की भाषा सरल और सुन्दर है, फिर भी कही कही अस्पष्ट बन गई है।

डा० सरगु कृष्णमूर्ति का मुक्तक काव्य सग्रह 'मधुस्वप्न' सन् 1957 मे प्रकाशित हुआ था। सकलित 35 कविताओं मे अधिकाश प्रेम तथा प्रकृति चित्रण से सबद्ध हैं। कुछ कविताओं म भगवान की स्तुति है तो
वर्णाश्रम धर्म की निन्दा है। 'पुनर्मिलन'
एव प्रेमकुमार का प्रणय वर्णित है। 'हपी के
पर लिखी गई है। स्वय कवि के शब्दा म 'मधुस्वप्न' मे एक मधुर स्वप्न का मादक स्मृति है, कभी देखे-पहचाने अनन्त हृदय के पास जाने की आतुर गति है, किसी असीम प्रिय के दर्शन-पद स्पर्शन का स्वप्न है। निरा सपना और कुछ नही, स्वप्न का नशा है। स्वप्न की मोहकता और प्रेम और आशा की पुकार से युक्त 'मधुस्वप्न' में कवि की कोमल भावनाए मृदु मधुर शब्दो मे अभिव्यक्त हुई हैं। कवि की भाषा तथा शैली पाठक को मुग्ध कर देती है। उदाहरण के लिए कुछ पक्तिया पेश है—

"फूलो मे किसकी सुन्दरता आनाक मुग्ध हो जाता हू?
तारो मे किसका सदेश पढ आतुर कातर होता हू?
सधारण छवि म यह किसका हास्य लेख लिख जाता हू?
निबन्ध निशा मे यह किसकी आहट सुन जग जाता हू?"

दस वर्ष के पश्चात् अर्थात् सन् 1967 मे श्री कृष्णमूर्ति जी का दूसरा काव्य-

कलन 'ज्वाला के तन' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक मे कवि के वैयक्तिक भावप्रवण गीत हैं तो शोषितो तथा दलितो की मूकवेदना को वाणी देने का प्रयत्न भी दृष्टिगोचर होता है। 'ज्वालाकेतन' की कुछ पंक्तियो का अवलोकन कीजिए—

"जब दीन कुटी का एकाकी
दियरा बेबस हो बुझ जाता
जब जब आशा की आखो मे
तूफानी सागर लहराता
मैं ज्वालाकेतन कांति किरण
बरसा जाता हू विश्व सदन।
जब हृदय तडपाकर धरती का
कर हाहाकार नयन भरता
आकुल व्याकुल हो वृद्ध गगन
जीवन से हार रुदन करता
मैं ज्वालाकेतन आशा घन
बरसा जाता हू अरुणारुण।।"

श्री कृष्णमूर्ति हिन्दी के सफल कवि हैं। आपकी कविता प्राजल तथा प्रवाहयुक्त है।

'अन्तराल' डा० पी० आदेश्वर राव की मुक्तक कविताओं का संकलन है। 56 कविताओं वाला यह संकलन सन् 1969 मे प्रकाशित हुआ है। अधिकाश कविताओं मे विरह अथवा सयोग शृंगार का चित्रण किया गया है। 'अप्सरी' तथा 'अन्तिम ...न' करुणात्मक कविताए हैं। लाल बहादुर शास्त्री, गोस्वामी तुलसीदास तथा महाप्राण ...राला के प्रति श्रद्धाजलिया तीन कविताओं मे समर्पित की गई हैं। 'उद्बोधन' ...विता नवीन के 'विप्लवगायन' का स्मरण दिलाती है। इसमे कवि वर्तमान परि-...स्थितियो से व्याकुल हो, भगवान शकर से सर्वनाश कर देने की अभ्यर्थना करता है।

श्री आदेश्वर राव की शैली अत्यन्त सरस एव मनोहर है। आपके रचना-...विधान पर छायावादी कवियो का प्रभाव स्पष्ट है। प्रकृति के मानवीकरण में ...देश्वर राव जी को पर्याप्त सफलता मिली है। हिन्दी काव्य शैली तथा छन्द विधान ...र डॉ० आदेश्वर राव जी का पूर्ण अधिकार है। 'अन्तराल' की कुछ पंक्तिया ...स्तुत हैं—

"स्वप्नों मे कोई आती है
वसुन्धरा के रूप-रग हर
अन्धकार जब छा जाता है,
जब रजनी मे बाहुवलय मे
विपुल विश्व भी खो जाता है,
तब छिपकर मेरी पलकों मे, कोई रूपसि घुस आती है।
ज्योत्स्ना से जब महासिन्धु मे
मेघनिर्मिमगल विचरण करते,
उनमे डरकर नक्षत्र-मीन जब
सिन्धु गर्भ मे छिप रह जाते,
क्षीर-पयोनिधि की लहरो से, तब कोई ऊर्वशि आती है।"

तेलुगु की लोकप्रिय लोकगीत शैली 'बुर्रकथा' में हिन्दी भाषा को ढालने का श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति जी ने सफल प्रयास किया है। इसी प्रयास का परिणाम स्वरूप है 'नागार्जुन सागर', जिसे केन्द्र सरकार का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। निम्न लिखित कुछ पंक्तियां देखिए—

"सुनो सुनो ऐ हमवतनो, तुम नागार्जुन सागर की कथा।
सुनो सुनो ऐ प्यारे साथी जंगल में मंगल की कथा॥
आन्ध्र प्रान्त के मुख्य जिलों में नलगोंडा है जिला बड़ा
नलगोंडा के गावों में से एलेश्वर का नाम बड़ा।
जिसमें होकर कृष्णा माई इठलाती बल खाती चली
जंगल जंगल परबत परबत से होकर वह बहती चली॥ सुनो सुनो॥
कृष्णा नदी के एक किनारे गुण्टूर जिला है एक बसा
प्राचीन चरित है उसका बड़ा नागार्जुन परवत वहीं बसा।
कृष्णा नदी की लहरावलियां उस परवत के पद धोती
नागार्जुन की यशचन्द्रिका दिगंत तक फैल चुकी।"

तेलुगु भाषियों में खड़ी बोली में प्रबन्ध काव्य लिखने का श्रेय श्री पिंगा लाजपति को प्राप्त हुआ हैं। आपने भद्राचलम के प्रसिद्ध रामभक्त कचेर्ल गोपन्न अथवा रामदास की जीवनी के आधार पर सन् 1929 में ब्रजभाषा में काव्य-रचना की थी। तदुपरान्त मित्रों के सुझाव पर उसी को खड़ी-बोली में सन् 1934 में प्रकाशित किया था।

'भक्त रामदास' भक्तिरस-प्रधान प्रबन्धकाव्य है। इसमें खड़ीबोली की प्रकृति के अनुकूल मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया गया है।

आन्ध्र देश में प्रथम खेवे के हिन्दी प्रचारकों में श्री कर्ण वीर नागेश्वर रावजी ने 'दलितों की विनती' शीर्षक से, दोहा छन्द में, सतसई की रचना की है। इस सतसई के दोहों में विषय-वैविध्य है। समकालीन सामाजिक परिस्थितियों पर कटुव्यंग्य किया गया है। उदाहरण के लिए दो दोहे प्रस्तुत किए जाते हैं—

"बक ध्यान ही जीवन विधि है, धोखा ही सर्वत्र।
सबके सब तो दास्य शृंखला बद्ध बने हैं अत्र।
मनुज-भावना खाक में मिली लोग हुए परतन्त्र।
निज भाषा का स्थान पा गए अंग्रेजी यह तन्त्र।"

आन्ध्र के हिन्दी कवियों में सतसई का सफलतापूर्वक निर्वाह करनेवाले स्व० वीरनागेश्वर रावजी ही हैं।

आन्ध्र के प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यासकार तथा कहानीकार श्री आरिगपूडि रमेश चौधरी ने 'वनजासन' के नाम से 'दक्षिण भारत' में कविताएं प्रकाशित की थी।

आन्ध्र के हिन्दी कवियों की रचनाओं में 'स्वर्णपथ' (डॉ० वै० पुल्लाराव), 'वर्द्धिनी' (श्री प्रकाश राव), 'सुमन मन' (डॉ० अन्नपुरेड्डी), 'श्री चरणतीर्थ जी' (श्री पोतूरि रामकृष्णय्या) 'यह और वह' (श्री के० नामिरेड्डी) आदि उल्लेखनीय हैं।

उपन्यास

हिन्दी-भाषी क्षेत्र में आन्ध्रों ने उपन्यास के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना

लिया है। तेलुगु-भाषी हिन्दी उपन्यासकारों में सर्वश्री आरिगपूडि रमेश चौधरी, बालशौरि रेड्डी, दडमूडि वेंकट कृष्णाराव, बी० वी० सुब्बराव 'हरिकिशोर' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें श्री आरिगपूडि तथा श्री रेड्डी जी की रचनाएं बहुप्रशंसित तथा केन्द्र तथा राज्य सरकारों की ओर से पुरस्कृत हैं। इन लेखकों के कुछ उपन्यास अन्य भाषाओं में भी अनूदित हुए हैं।

आन्ध्र के हिन्दी उपन्यासकारों की कृतियों को कथावस्तु के आधार पर तीन वर्गों में—पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक—विभाजित किया जा सकता है।

श्री बालशौरि रेड्डी जी-कृत 'शबरी' एकमात्र पौराणिक उपन्यास है जिसमें रामायण के प्रसिद्ध पात्र शबरी के आदर्श जीवन को प्रस्तुत करते हुए, लेखक ने नारी-जीवन के सेवा तथा त्यागपूर्ण पक्ष को उजागर करने का सफल प्रयास किया है। रामायण के आधार पर उपन्यास की सृष्टि करने पर भी लेखक ने समकालीन समस्याओं को—श्रम का महत्व, वर्णाश्रम व्यवस्था की निरर्थकता आदि—प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। रेड्डी जी की भाषा सरल, प्रवाहमयी तथा विषयानुकूल है।

'प्रकाश और परछाई' तथा 'लकुमा' श्री रेड्डी जी के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'प्रकाश और परछाई' में विजयनगर साम्राज्य के सुप्रसिद्ध शासक श्रीकृष्ण देवराय के मंत्री तिम्मरुसु के चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। सात भागों में विभक्त इस उपन्यास में तिम्मरुसु के बाल्यकाल से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक का चित्रण किया गया है और यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि प्रकाश (श्रीकृष्ण देवराय) को सच्चे अर्थों में प्रकाशित करनेवाली शक्ति अन्य में ही है। महामंत्री तिम्मरुसु की ही कृपा तथा श्रम से श्रीकृष्णदेव राय विजयनगर का सम्राट बन सकता है। किन्तु अंत में षड्यंत्र का शिकारी बन श्रीकृष्णदेवराय तिम्मरुसु को बन्दी बनाता है और उसकी दयनीय मृत्यु का कारण बनता है। इस प्रकार से एक महामंत्री के जीवन के उज्ज्वल पक्ष तथा कारुणिक अंत का चित्रण करने से भी उपन्यास का नामकरण सार्थक बन पड़ा है।

'लकुमा' रेड्डी जी का अन्य ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें साम्राज्य के लिए आत्मघात कर लेनेवाली देवदासी लकुमा का चरित्र प्रस्तुत किया गया है। लकुमा कोण्डवीडु के राजा कुमारगिरि की प्रेयसी है। राजा को प्रजा की कटु आलोचना से मुक्त कर, राज्य को सुरक्षित तथा अन्तःकलहों से मुक्त बनाने के लिए लकुमा प्राण-त्याग कर देती है।

उपर्युक्त दोनों उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं। इन उपन्यासों के पात्र तथा घटनाएं ऐतिहासिक हैं। लेखक ने अपने रचना-चातुर्य से उन्हें बड़े प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। आन्ध्र के इतिहास के उज्ज्वलतम पृष्ठों को नाटकीय तथा रोचक ढंग से प्रस्तुत करने में लेखक को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

शातवाहन युग की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण करनेवाला 'धन्यभिक्षु' श्री आरिगपूडि का ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास का नायक अग्निवर्मा काल्पनिक पात्र है। कथोपकथनों द्वारा चरित्र चित्रण करने की श्री आरिगपूडि की कला इस उपन्यास में भी अभिव्यक्त हुई है। इस नाटकीयता के कारण भी आरिगपूडि के उपन्यास अपेक्षाकृत रोचक बन जाते हैं।

'चक्रवर्ती शालिवाहन' तथा 'स्तवनीय शासक कृष्णदेवराय' श्री दडमूडि वेंकट कृष्णाराव के लघु ऐतिहासिक उपन्यास हैं। धान्यकटक के राजा शालिवाहन आन्ध्र के थे

है। हा इतना कहा जा सकता है कि आन्ध्र के हिन्दी लेखकों ने तेलुगु की कहानियों के हिन्दी अनुवाद-कार्य को ही प्रधानता दी है, मौलिक कहानी सृजन की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया है।

नाटक :

काव्य और उपन्यास के समान नाटक के क्षेत्र में भी आंध्र के हिन्दी लेखकों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

आन्ध्र के लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी नाटककारों में सर्वश्री नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि, डा० चावलि सूर्यनारायण, आरिगपूडि, चलसानि सुब्बाराव, चोडवरपु रामशेषय्या के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक नाटकों की रचना की है।

स्व० नादेल्ल पुरुषोत्तम कविजी के बारे में पिछले पृष्ठों में चर्चा हो चुकी है प० पुरुषोत्तम जी ने सन् 1884 से 86 के मध्य हिन्दी में 32 नाटकों की रचना की थी इनमें 'रामदास चरित्र' तथा 'पेशवा नारायण राव वध' को छोड़कर शेष पौराणिक ह

पुरुषोत्तम कवि के अतिरिक्त उस समय के अन्य नाटककारों की चर्चा यह इसलिए नहीं की जा रही है कि उनकी रचनाओं के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इन अज्ञात कृतियों का पता लग जाए तो उस समय में प्रचलित हिन्दी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा, सार्वदेशिक भाषा के रूप में हिन्दी के विकास-क्रम को जानने में सुविधा होगी।

डॉ० चावलि सूर्यनारायण मूर्ति जी के पौराणिक नाटकों में 'महानाश की ओर तथा 'सत्यमेवजयते' उल्लेखनीय हैं।

'महानाश की ओर' तीन अंकों का नाटक है। इसमें अज्ञातवास के बाद तथा कुरुक्षेत्र-संग्राम के पूर्व की कथा का चित्रण हुआ है। नाटक का नाम अत्यन्त सार्थक है। दुखान्त न होते हुए भी यह नाटक एक प्रकार से दुखान्त ही है। महाभारत के उद्योग पर्व के आधार पर रचा गया यह नाटक डॉ० मूर्ति के नाटक रचना-कौशल का ज्वलंत उदाहरण है। पौराणिक कथावस्तु के अनुरूप कथोपकथन सजीव बन पड़े हैं। 'सत्यमेवजयते' हरिश्चन्द्रोपाख्यान पर आधारित तीन अंकों का सुखान्त नाटक है। मूलकथा तथा चरित्र चित्रण में थोड़ा-बहुत नाटकोचित परिवर्तन किया गया है। फिर भी मूलकथा ज्यों की त्यों है। उपर्युक्त दोनों रचनाएं यह सिद्ध करती हैं कि डा० मूर्ति जी पौराणिक कथावस्तु को नाटक का रूप देने में सिद्धहस्त हैं।

'समझौता' मूर्ति जी का सामाजिक नाटक है। इस नाटक में प्रेम के त्रिकोण का सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है। मानवता की बलिवेदी पर प्रणय का बलिदान करने पर ही मानव-जीवन सुखी बन सकता है, यही नाटककार का संदेश है। साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति को परिस्थितियों के अनुकूल जीवन में समझौता कर लेना चाहिए। आदर्श एवं त्यागमय जीवन ही मानवता का आदर्श होना चाहिए।

डा० मूर्ति नाटक रचना में कुशल हैं। संक्षिप्त कथोपकथन, प्रभावपूर्ण शैली तथा गीतों से युक्त ये नाटक अभिनेय है और कई बार सफलता के साथ अभिनीत भी हो चुके हैं।

श्री आरिगपूडि रमेश चौधरी ने 'कोई न पराया' शीर्षक सामाजिक नाटक की

रचना की है। प्राचीन जमींदारी प्रथा की कुप्रथा से शोषित गाँव आधुनिक शिक्षा तथा सभ्यता के प्रभाव से ऊँच-नीच के भेदभाव तथा महाजनी शोषण से मुक्त होकर परस्पर सहयोग की भावना से किस प्रकार नंदनवन बन सकता है, इसका लेखक ने नाटकीय चित्रण किया है। श्री चौधरी जी के कथोपकथन सजीव एवं सहज हैं तथा भाषा पर उनके अधिकार के नमूने हैं। किन्तु यह कहना ही पड़ेगा कि उपन्यास और एकांकी में उन्हें जितनी सफलता मिली है, नाटक रचना में उतनी नहीं।

डा० चलसानि सुब्बाराव जी ने 'रानी रुद्रम्मा' नाम से काकतीय वंश की महारानी रुद्रम्मा की विजय यात्राओं का प्रभावशाली नाटकीकरण किया है। इस नाटक में रानी की युद्धनीति तथा शासन विधान का सुन्दर चित्रण किया गया है। रानी रुद्रम्मा का चरित्र-चित्रण करने में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

श्री सुब्बाराव जी के इस नाटक की भाषा प्रवाहपूर्ण तथा मुहावरेदार है। कथोपकथन पात्रानुकूल तथा प्रभावशाली हैं। ऐतिहासिक उपन्यास पर शोध-कार्य करने के कारण डा० सुब्बाराव जी को इतिहास के ढाँचे पर, रक्तमांस का आवरण चढ़ाकर, ऐतिहासिक नाटक प्रस्तुत करने में पर्याप्त सफलता मिली है।

आन्ध्र के हिन्दी नाटककारों में श्री घोडवर्पु रामशेषय्या का ऐतिहासिक नाटककार के रूप में विशिष्ट स्थान है। इन्होंने 'बोब्बिलि' तथा 'रानी मल्लम्मा' नामक दो ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। ये दोनों नाटक दुःखान्त हैं। दोनों नाटकों में तीन-तीन अंक हैं। वैसे दोनों की कथावस्तु एकसमान है किन्तु दूसरे नाटक में रानी मल्लम्मा के चरित्र को प्रधान रूप से उजागर करने का प्रयास किया गया है। दोनों नाटकों की कथावस्तु आंध्रप्रदेश की प्रसिद्ध रियासत बोब्बिलि से संबद्ध है। यह कथा आन्ध्र के पौरुष तथा आन्ध्र की स्त्रियों के आत्मबलिदान का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करती है।

पात्रोचित कथोपकथन तथा मुहावरेदार भाषा-शैली के कारण ये दोनों नाटक लोकप्रिय हुए हैं। 'बोब्बिलि' शीर्षक नाटक तो रंगमंच पर कई बार सफलता के साथ अभिनीत हुआ है।

'मंत्री रामय्या' श्री रामशेषय्या का अन्य ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक के भी तीन अंक हैं। इस नाटक की कथावस्तु विजयनगर के सम्राट श्रीकृष्णदेवराय तथा गजपति के संघर्ष पर आधारित है। उन राजाओं के मंत्रियों के नाम क्रमशः तिम्मरुसु तथा रामय्या हैं। मंत्री तिम्मरुसु के बुद्धिकौशल से मंत्री रामय्या की हार होती है फिर भी तिम्मरुसु अपने शत्रु-मंत्री रामय्या की प्रशंसा करता है। वीररसपूर्ण पात्रों के चरित्रांकन में श्री रामशेषय्याजी को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। 'रानी कण्णकी' श्री रामशेषय्याजी का करुणरसपूर्ण नाटक है। यह तमिलदेश के इतिहास के एक उज्ज्वल अध्याय को प्रस्तुत करनेवाला है।

श्री रामशेषय्याजी ने 'गृहिणी' नामक सामाजिक नाटक की भी रचना की है। तीन अंकों के इस नाटक में नाटककार ने पाश्चात्य 'लिब्' आंदोलन से प्रभावित होकर, घर की अपेक्षा समाज-सेवा करने को जीवन का ध्येय माननेवाली लीला का चरित्र चित्रण कर, यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्त्री का क्षेत्र घर ही है और वहीं रहकर वह समाज की सेवा इतोधिक रूप से कर सकती है। यह नाटक भी कई बार सफलता के साथ अभिनीत हुआ है।

सम्प्रति आन्ध्र के हिन्दी नाटककारो मे श्री रामेनेपय्या प्रमुख हैं। ऐतिहासिक नाटक के क्षेत्र मे इन्होने प्रशसनीय कार्य किया है।

एकाकी

आन्ध्र के हिन्दी एकाकीकार तथा एकाकी सख्या मे कम हैं और अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण भी नही हैं। पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित एकाकियो को छोड दें तो प्रकाशित एकाकी-सकलनो मे 'सत्य की खोज' (श्री बालशौरि रेड्डी), 'नेपथ्य', 'बिजली और बारिश' (आरिगपूडि), 'भौंरो का पहाड' (डॉ० कर्ण राजशेषगिरिराव), 'राष्ट्र की वेदी पर' (डॉ० एन० एम० दक्षिणामूर्ति) आदि उल्लेखनीय हैं।

श्री बालशौरि रेड्डी के 'सत्य की खोज' नामक एकाकी सकलन मे 'घमड का नतीजा' एकाकी महाभारत के पौराणिक आख्यान पर आधारित है। इसमे द्रौपदी के लिए पुष्प लाने जानेवाले भीम का हनुमान की शक्ति के समक्ष नतमस्तक होने की कथा है। पौराणिक एकाकी मे उर्दू शब्दो का प्रयोग खटकता है। 'सत्य की खोज' सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) के सत्यान्वेषण पर आधारित है। यह एकाकी छोटा है, किन्तु नाटकीय लक्षणो से युक्त होकर प्रभावशाली बन पडा है।

'भक्त पुरन्दरदास' मे दक्षिण के महान् भक्त तथा गायक पुरन्दर के जीवन की एक घटना का चित्रण किया गया है। 'पन्ना का त्याग' में राजस्थान के इतिहास की उज्ज्वलतम मणि पन्ना धाई की स्वामि-भक्ति का परिचय दिया गया है। 'किस्मत' नामक एकाकी मे अलीबाबा की कथा है जो चोरो को धोखा देकर धनी बन जाता है।

'नेपथ्य' श्री आरिगपूडि के रगमचीय एकाकियों का सकलन है तो 'बिजली और बारिश' रेडियो-रूपको का सकलन है। 'नेपथ्य' का सफल एकाकी 'बन्दी' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमे बादशाह शाहजहा के आखिरी दिनो की असहाय स्थिति का वर्णन किया गया है। 'नेपथ्य' मे सकलित अन्य एकाकी सामाजिक हैं। उनके नाम क्रमश पडोसी, खडहर, बस एक साल और, एकाकी, खटा कोट है। 'पडोसी' पडोसियो के सम्बन्धो मे, और समाज मे आर्थिक स्तर को जो महत्त्व प्राप्त है और केवल अर्थ को ही प्रधानता देने के मनस्तत्त्व वाले व्यक्तियों पर व्यग्य करनेवाला एकाकी है। 'खडहर' मे जमीदारा का वारिस, बिना आर्थिक बल के ही, झूठी प्रतिष्ठा के पीछे पडकर किस प्रकार अपने जीवन का सर्वनाश करता है, इसका प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया गया है। 'बस एक साल और' म उपाधिया ग्रहण कर नौकरी की तलाश में घूमनेवाले युवको की मुसीबतो का चित्रण किया गया है।

'बिजली और बारिश' मे श्री आरिगपूडि के 14 एकाकियो का सकलन है जो विशेषकर रेडियो के लिए लिखे गए है, और समय-समय पर रेडियो से प्रसारित हुए है। रेडियो नाटक के लिए जो गुण अपेक्षित है, वे इन एकाकियो मे भरपूर पाए जाते हैं। इन मे विभिन्न परिस्थितियो मे विभिन्न प्रवृत्तियो के चरित्रो का मनोविश्लेपण करते हुए, पात्रपोषण करने का प्रयास किया गया है।

'राष्ट्र की वेदी पर' डॉ० एन० एम० दक्षिणामूर्तिजी के एकाकियो का सकलन है जिसमे एक ऐतिहासिक तथा छ सामाजिक एकाकी है। पहला एकाकी जिसके नाम पर इस सकलन का नाम रखा गया है, चाणक्य की प्रेरणा पर चद्रगुप्त का यूनानियो को देश से बाहर निकालकर, मौर्य साम्राज्य की स्थापना करने के प्रसंग का चित्रण किया

गया है। इस एकांकी मे चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त का चरित्र-चित्रण सफल बन पडा है। डॉ० मूर्ति जी की भाषा सुगठित तथा संस्कृतनिष्ठ है। शेष एकांकी सामाजिक विषयो पर आधारित हैं। इन एकांकियो की भाषा सरल तथा प्रवाहशील है। डॉ० मूर्ति के एकांकी रंगमंच के अनुकूल ही है।

'भौंरो का पहाड' डॉ० कर्ण राजशेषगिरिरावजी के चार ऐतिहासिक एकांकियो का संकलन है। 'भौंरो का पहाड' शीर्षक एकांकी मे सिंहाचलम के प्रसिद्ध मन्दिर तथा उसके पुजारी की कथा अंकित है। इसमे पुजारी की अभ्यर्थना करते हुए निवेदन करने पर, भगवान की कृपा से असंख्य भौंरे आकर आततायी आक्रमणकारियो को भगा देते हैं। इस एकांकी मे दैव-शक्ति और आत्मशक्ति के संघर्ष का चित्रण किया गया है। शेष तीन एकांकी श्रीकृष्ण देवराय के शासनकाल से संबद्ध हैं। 'तिम्मरुसु की आखें' शीर्षक एकांकी श्रीकृष्णदेवराय तिम्मरुसु को अपने पुत्र का वध करनेवाला समझकर उन्हे जेल मे डाल अधा बना देता है तो तिम्मरुसु अपने अतीत जीवन का स्मरण करके पश्चात्ताप करता है। इस छोटे-से एकांकी मे तिम्मरुसु के अन्तर्द्वन्द्व का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। 'सच्चा धर्म' शीर्षक एकांकी मे श्रीकृष्णदेवराय के आदेशानुसार विश्वनाथ नायक अपने विद्रोही पिता नागम नायक पर आक्रमण कर, उसे हराकर, सम्राट के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस एकांकी मे सच्ची राजभक्ति और राजसेवक के सच्चे धर्म का मार्मिक चित्रण किया गया है। डॉ० रावजी का रचना-विधान अत्यंत प्रभावशाली है। आपके एकांकी सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके है। डा० रावजी की भाषा पात्रानुकूल तथा गंभीर प्रवाह से युक्त है।

शोध-प्रबंध

निरन्तर हिन्दी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन-अध्यापन मे निमग्न रहने के कारण यह स्वाभाविक ही है कि आन्ध्र के हिन्दी विद्वानो का ध्यान हिन्दी साहित्य तथा अपनी मातृभाषा के साहित्य के शोधपूर्ण अध्ययन की ओर आकृष्ट हो जाए। आन्ध्र के हिन्दी प्राध्यापक तथा शोध-छात्रो ने जो कार्य किया है, उसके विश्लेषण से यही प्रमाणित होता है कि हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियो के मौलिक अध्ययन की अपेक्षा तुलनात्मक अध्ययन की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। यह एक प्रकार से स्वागत करने योग्य है। क्योकि तुलनात्मक अध्ययन भावात्मक एकता को सुदृढ बनाने का महत्वपूर्ण साधन है। हिन्दी-भाषियो की अपेक्षा अहिन्दी भाषी अध्येताओ को यह सुविधा सहज ही प्राप्त है कि वे अपनी मातृभाषा तथा उसके साहित्य के ज्ञान से संपन्न होकर, हिन्दी और मातृभाषा की साहित्यिक गतिविधियो का तुलनात्मक अध्ययन कर अखिल भारतीय स्तर पर साहित्य की सेवा द्वारा भावात्मक एकता के मार्ग को प्रशस्त कर पा रहे हैं।

आन्ध्र प्रदेश स्थित विश्वविद्यालयो के हिन्दी-विभागो के आन्ध्र के शोध-छात्रो को पूर्व उत्तर प्रदेशीय विश्वविद्यालयो ने प्रोत्साहित किया है और उन्हें शोध-कार्य करने का अवसर प्रदान किया है।

अब तक 50 से अधिक शोधार्थियो को डाक्टरेट की सम्माननीय उपाधि प्राप्त हो चुकी है और संप्रति 20-30 शोधार्थी शोध-कार्य मे लगे हुए हैं। नीचे उपाधि-प्राप्त शोधकर्ताओ की सूची दी जा रही है।

शोधकर्ता	विषय	विश्वविद्यालय	वर्ष
1 डॉ० ए० पाडुरगाराव,	'आध्र हिन्दी रूपक'	नागपुर	1956
2 डॉ० एस टी० नरसिंहाचारी,	'साहित्यिक अभिरुचि एव आलोचना'	बनारस	1961
3 डॉ० जी० वेंकटरमण,	'कवित्रय (कबीर, सूर, तुलसी)-समाजदर्शन'	उस्मानिया	1961
4 डॉ० वेंकट रेड्डी,	'कबीर और वेमना'	लखनऊ	1961
5 डॉ० एस० वी० माधवराव,	'आचार्य चतुरसेन शास्त्री का कथा साहित्य'	नागपुर	1964
6 डॉ० गोपालकृष्ण शर्मा,	'हिन्दी और तेलुगु कविता मे शृगार'	आगरा	1964
7 डॉ० चावलि सूर्यनारायण मूर्ति,	'हिन्दी और तेलुगु के मध्यकालीन राम साहित्यो का तुलनात्मक अध्ययन'	सागर	1964
8 डॉ० पी० आदेश्वरराव,	'हिन्दी और तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी कविता का तुलनात्मक अध्ययन'	तिरुप्पति	1964
9. डॉ० भीमसेन 'निर्मल,'	'तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार प० पुरुषोत्तम कवि'	उस्मानिया	1964
10 डॉ० कर्ण राजशेषगिरि राव,	'आन्ध्र के लोकगीत'	आगरा	1965
11 डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति,	'हिन्दी और तेलुगु के कृष्णकाव्यो का तुलनात्मक अध्ययन	आगरा	1965
12 डॉ० के० रामानाथन,	'हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'	तिरुप्पति	1965
13 डॉ० वै० वेंकटरमणराव,	'रीतिकालीन साहित्य की सास्कृतिक पृष्ठभूमि'	तिरुप्पति	1966
14 डॉ० वी० के० सत्यनारायण,	'रीतकालीन साहित्य मे अभिव्यजना और शिल्प'	तिरुप्पति	1966
15 डॉ० बी० वी० एल० एन० मूर्ति,	'रामचरितमानस का सास्कृतिक अध्ययन'	तिरुप्पति	1967
16 डॉ० नरसिंहराव,	'हिन्दी और तेलुगु लोकोक्तियो का तुलनात्मक अध्ययन'	आगरा	1967
17 डॉ० ज्ञानप्प नायुडु,	'केशव के साहित्य मे समाज, सस्कृति और दर्शन'	तिरुपति	1968
18 डॉ० लीला ज्योति,	'सूरदास और पोतना के साहित्य मे वात्सल्य'	उस्मानिया	1968
19 डॉ० वी० अनूराधा,	'हिन्दी से तेलुगु मे आगत शब्दो का ध्वनिमूलक एव वैज्ञानिक अध्ययन'	तिरुपति	1969
20 डॉ० एम० सगमेशम्,	'अन्नमाचारी और सूरदास का तुलनात्मक अध्ययन'	तिरुपति	1969

21 डॉ० वें० पुल्लय्याराव, 'केशवदास और श्रीनाथ का तुलनात्मक अध्ययन' — आन्ध्र — 1970

22 डॉ० एलगनेटि श्रीनिवासाचार्य, 'प्रेमचन्द और तेलुगु के प्रतिनिधि उपन्यासकार' — आन्ध्र — 1970

23 डॉ० जी० वी० सुब्रह्मण्यम्, 'हिन्दी और तेलुगु उपन्यास : एक तुलनात्मक अध्ययन' — आन्ध्र — 1970

24 डॉ० के० शिव सत्यनारायण, 'हिन्दी और तेलुगु के नीतिशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन' — आन्ध्र — 1970

25 डॉ० चलसानि सुब्बाराव, 'हिन्दी और तेलुगु के स्वतन्त्रतापूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' — सागर — 1970

26 डॉ० जे० विश्वमित्र, 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों में रीतिकाल' — तिरुपति — 1971

27 डॉ० बी० नागराजू, 'निराला की काव्य-भाषा और शैली का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन' — तिरुपति — 1971

28 डॉ० के० रामा नायुडू, 'हिन्दी और तेलुगु की प्रगतिवादी काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन' — द० भा० हि० प्र०सभा — 1971

29 डॉ० बी० लक्ष्मय्य चेट्टी, 'सूरसागर में प्रतीक योजना' — आन्ध्र — 1971

30 डॉ० टी० सुभद्रा, 'तुलसी और त्यागराजु की भक्ति पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन' — आन्ध्र — 1971

डॉ० पी० अप्पलराज, 'सुमित्रानन्दन पन्त और देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन' — आन्ध्र — 1972

डॉ० पी० वी० आर० सूर्यनारायण, 'विद्यापति और क्षेत्रय्या एक तुलनात्मक अध्ययन' — आन्ध्र — 1972

डॉ० जी० चौडीश्वरी, 'छायावाद में कल्पना तत्त्व' — तिरुपति — 1972

डॉ० राघवाचारी, 'रामचरितमानस एवं रंगनाथ रामायण : तुलनात्मक अध्ययन' — उस्मानिया — 1972

5 डॉ० सी० हेच० रामुलु, 'सूर और पोतना की भक्ति भावना' — उस्मानिया — 1973

6 डॉ० सी० कान्तम्मा, 'हिन्दी के आधुनिक काव्य में प्रयुक्त काव्यरूपों का अध्ययन' — तिरुपति — 1973

7 डा० वें० तुलसी रेड्डी, 'जैनेन्द्रकुमार : व्यक्तित्व और कृतित्व' — तिरुपति — 1973

8 डॉ० के० आर० श्रीनिवास गुप्त, 'डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व और कृतित्व' — तिरुपति — 1973

9 डा० जी० अन्नपूर्णा, 'हिन्दी और तेलुगु के मुक्तक नीतिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन' — मद्रास सभा — 1973

10 डॉ० ए० श्रीराम रेड्डी, 'पन्त काव्य में सौंदर्य-भावना' — आन्ध्र — 1973

41	डॉ० जी० सुब्बाराम, 'जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण एक तुलनात्मक अध्ययन'	आन्ध्र	1974
42	डॉ० वी० सत्यनारायण, 'प्रेमचन्द और गोपीचन्द्र एक तुलनात्मक अध्ययन'	आन्ध्र	1974
43	डॉ० पी० कमला देवी, 'सूरदास तथा पोतना की भक्ति पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन'	आन्ध्र	1974
44	डॉ० पी० वी० आचार्य, 'तुलसी रामायण एव रामायण कल्पवृक्ष एक तुलनात्मक अध्ययन'	आन्ध्र	1974
45	डॉ० ए० गोपालराव, 'पानुगंटि और प्रसाद के नाटको का तुलनात्मक अध्ययन'	उस्मानिया	1974
46	डॉ० के० यम० कृष्णमूर्ति, 'अलकार शास्त्र के सदर्भ म रीतिकाल का अध्ययन'	तिरुपति	1974
47	डॉ० वै० नागेश्वरराव, 'हिन्दी तथा तेलुगु की छायावादी कविता, एक तुलनात्मक अध्ययन	उस्मानिया	1975
48	डॉ० एम० वी० वी० ए० आर० शर्मा, 'हिन्दी तथा तेलुगु की शतक कविता एक तुलनात्मक अध्ययन'	उस्मानिया	1975
49	डॉ० वी० रुक्मिणी, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु कविता तुलनात्मक अध्ययन'	सागर	19,2
50	डॉ० बी० वी० सूर्यनारायण, 'हिन्दी और तेलुगु मे गद्य का तुलनात्मक अध्ययन'	बनारस	1971

सफल कवि तथा अनुवादक के रूप म लब्धप्रतिष्ठ डा० इलपावुलूरि पाडुरंगा राव आन्ध्र के प्रथम शोधार्थी हैं और उनका शोध-प्रबध 'आन्ध्र हिन्दी रूपक' इस क्षेत्र का प्रथम तथा अनुपम ग्रथ है। तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले शोधार्थियो के लिए यह ग्रथ वास्तव म आदर्श मार्ग प्रदर्शक है। सात अध्यायो मे विभक्त यह प्रबध हिन्दी और तेलुगु के नाटक साहित्य के उद्भव एव विकास की सम्यक् तुलना करने के साथ, सस्कृत नाटक के षड्ऋतुओं[1] का भी मनोहर विश्लेषण प्रस्तुत करता है। श्री रावजी की काव्यमय शैली के कारण यह शोध-प्रबध पाठको को मुग्ध कर देता है। हिन्दी तेलुगु नाटक के तुलनात्मक अध्ययन के लिए इसे बीजग्रथ मानें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

नाटककार एव कवि के रूप म प्रसिद्ध डा० चावलि सूर्यनारायण मूर्ति का शोध-प्रबध 'हिन्दी और तेलुगु के मध्यकालीन राम-साहित्यो का तुलनात्मक अध्ययन' उल्लेखनीय शोध प्रबध है। बारह अध्यायो म विभाजित इस प्रबध म राम-काव्य के मूलस्रोत, हिन्दी तथा तेलुगु मे राम-काव्य के उद्भव तथा विकास, दोनो भाषाओ के राम साहित्यो का अध्ययन आदि शोधकर्ता के गभीर अध्ययन का परिचय देते हैं।

इन पक्तियो के लेखक का शोध प्रबध 'तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार प० पुरुषोत्तम कवि' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस शोध प्रबध मे आन्ध्रप्रदेश के ऐसे नाटककार की कृतियो का प्रथम बार परिचय दिया गया है जिन्होंने पिछली शताब्दी

---

1 सस्कृत नाटक के इतिहास को छ ऋतुओं अर्थात् कालों मे विभक्त किया गया है।

में हिन्दी में नाटकों की रचना की थी। इस शोध-ग्रंथ के प्रकाशन के बाद, उस समय की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक-अध्ययन तथा हिन्दी और तेलुगु के समकालीन नाटकों की प्रवृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन के द्वार खुल गए हैं।

सूरदास तथा पोतना की काव्य-कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले शोध-प्रबंधों में डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति जी का 'हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन', डॉ० रामानाथन का 'हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति-साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन', डॉ० लीला ज्योति का 'सूरदास और पोतना के साहित्य में वात्सल्य', डॉ० सी० हेच० रामुलु के 'सूर और पोतना की भक्ति-भावना', डॉ० पी० कमलादेवी का 'सूरदास तथा पोतना की भक्ति-पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन' आदि उल्लेखनीय हैं।

आन्ध्र में हिन्दी शोधकार्य का परिचय देनेवाली सूची से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी और तेलुगु के प्रमुख लेखकों, कवियों तथा प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए पर्याप्त संख्या में शोध-प्रबंध प्रकाश में आए हैं। किन्तु इस दिशा में और भी काम हो सकता है। प्रसन्नता की बात है कि आंध्र प्रदेश में स्थित विश्व-विद्यालयों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी और तेलुगु की साहित्य-प्रवृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित कार्य हो रहा है और कई शोधार्थी इस कार्य में लगे हुए हैं।

आन्ध्र के कतिपय शोधार्थियों ने साहित्य से सम्बन्धित मौलिक विषयों पर भी शोध प्रबंध लिखे हैं। इस प्रकार के शोध-प्रबंधों में डॉ० एस० टी० नरसिंहाचारीजी का शोध-प्रबंध 'साहित्यिक अभिरुचि एवं आलोचना' उल्लेखनीय है। कुछ शोधार्थियों ने केवल हिन्दी की साहित्यिक प्रवृत्तियों अथवा लेखकों के कृतित्व का मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए शोध-प्रबंध लिखे हैं।

निबंध

यद्यपि निबंध के क्षेत्र में भी आन्ध्र के हिन्दी लेखकों ने अपनी प्रतिभा दरसाई है, किन्तु ये निबंध अधिकतर साहित्यिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर ही आधारित रहे हैं।

मौलिक विचार-प्रधान निबंध लिखनेवालों की संख्या बहुत कम है। कतिपय लेखकों ने इस ओर ध्यान दिया है और आशा है, निकट भविष्य में इस प्रकार के निबंध भी लिखे जाएंगे।

इस क्षेत्र में स्व० कर्णवीर नागेश्वरराव, सर्वश्री बालशौरि रेड्डी, प्रो० जी० सुन्दर रेड्डी, वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति, वाराणसि राममूर्ति 'रेणु', पोल्नि विजयराघव रेड्डी, डा० को० शिवसत्यनारायण, डा० मुट्नूरि संगमेशम् आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्व० कर्णवीर नागेश्वरराव के 'साहित्य सौरभ' में साहित्यिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर आधारित 10 निबंध हैं। 'आन्ध्र भारती' श्री बालशौरि रेड्डी के साहित्यिक निबंधों का संकलन है। इस पुस्तक में कुछ तुलनात्मक निबंध भी संकलित हैं। 'तेलुगु साहित्य की प्रमुख विधाएं' तथा 'तेलुगु के आधुनिक कवि' में श्री वेमूरि राधाकृष्ण मूर्तिजी कृत तेलुगु साहित्य तथा तेलुगु कवियों की काव्य-साधना से सम्बन्धित निबंध हैं।

इस क्षेत्र में श्री राममूर्ति 'रेणु' कृत 'आदान-प्रदान', श्रीविजयराघव रेड्डी का 'तेलुगु भारती', डा० शिवसत्यनारायण का 'हिन्दी-तेलुगु कवियों का तुलनात्मक

अध्ययन' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रो० सुन्दर रेड्डीजी के लेखों का संकलन 'मेरे विचार', 'साहित्य और समाज', 'वैचारिकी', 'दक्षिण की भाषाएं तथा उनका साहित्य' आदि पुस्तकों में हुआ है। प्रो० रेड्डीजी ने साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का मौलिक विवेचन करते हुए निबंध लिखे हैं।

डॉ० ए० श्रीराम रेड्डी-कृत 'कलियों के द्वार पर अलियों का गुंजन', डॉ० एस० वी० माधवराव कृत 'काव्यशास्त्र के नये आयाम', श्री दक्षमूर्ति वेंकट कृष्णराव कृत 'साहित्यकला', डा० पी० आदेश्वरराव कृत 'तुलनात्मक शोध और समीक्षा' शीर्षक पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त समय-समय पर विविध पत्र-पत्रिकाओं में निबंध तथा लेख लिखनेवालों की संख्या पर्याप्त है। इस क्षेत्र में—विशेष रूप से तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में—आन्ध्रों का योगदान सराहनीय है।

तेलुगु साहित्य के इतिहास को हिन्दी में प्रस्तुत करनेवालों में श्री हनुमच्छास्त्री 'अयाचित' तथा श्री बालशौरि रेड्डी ने उल्लेखनीय कार्य किया है।

हिन्दी-तेलुगु-कोश निर्माण में स्व० श्री अध्याल शिवम्लशास्त्री का नाम प्रथमोल्लेखनीय है। उनका कार्य आदर्श एवं प्रशंसनीय है। श्री० ए० सी० कामाक्षी राव, श्री बालशौरि रेड्डी, भीमसेन 'निर्मल' कृत 'हिन्दी-तेलुगु कोश' उल्लेखनीय है।

श्री अयाचितुल हनुमच्छास्त्री कृत 'तेलुगु-हिन्दी कोश' अपने ढंग का अनुपम ग्रंथ है। यद्यपि इससे बहुत पहले श्री कोमाडूरि शठकोपाचार्य ने इस प्रकार के कोश की रचना की थी किन्तु वह आकार में बहुत छोटा है। श्री शास्त्रीजी का प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है।

श्री मोटूरि सत्यनारायणजी के नेतृत्व में 'हिन्दी विश्व कोश' का निर्माण हो रहा है। इस कोश का प्रथम खंड अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। संपूर्ण कोश 16 भागों में प्रकाशित करने की योजना है। यह विषय के अनुसार है और प्रामाणिक रूप में प्रकाशित हो रहा है।

श्री एस० वी० शिवराम शर्मा कृत 'हिन्दी-तेलुगु का तुलनात्मक व्याकरण' बहुप्रशंसित पुस्तक है। श्री शर्माजी ने अपने अपार अनुभव के आधार पर दोनों भाषाओं के व्याकरणों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह हिन्दी भाषा के शिक्षकों के लिए अत्यंत उपादेय सिद्ध हुआ है।

अनुवाद

हिन्दी से तेलुगु में तथा तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद करनेवाले आन्ध्र बीसियों की संख्या में हैं। इन अनुवादकों ने उत्कृष्ट ग्रंथों का अनुवाद कर, दोनों भाषाई क्षेत्रों में साहित्यिक प्रवृत्तियों के आदान-प्रदान के लिए सेतु का काम किया है और कर रहे हैं। साहित्य क्षेत्र को संपन्न बनाने के दृष्टिकोण से अनुवाद-कार्य का विशिष्ट महत्व है, फिर भी इस लेख की परिधि को मात्र मौलिक रचनाओं तक सीमित रखने के कारण, यहां उन अनुवादों अथवा अनुवादकों की चर्चा संभव नहीं है।

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी के संपन्न बनानेवाले बीसियों लेखक हैं। उचित परिवेश एवं प्रोत्साहन के अभाव में इनमें कई लेखकों की

रचनाएं पुस्तकाकार में प्रकाशित नहीं हो सकी हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्ध्र के हिन्दी लेखकों ने हिन्दी-साहित्य की सभी विधाओं को सपन्न बनाने में सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने सकुचित विचार को तजकर, दिल खोलकर हिन्दी साहित्य की सेवा की है। भावात्मक एकता की दिशा में यह योगदान अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है और हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों का ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित करता है।

6

हिन्दी साहित्य को ओड़िशा की देन

डॉ० शिवप्रिया

भारतीय संस्कृति के निर्माण और विकास मे मध्यदेश और ओडिशा की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ओडिशा ने मध्यदेश की सभ्यता, संस्कृति, दार्शनिक चिंतन को केवल संरक्षण ही नही दिया वरन साथ ही अपनी विशिष्ट जातीय संस्कृति मे उसका संवर्द्धन भी किया। दक्षिण की चिन्तन धाराओ से उसका समन्वय कर अखंड भारतीय संस्कृति का निर्माण किया। प्रागैतिहासिक काल से एशिया की विभिन्न सभ्यता और संस्कृतिया के समागम से मध्यदेश मे जिस समन्वयात्मक संस्कृति का निर्माण हुआ उसका प्रतिनिधित्व करनेवाली भाषा हिन्दी है और उस समन्वयात्मक संस्कृति को आत्मसात कर उसका पूर्वोपकूल के सागर तट पर जिस जातीय संस्कृति का विकास हुआ, उसको वाणी देनेवाली भाषा ओडिआ है।

नवीन प्रस्तर युग से दोनो प्रदेशो की जातीय एकता के संकेत मिलते हैं। आष्ट्रिक जातीय तत्त्व को भारतीय जनता के निर्माण का आधारभूत तत्त्व माना गया है। सुनीतिकुमार चटर्जी का अनुमान है कि अफगानिस्तान से पूर्वी बिहार तक की अधिकांश जनता आष्ट्रिक जातीय है। कालातर मे इन्होने आर्यों की भाषा और संस्कृति को स्वीकार कर लिया।

भागवत पुराण मे निषाद जाति का जो वर्णन मिलता है, ओडिशी जनता म विशेषकर पार्वतीय अचल के निवासियो से उसकी समानता है।

भारत में ताम्रयुगीन सभ्यता के प्रवर्तको मे द्रविड अन्यतम है। आर्यों के आगमन के साथ राजनीतिक एव धार्मिक विषमता और दबाव के कारण द्रविडो को उत्तर-पश्चिम भारत से पूर्वी तट से होते हुए दक्षिण मे प्रवेश करना पड़ा था। इसी विन्ध्य पार्वतीय प्रदेश मे उनकी एक शाखा रुक गई थी। यही से सामंजस्य एव समन्वय प्रारभ हुआ था। महाभारतकाल का चेदिवंश इसी वर्ग का राजवंश है। चेदिवंशीय कलिंग सम्राट महाप्रतापी खारवेल ने हाथी गुफा शिलालेख मे अपने को गर्व के साथ ऐल कहा है। दुर्योधन की पत्नी चित्रागदा कलिंग कुमारी थी। महाभारत युद्ध मे कलिंगराज श्रतायु ने कौरवो का साथ दिया था। इस प्रकार ताम्रयुग एव महाभारत-काल में दोनो का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

कलिंग व्यापारिक केंद्र था। एशिया एव दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ मध्यदेश का व्यापार कलिंग के विभिन्न बन्दरगाहो द्वारा होता था। स्वाभाविक है कि मध्यदेश के व्यापारी बहुतायत मे कलिंग जाते होंगे। यही कारण है कि 'बौद्धयान सूत्र' मे शुद्धी-करण के उपाय बताने पड़े।

ई० पू० आठवीं शती में जैनों के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने कलिंगराज की कुमारी प्रभावती को मुक्त कर उससे विवाह किया था। उत्तराध्ययन सूत्र के अष्टादश अध्याय के अनुसार कलिंगराज करकंड पार्श्वनाथ का शिष्य था। खारवेल से पूर्व उदयगिरि एवं खंडगिरि में उत्कीर्ण जैन मूर्तियों से पार्श्वनाथ की प्रधानता सिद्ध होती है। भगवान बुद्ध के समय दोनों देशों में नियमित व्यापार होता था। कलिंग के दो व्यापारियों (तपुरी एवं भल्लिक) ने बुद्धत्व प्राप्ति के बाद तथागत को मधुपिंडक देने का सौभाग्य पाया था। बाद में उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली थी तथा अमिताभ के परिनिर्वाण के बाद उनके नख और कुन्तल ले जाकर मंदिर का निर्माण करवाया था।

हाथी गुम्फा शिलालेख (खारवेल) से ज्ञात होता है कि मगध के किसी नन्द राजा ने कलिंग पर आक्रमण कर कलिंग जिन को ले जाकर पाटलीपुत्र में स्थापित किया था। नन्दराज का राज्य पंजाब तक विस्तृत था। मध्यदेश और ओडिशा उसके दो केंद्र थे। कलिंग युद्ध एवं उसकी नौ-यात्रा प्रसिद्ध हैं। अशोक के पुत्र एवं पुत्री यहीं से धर्म-प्रचार के लिए सिंहल द्वीप गए थे।

ई० पू० पहली शताब्दी में खारवेल ने अपना सैनिक अभियान मथुरा तक संचालित किया था, फलतः दोनों देश निकट संपर्क में आ गए थे। चतुर्थ शताब्दी में समुद्र गुप्त ने ओडिशा पर अपना अभियान चलाया था। सातवीं शताब्दी में कन्नौज सम्राट हर्षवर्द्धन ने ओडिशा-विजय की थी। बौद्धधर्म के वज्रयान एवं सहजयान का यह मुख्य केंद्र रहा है। कतिपय विद्वानों का मत है कि संबलपुर के राजा इन्द्रभूति वज्रयान का तथा उनकी बहन लक्ष्मीकरा सहजयान की प्रवर्तक थी। हिन्दी के प्रारंभिक स्वरूप का निर्माण करनेवाले चौरासी सिद्धों में से अनेक की जन्मभूमि ओडिशा थी। ई० सन् 795-840 में ययाति केसरी ने वैतरणी पर अश्वमेध-यज्ञ कराने के लिए कन्नौज से दस हजार ब्राह्मणों को बुलाया था तथा उन्हें वहां निवास करने के लिए सुविधाएं दी थीं।

इसी समय आदिगुरु शंकराचार्य ने पुरी को वैष्णव धाम के रूप में प्रतिष्ठित किया। 12वीं शताब्दी में चौड गंगदेव के शासनकाल में रामानुजाचार्य ने पुरी में मठ की स्थापना की। ओडिशा की भागवत से अनुप्राणित जनता बड़ी संख्या में मथुरा और वृन्दावन जाती रही। दोनों का संपर्क प्रगाढ़ होता रहा। नरपति नाल्ह ने 'बीसलदेव रासो' (13वीं शती) में नायक बीसलदेव रासो की ओडिशा यात्रा का विशद एवं सुन्दर चित्रण किया है।

उत्तर भारत में मुसलमानों के शासन की स्थापना से दोनों के सम्बन्ध को गहरी क्षति पहुंची। इस उथल पुथल के कारण मध्यदेश एवं ओडिशा के बीच व्यापार एवं आवागमन सहज नहीं रह सका। 16वीं शताब्दी के मध्य में अकबर को ओडिशा के सरहदी प्रदेश में अपना राज्य स्थापित करने में सफलता मिली। ओडिशा का बंगाल में विकसित मुस्लिम सभ्यता से परिचय हुआ पर तब तक मुस्लिम शासित बंगाल का व्यापारिक दृष्टि से महत्त्व बढ़ चुका था। अतः ओडिशा अपने व्यापार-वाणिज्य को पुनः जीवित न कर सका। 13वीं शताब्दी के बाद दोनों का सम्बन्ध धार्मिक आधार पर केवल पुरी तक सीमित रहा।

अंग्रेजी शासन में भी बंगाल ही केंद्र रहा। बंगाल में अंग्रेजी शासन बहुत पहले स्थापित हो गया था, अतः अंग्रेजी सभ्यता-संस्कृति से दीक्षित बंगाल काफी प्रगति कर

चुका था। शोषित, उत्पीडित, निर्धन और हताश ओडिशा न तो अपना पूर्व गौरव फिर से प्राप्त कर सका और न ही मध्यदेश के साथ अपने सम्बन्ध को बढा सका। स्वतत्रता आन्दोलन के समय इस सम्बन्ध में थोडी प्रगति अवश्य हुई। महात्मा गाधी ने नमक सत्याग्रह के लिए पुरी के समुद्र-तट को चुना। स्वतत्रता-सग्राम म ओडिशा ने सक्रिय भाग लिया। उसके कुछ नेताओ जैसे उत्कलमणि गोपबधुदास को अखिल भारतीय स्तर पर प्रसिद्धि मिली। स्वतत्रता के बाद दोनो के सम्बन्ध म पर्याप्त वृद्धि हुई है।

मध्यदेश और ओडिशा के सम्पर्क-सूत्र

(अ) सास्कृतिक-जगन्नाथ—मध्यदेश एव भारत को ओडिशा का महादान है 'जगन्नाथ'। जगन्नाथ ने हिन्दू धर्म को जैन और बौद्ध धर्मों एव नाथ-पथियो से, आर्यों को द्रविडो से, अतीत को वर्तमान से मिलाया। भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम को एकसूत्र मे बाध दिया। जगन्नाथ शिव, विष्णु, राम, कृष्ण, दुर्गा आदि के रूप म कोई नाम नही है। किसी भी भगवान को जगन्नाथ कहा जा सकता है। हिन्दू देवी देवताओ मे जगन्नाथ के समान परस्पर विरोधी तत्त्वो को इतने व्यापक स्तर पर अपने व्यक्तित्व मे अन्तर्भाव करनेवाला कोई दूसरा देवता नही है। अनजान समय के अन्तराल मे शबरों का यह शिवलिंग उत्कल के लोक समुदाय का नील माधव बना। फिर जैनो ने उसे 'जिन्नाथ' नाम दिया, बौद्धो ने 'जगन्नाथ' मे रूपातरित कर दिया। बौद्धधर्म के ह्रास एव वैष्णवधर्म के प्रसार से वह जगन्नाथ—पुरुषोत्तम बना। जगन्नाथ की अनगढ स्थूल विमूर्ति पाली त्रिरत्न—बुद्ध-धर्मसघ—की प्रतीक हैं। जगन्नाथ का 'महाप्रसाद' अमृत-खाद्य है, अत उसके सेवन मे स्पर्श्य-अस्पर्श्य नही है। वह अधविश्वास—एव रूढ—सस्कारो का अर्थ विग्रह नही है। वह सबल 'साक्षी—गोपाल' है—जीवनधर्मी है। वह नैवेद्य भोगी नही, उसके सकट मे सक्रिय सहायक है। काची अभियान के समय उनकी गोपन समर यात्रा मौलिक है, अद्भुत है। वे गतिमय जीवनादश के साकार विग्रह हैं। उनकी काष्ठ मूर्ति, उनका महाकलेवर धारण, मूर्तियों की अपूर्णता, अमूर्तता जीवन की नश्वरता मे अविनश्वरता की कल्पना को साकार करती है। यह गतिशील अनन्त जीवन की मौन व्याख्या है।

वह श्रेणी रहित समाज का प्रतिष्ठापक है। वह वर्ण-भेद, वर्ग-भेद, जाति भेद का विरोधी है। कृष्णाग जगन्नाथ, श्वेताग बलभद्र, लोहिताग सुभद्रा विश्व के त्रिविध देहरग के समन्वय के प्रतीक हैं। वह विश्वबधुत्व का जीवन्त रूप है। दोनो भाइयो के बीच बहन सुभद्रा है। जो ओडिशी सामाजिक सरचना का प्रतिरूप है। कैसी क्रांति दर्शिता है। युग्म जीवन तक ही जीवन सीमित नही है। आकाश और धरती के बीच रागात्मक जीवन सचरण कर रहा है। विराट् जीवन की अनूठी कल्पना। प्रवृत्ति और निवृत्ति का विचित्र समन्वय। मानवीय कल्याण का वह चिर-जाग्रत देवता है।

(ब) राजनीतिक—इस वीर प्रसविनी धरती के मुक्ति-कामी सपूतो ने पर शासन के विरुद्ध सर्वदा सघर्ष किया है। वह दुर्धर्ष कलिंग सेनानी है, जिसका प्रतिरोध, जिसका बलिदान, जिसका स्वतत्रता प्रेम काल के पृष्ठपटों पर अज लेखनी स अकित है। यदि उसने अपन अगो म युद्ध की दुर्दान्त विभीषिका झेली है तो रक्तप्लावित उसकी उत्सर्गित प्रेरणा से अमर जीवन का स्वर्गीय सगीत फूटा है। वह खारवल के वीर-दर्प का ज्वलत प्रतीक है। यदु जाति का 'समर-तरग' उसकी धमनियो म प्रवाहित

रहा है। वह रण-मतवाला, कलाप्राण धरती-पुत्र है। 'बारबाटी', 'चौदार', 'राय-णिया', 'जाजपुर' दुर्ग उसकी वीरता के स्मारक हैं।

सन् 1857 ई० के सिपाही-विद्रोह के बहुत पहले ओडिशा में पाइक-विद्रोह हुआ था। ओडिशा में अंग्रेजी शासन सन् 1803 ई० में स्थापित हुआ था और सन् 1817 ई० में ही विद्रोह का बिगुल उस आरण्यक अंचल में बज उठा था। वह खोरधा का पाइक सेनापति बक्सी जगबन्धु विद्याधर है। वह घुमसर का विद्रोही आदिवासी कंध मुखिया चक्रबिसोई है, जिसने संपूर्ण पश्चिम बंगाल में अंग्रेजी के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध का संचालन किया था। सिपाही विद्रोह की अमर सेनानी रानी लक्ष्मी बाई का वह सहयोगी चाखी खुंटिया है, सिपाही-विद्रोह का सेनानी वीर सुरेन्द्र साय है, अंग्रेजी साम्राज्य को चुनौती देने वाला बारह वर्षीय बालक बाजी राउत है।

स्वाधीनता-आन्दोलन में ओडिशा ने फिर से एक बार अपनी स्वातन्त्र्य चेतना, अपनी स्वदेश भक्ति, अपनी निष्ठा और गरिमा का परिचय संपूर्ण राष्ट्र को दिया। स्वतन्त्रता आन्दोलन में उसका अवदान उल्लेखनीय है। राष्ट्रीय चेतना के विकास में उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है। उत्कल गौरव मधुसूदन दास (1848-1934) ने यदि ओडिशा में राष्ट्रीय सचेतनता का विकास किया तो उत्कलमणि गोपबंधु दास (1877-1928) ने उसको सही दिशा में क्रियात्मक रूप दिया। मधुसूदन दास का नाम उन महान विभूतियों में लिया जा सकता है जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशाब्दियों में राष्ट्र-निर्माण का वरेण्य काम किया था। केन्द्रीय विधान सभा, जब वह कलकत्ता में थी, उसके वे सदस्य थे तथा भारतीय मामलों में अंग्रेजी के हस्तक्षेप का उन्होंने कड़ा विरोध किया था। लार्ड कर्जन, लार्ड मिंटो II, तत्कालीन वायसराय, से उनका उग्र विरोध भी हुआ था। गांधी जी के नेतृत्व के पहले गोपबंधु ने इन आदर्शों का प्रतिपादन एवं कार्यान्वयन किया था, जिनका प्रतिपादन गांधीजी ने बाद में किया। गोपबंधुदास ने 1909 में बुनियादी शिक्षा पद्धति एवं राष्ट्रीय चेतना से युक्त सत्यवादी स्कूल की स्थापना पुरी में की थी। महात्मा गांधी ने नमक सत्याग्रह के लिए ओडिशा के समुद्र तट को अपना संघर्ष-क्षेत्र चुना एवं सन् 1930 ई० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन को चलाया। पर उससे दस वर्ष पहले ओडिशा विधान सभा के सदस्य के रूप में गोपबंधुदास ने यह मांग रखी थी कि तटीय प्रदेश के लोगों को बिना किसी प्रशासनिक हस्तक्षेप के नमक बनाने का अधिकार दिया जाए। ओडिशा प्रदेश कांग्रेस कमेटी का संगठन उन्होंने किया था और उसके सभापति के रूप में ओडिशा के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व किया था। रमादेवी, गोदावरीश मिश्र, लिंगराज मिश्र, पं० नीलकंठ दास, आचार्य हरिहर दास, गोपबंधु चौधुरी, विश्वनाथ दास, ब्रजसुन्दर दास, हरेकृष्ण महताब, डा० कुन्तला कुमारी साबत, नवकृष्ण चौधुरी, सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी—आदि कुछ अन्य प्रमुख नाम हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता-आन्दोलन में ओडिशा का प्रतिनिधित्व किया था। स्वतन्त्रता के बाद अन्य प्रदेशों की तरह ओडिशा जातीय एवं राष्ट्रीय उत्थान के कार्य में संलग्न है।

(स) आर्थिक—प्राचीन काल से कलिंग नौ-यात्रा और वाणिज्य के लिए प्रसिद्ध रहा है। समुद्र की मदमाती विराट् लहरें उस सदा आह्वान देती रही हैं, अज्ञात सुदूर प्रदेश उसके मन में कौतूहल, जिज्ञासा जगाते रहे हैं। समुद्र वक्ष को चीरता कलिंग का दुस्साहसी सौदागर तब पहुंचता रहा है—जावा, सुमात्रा, ब्रह्मदेश आदि।

ताम्रलिप्त, वालुर, चरित्रा, दन्तपुर, रमा, कलिगनगर आदि बन्दरगाहो के वायुमडल मे 'साधव बहुओ' की शख-ध्वनि, हुलहुली आज भी मुखरित है। वह राज्यलोलुप, महत्त्वाकाक्षी छद्मवेशधारी वणिक नही, वरन् धर्म, सस्कृति, कला, स्थापत्य का सस्थापक, मैत्री, बधुत्व का वाहक साहसी सौदागर है। भारतीय सस्कृति के प्रसार मे उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है। समुद्र लाघकर उपनिवेशो की स्थापना कलिग-वासियो ने ही की थी। मध्यदेश के विदेशी व्यापार का वह मार्ग था। इस प्रकार कलिग प्राचीन भारत का आर्थिक केन्द्र रहा। ईसा की पहली शती से सोलहवी शती तक उसका नौ-वाणिज्य चलता रहा। उसके बाद वह धीरे धीरे लुप्त प्राय हो गया जिसके पीछे अनेक कारण है, जिसमे पुर्तगाली लुटेरो एव जलदस्युओ के आतक के कारण समुद्री यात्रा का सकटपूर्ण होना तथा मुगल एव अग्रेजी शासन मे ओडिशा को उसके प्रतिरोध के लिए दुर्बल बना देने का प्रयास एव पडौसी राज्यो द्वारा उसे आक्रात कर लेने की चेष्टा रही है। ओडिशा का वह स्वर्ण युग आज अतीत के गर्भ मे समा गया है पर उसकी गौरवशालिनी स्मृतिया आज भी जनमानस को रोमाचित करती रहती है।

दीपावली के दूसरे दिन 'बोइत वदाण' कार्तिक पूर्णिमा के दिन 'बोइत भसाण' जैसे पर्व बडे उत्साह के साथ समारभपूर्ण रूप से मनाए जाते हैं।

(द) सामाजिक—ओडिशा का सामाजिक जीवन आज की बेतहाशा भागती-दौडती जिन्दगी म कितनी ठहरी हुई, सरल और स्वच्छ है। तकनीकी युग की जटिलताए, आधुनिक जीवन का हृदयहीन पाथरत्व, जीवन का व्यापारीकरण वहा नही है। शायद इसका एक बडा कारण यह है कि वहा इतने महानगर नही, इतना औद्योगीकरण नही—इतना लौह प्रसार नही। ओडिशा मुख्यत ग्रामो का प्रदेश है। वहा का पल्ली जीवन प्रकृति के शीतल स्नेहपूर्ण रमणीय परिवेश मे बीतता है। ऋतुओ के आगमन-प्रत्यागमन पर विभिन्न प्रकार के उल्लासमय सास्कृतिक पर्वो, त्यौहारो का आयोजन होता है। लोकगीत, लोकनृत्य पाला, दास काठिया आदि के द्वारा लोक-जीवन अपने परिवेश के साथ एकरस हो जाता है, अपनी पौराणिक सास्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित कर लेता है, उसे नई गति देता है। प्रत्येक गाव मे एक ग्राम देवता होता है। वह गाव के हर्षोल्लास का साथी और सभाभोगी होता है। हर एक गाव मे एक भागवत गृह होता है जो गाव का वाचनालय, पुस्तकालय तथा सभागृह होता है। ताड्पत्र पोथियो का सग्रह भागवत गृह से लेकर हरएक परिवार मे होता है। हर एक परिवार ज्ञान के इस सकलन एव सुरक्षा म गर्व का अनुभव करता है। यह ग्रामीण पुस्तकालय शहरी पुस्तकालयो से कितने भिन्न हैं। आज की वस्तुवादी परम्परा-रहित शहरी दृष्टि और इस मूल्यवादी परपरागत ग्रामीण दृष्टि मे कितना फर्क है? इस लौह युग के इस्पाती प्रसार मे आचलिक सस्कृतियो के ये पुष्पगुच्छ स्यात् रौंद डाले जाए और रुद्धश्वास मानव अपने जीवन-स्पदन को खोकर प्रस्तरीभूत हो जाए। हर गाव मे एक अखाडा घर होता है। जो तरुणो का आकर्षण केन्द्र होता है। प्रत्यक घर रागोली, अल्पना से अलकृत हमारा स्वागत करता है।

ओडिशा मे आदिवासियो की सख्या करीब 51 लाख है जो कुल जनसख्या का 24% है। ये आदिवासी ही यहा के मूल निवासी हैं। द्राविडो के दक्षिण प्रवेश के समय एक शाखा यहा बस गई थी, तथा आर्यों के साथ समझौता-सामजस्य का कार्य

यहीं से प्रारंभ हुआ था। ययाति केशरी ने 10 हजार कान्यकुब्ज एवं सारस्वत ब्राह्मणों को यहां बसाया था। पुरी वैष्णवों का धार्मिक क्षेत्र होने के कारण मध्यदेश एवं दक्षिण से वहां भक्तों का आवागमन लगा रहा। उनमें कुछ वहीं बस गए। इस प्रकार सैंकड़ों वर्ष साहचर्य एवं सम्पर्क के कारण एक बड़ा ही सौहार्दपूर्ण एवं वैविध्ययुक्त सामाजिक संरचना यहां विकसित हुई। ये एक-दूसरे में इतने घुल मिल गए हैं, ऐसे एकप्राण हो गए हैं कि उन्हें अलग से आज पहचाना नहीं जा सकता। इसकी चार सीमाएं विभिन्न राज्यों से जुड़ी हुई हैं। बंगाल, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश एवं बिहार। इन भागों में दोनों प्रदेशों की सामाजिक व्यवस्था में गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। यही है ओडिशा की वह बहुआयामी, बहुविध सामाजिक संरचना जो व्यापक स्तर पर मानवीय सम्बन्धों को आत्मसात किए हुए हैं। राष्ट्रीय एकप्राणता, जो सुदृढ़ राष्ट्र-निर्माण की अनिवार्य शर्त है, पर आज जब इतना बल दिया जा रहा है, ओडिशा की सामाजिक व्यवस्था एक सुन्दर सामंजस्यपूर्ण उदाहरण हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

लोक-जीवन की यह सरलता, सहिष्णुता, उदारता, संस्कारशीलता, सुकुमार जीवन-चेतना ओडिशा की कला, साहित्य, स्थापत्य आदि में कमनीय कान्ति, द्रवणशील भावप्रवणता के रूप में अभिव्यक्त हुई है।

ओडिशा की कला-संपदा

ओडिशा के युग-पुरुषों ने जीवन के विभिन्न अंगों में एक अद्भुत समन्वय और सामंजस्य स्थापित कर उसे जीवंतता प्रदान की थी। कोणार्क अथवा लिंगराज मंदिरों के सांचे में उपेन्द्र भंज अथवा मध्यकाल के किसी भक्तिरसामृत गीत की लय पर ओडिशी नृत्य की थिरकन, इस अनिर्वचनीय सम्बन्ध को मूर्तिमान कर देती है और हम उस जीवंत के सभी स्वर समवेत रूप से सुनाई देने लगते हैं। ओडिशा के नृत्य, संगीत काव्य में उसकी विशिष्टता, जो उत्तर और दक्षिण दोनों से भिन्न है स्पष्ट दिखाई देती है। भुवनेश्वर के मंदिरों से थोड़ी दूर किसी अनगढ़ ग्रामीण वातावरण में चले जाएं तो आज भी यही लगेगा कि मानो मंदिरों पर अंकित प्रतिमाएं वही आभूषण, वही वस्त्र, वही चाल, वही लावण्य लिए सशरीर विचरण कर रही हैं। इसी ग्रामीण वातावरण में प्राचीन ओडिआ काव्य की स्वरलहरी समूचे जीवन को अभिभूत कर हम एक ऐसे लोक में पहुंचा देती है जहां पूरा जन-जीवन तरंगित हो उठता है। केवल भव्य मंदिर एवं विशाल भवनों में ही नहीं ओडिशा के ग्राम्यांचल के लघु रूपों में कला और स्थापत्य का यह ललित रूप दिखाई पड़ेगा। उत्कल की धरती है लास्यमयी, गीतिमयी, कलामयी। निर्झर की लहरों की कल्लोल-क्रीड़ा में खिलने कलियों की चटखन में, मधुलुब्ध भौंरों के गुंजन में, झूमते तरु-लताओं में, पक्षियों के कलरव में, आम्रमंजरी की सुरभि से बेसुध कोयल की कुहू तान में जीवन-संगीत मुखरित है। उत्कल के कलाप्राण विमुग्ध कलाकार ने जब भी अपनी छेनी उठाई प्रस्तर खंडों से रूप का समार छलक पड़ा। हाथी गुफा, रावण गुहा, खंडगिरि-उदयगिरि के अपरूप चित्रसंभार उसकी इस कलात्मक जीवन-चेतना के प्रमाण हैं।

ओडिशा द्रविड़ एवं आर्यों के संयुक्त सांस्कृतिक धरोहर को सदा से संभाले हुए है। यद्यपि इसका प्रभाव उसकी कला साहित्य आदि पर अवश्य पड़ा होगा पर ओडिशा की कला का निजी व्यक्तित्व भी असंदिग्ध है जो उसके परिवेश, प्रकृति तथा

सामाजिक जीवन से निर्मित है। उसका आचलिक वैशिष्ट्य, उसके कलात्मक व्यक्तित्व का मेरुदड है। भारतीय नृत्य-सगीत आदि कलाओ की सृष्टि देवार्चन से हुई है। वैदिक ऋचाओ के गायन एव पूजा की विधि-भगिमाओ मे ही इनका उत्स देखा जा सकता है। इस तरह सपूर्ण भारत की कला-विरासत एक ही है। समय-प्रवाह से इनके प्रादेशिक रूप विकसित होते गए।

कलिग सभ्यता भारत तथा भारतेतर प्रदेशो मे अपनी अमिट छाप छोड चुकी है। अत कलिगवासियो की कला की शिल्पगत मौलिकता एव प्राचीनता स्वयसिद्ध है। निश्चित रूप से इसका विकास मदिर-निर्माण युग के पूर्व हो चुका होगा। अन्यथा मदिर की मूर्तियो मे लास्य, ताल, लय, मुद्राओ आदि का चित्रण शिल्पी के लिए कैसे सभव हुआ होता ? उन्होंने बाहर से इसकी शिक्षा नही ली थी और न बाहर से कोई निर्माण के लिए आया था। अत ओडिशी शिल्प, ओडिशी कला उसकी अपनी निजी सपदा है, आयातित नही। यह मात्र आह्लाद या मनोरजन की वस्तु नही, यह उनकी जातीय, सास्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक चेतना की चिन्मयी अभिव्यक्तिया है।

ओडिआ और हिन्दी का सम्बन्ध (भाषा, शब्द, ध्वनि, लिपि)

ई० पू० तीसरी शती के आधुनिक युग तक दो हजार वर्षों का इतिहास अध्ययन कर ओडिआ भाषा, लिपि, ध्वनि आदि पर यदि विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भारत के उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम भागो मे सदियो से विकसित विभिन्न सस्कृतियो एव ज्ञानधाराओ मे समन्वय स्थापित करने मे सर्वाधिक समर्थ भाषा व लिपि ओडिआ है। उसका एक सार्वदेशीय स्वरूप है। भारत के विभिन्न स्थानो से धर्माचार्यो, पडितो ने यहा आकर इसे अपना उपनिवेश बनाया। तीसरी शती के बाद बडी सख्या मे ब्राह्मण-क्षत्री, वैश्य यहा आकर बस गए। यहा के मूल आदिवासियो के साथ उनका मेल हुआ। इस प्रकार ओडिआ भाषा और लिपि के विकास मे उत्तरोत्तर व्यापकता, सार्वदेशीयता आती गई। लिपि वस्तुत जातीय सस्कृति का आलेख होती है। ओडिआ भाषा और लिपि का यह समन्वयात्मक सार्वदेशीय स्वरूप ओडिआ जातीय जीवन को प्रकाशित करता है। इतना ही नही, व्यापारिक एव नौ-वाणिज्य केन्द्र होने के कारण भारत के विभिन्न अचलो के निवासियो का समागम होता रहा, साथ ही, दूर-दूर के देशो से व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण कलिगवासी वहा की भाषा सीखते रहे। इस प्रकार ओडिशा अपनी विशेष भौगोलिक तथा राजनीतिक स्थिति के कारण देश विदेश की भाषा, लिपि और सभ्यता के एकत्रीकरण एव समाहार करने मे सक्षम सिद्ध हुआ। मध्यदेश के साथ ओडिशा का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से रहा है। दोनो ही आर्य भारतीय शाखा की भाषाए है। फलत भाषा एव लिपि के क्षेत्र मे दोनो अत्यन्त निकट हैं।

धउली मे प्राप्त मौर्यवश-नरेश अशोक के शिलालेख (3 श० ई० पू०) तथा खडगिरि मे प्राप्त चेदिवशीय महाराजा खारवेल के शिलालेख (2 श० ई० पू०) मे ओडिशा भाषा का प्राचीनतम प्रमाण मिलता है। भाषाविदो के अनुसार अशोक के शिलालेख की भाषा प्राचीन मागधी प्राकृत का एक आचलिक रूप है। परन्तु इसमे 'श' 'ष' के स्थान पर केवल 'स' का प्रयोग मिलता है जो उडी और अर्ध मागधी प्राकृत की विशेषता है। खारवेल के शिलालेख की भाषा मे यद्यपि पाली भाषा के अनेक रूप

मिलते हैं पर यह अशोक की भाषा की अपेक्षा संस्कृत से अधिक प्रभावित है। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि पाली मध्यदेश की भाषा पर आधृत एक साहित्यिक भाषा है, जिसमें अनेक बोलियों का मिश्रण मिलता है। ओडिशा उस समय तक बौद्ध धर्म का प्रमुख केंद्र बन चुका था। अतः पाली को साहित्यिक रूप देने में तत्कालीन ओडिशा और मध्यप्रदेश की भाषाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा होगा। इसी विनिमय प्रक्रिया में दोनों परस्पर प्रभावित भी हुए होंगे। इसीलिए आधुनिक ओडिशा मध्यकालीन मागधी प्राकृत की अपेक्षा अर्ध मागधी प्राकृत से अधिक निकट प्रतीत होती है।

सभी आधुनिक आर्य भाषाओं का आरंभिक विकास—आठवीं श० से बारहवीं श० के बीच हुआ है। जैन, बौद्ध और नाथ धर्म के व्यापक प्रभाव के कारण पाली प्राकृत व अपभ्रंश से अन्य आर्य भाषाओं की तरह इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। हाथी गुफ एवं मेघवाहन के शिलालेखों से पाली के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। प्राकृत के कई शब्द अब भी यथावत् प्रयुक्त होते हैं। यथा—

स्थूल	थोर	थोर
मनुष्य	मणूस	मणस

सिद्ध साहित्य के सम्यक् विवेचन से यह ज्ञात होता है कि कान्हुपाद, शबरपाद, लोहिपाद, रोहुलपाद आदि तान्त्रिक धर्म प्रचारक तथा पद्मसभव और बौद्ध श्री आदि सिद्धाचार्य उड्डियान पीठवासी थे। इस सिद्धाचार्यों का समय सन् 600-1000 ई० के भीतर सीमित है। 7वीं श० तक उड्डियान पीठ ओडिशा के तान्त्रिक पीठ के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। 'बौद्धगान ओ दोहा' की भाषा में ओडिआ का प्राचीन रूप विद्यमान है। जैसे पइठ, भणइ, वापुडा, कीस, कुडिया, पडन्ते, युडन्ते, तइलावाडी, बलद, बाक आदि। डा० बागची द्वारा सपादित 'दोहा-कोश ग्रंथ' में डिल्लोया और सरहपाद की दोहावली में अनेक ओडिआ शब्दों के रूप दिखाई पड़ते हैं, जैसे—

पइसइ, पडिल, पलाई आदि,

'बौद्धगान ओ दोहे' में प्रयुक्त ऐसे अनेक शब्द हैं जो आज भी ओडिआ में विशेष रूप से प्रचलित है—उदाहरणार्थ—आजि, चापि, तेंतुलि, सासु, गराहक, उपाडि, कोठा, पइठा आदि।

ओडिआ भाषा का प्राथमिक रूप सहजयान के 'चर्यापद' में मिलता है। डा० सुकुमार सेन, श्री सुनीति कुमार चटर्जी तथा अन्य किसी हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने ई० स० 1050 से 1200 ई० के बीच इसका रचनाकाल माना है। चर्यापद की भाषा में मैथिली, असमिया, बग भाषाओं का भी पूर्वाभास मिलता है। सभवतः जिस मागधी से ये भाषाएं निकली हैं 'चर्यापद' की भाषा उसी प्रत्न मागधी अपभ्रंश के विभाजन के समय की भाषा है। 'चर्यापद' के कतिपय गीतों को यदि प्रत्न ओडिआ मान लें तो 13 वीं श० तक ओडिआ भाषा का पर्याप्त विकास हो गया था। 15 वीं श० में कपिलेंद्र देव के शासन-काल में शूद्रमुनि सारलदास ने ओडिआ में 'महाभारत' की रचना की थी, जो सभवतः प्रादेशिक भाषाओं में भारत में प्राचीनतम है। चर्यापद और सारलदास के युग के बीच के विकास को जानने का हमारे पास कोई साधन या प्रमाण नहीं है। किन्तु 'महाभारत' जैसे प्रबंध काव्य की रचना केवल एक समृद्ध एवं सुनिश्चित भाषा के द्वारा ही सभव है, इतना असदिग्ध है। केवल इतना कहा जा सकता है कि अनेक प्रकार की विषमताओं एवं उत्थान-पतन के बीच वह अन्तःसलिला

पयस्विनी की तरह अनाहत रूप से अवश्य ही प्रवाहित होती रही होगी।

वज्रयानी सिद्धों की भाषा में हिन्दी और ओडिआ का शैशव झलकता है—

भणईलुई आम्हे झाणैं दिठा,

धमण, चमण, वेणि, पिंडि बइठा,

'आम्हे' और 'वेणी' ओडिशा में आज भी प्रचलित हैं, 'बइठा' हिन्दी शब्द है।

डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने चर्या गीतों की भाषा पर शौरसेनी का प्रभाव माना है। यह पश्चिमी मध्यदेश की भाषा थी। सर जार्ज ग्रियर्सन ने मार्कण्डयक्र के 'प्राकृतसर्वस्व' नामक ग्रन्थ की समीक्षा में कहा है शबर, सौरसेनी और उड्देश में प्रचलित देशी भाषाओं का सम्मिश्रण होने से ओडि भाषा का जन्म हुआ। इसकी पुष्टि में 'प्राकृतसर्वस्व' के ओडी दोहों को उद्धृत किया है।

10वीं और 12वीं शती के बीच बगाल से पजाब तक पर्यटन करनेवाले नाथ योगियों की रचनाओं में दोनों की झलक मिलती है।

गोरख वाणी में कहीं ओडिआ का स्वरूप दिखाई पड़ता है—'गरब न करिबा, सहजैं रहिबा, भणत गोरख राव', तो कहीं हिन्दी का प्रारूप झलकता है—

अवधु पवन सों काया मन सो प्राण
परम पुरिस का धरिये ध्यान।
सहज स्थान धरि काल सौं रहे
ऐसा विचार मछिन्द्र कहे॥

तो कहीं दोनों का प्रयोग एक ही साथ हुआ है—

अवधु रहिबा हाटे बाटे रुख बिरख की छाया।
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह ससार की माया।

यहां 'रहिबा' 'तजिबा' आदि ओडिआ रूप हैं, 'बिरख की छाया' और 'ससार की माया' हिन्दी रूप हैं।

9वीं श० में ययाति केशरी ने कन्नौज से दस हजार ब्राह्मणों को वैतरणी तट पर अश्वमेध यज्ञ कराने के लिए आमन्त्रित किया था तथा बाद में उन्हें वहां बसाया था। इन ब्राह्मणों की मातृभाषा वर्तमान कन्नौजी का कोई रूप एव मध्यकालीन अर्ध प्राकृत का कोई विकसित रूप रहा होगा। इसने उस प्रारंभिक काल में ओडिआ भाषा के निर्माण में अवश्य ही प्रभाव डाला होगा। 14वीं श० के लगभग मध्यदेश में सपादित 'प्राकृतिव पैंगलम' नामक ग्रन्थ में कुछ ऐसे शब्द हैं जिनकी समानता ओडिआ से है।

प्रा० में दोहा सख्या	प्राकृत शब्द	ओडिआ शब्द
47	दुइ	दुइ
48	चारि	चारि
41	तिणि	तिनि
	वासट्ठि	बासठि
	चउसट्ठि	चउसठि
98	तुम्ह	तुम्हे

ओडिआ के वर्तमान कालिक क्रियारूप हसन्ति, हरन्ति, पढन्ति आदि का प्रयोग

भी उसमें हुआ है।

इसी प्रकार बनारस और कन्नौज के गढवाल नरेश गोविन्द चन्द्र (सन् 1114 से 1145 ई०) के शासन-काल मे प० दामोदर विरचित उक्ति व्यक्ति प्रकरण नामक व्याकरण ग्रन्थ मे कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं जो आज भी ओडिआ मे व्यवहृत है।

उ० व्य० से प्राप्त	सस्कृत	ओडिआ
कमार	कर्मकार	कमार
कहाणी	कथानिका	कहाणी
गुणिआ	गुणिक	गुणिआ
राति	रात्रि	राति
सुआर	सूपकार	सुआर
नद्द वाढी	नदी वर्धिक	नइ बढी

12वी श० मे श्री रामानुजाचार्य द्वारा ओडिशा मे वैष्णव भक्ति का प्रचार हुआ। पुरी मे वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार से जयदेव के गीतगोविन्द से प्रभावित ओडिआ जनता बडी सख्या मे मथुरा-वृन्दावन की यात्रा करने लगी। वहा की भाषा को अपनाने लगी। ओडिशा मे ब्रज बोली के प्रधान प्रवर्तक राय रामानन्द (16वी शताब्दी) हैं। ओडिआ भक्ति साहित्य म ब्रजबोली के प्रसिद्ध गायको का विशिष्ट स्थान है।

मुस्लिम शासन के अतर्गत जब ओडिशा भी आ गया, तब पूर्वी मध्यदेश से मुस्लिम बस्तिया आकर ओडिशा के विभिन्न अचलो मे विशेष रूप से तटवर्ती प्रदेशो म बस गई। ये लोग उर्दू का प्रयोग करते थे। उर्दू वस्तुत अरबी-फारसी शब्द-बहुल हिन्दी ही है। ओडिशा की मुस्लिम बस्तिया आज भी उर्दू का प्रयोग करती है, यद्यपि इसम स्थानीय प्रभाव अधिक है। ओडिआ भाषा म ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं। सबुज (हरारग) फारसी 'सब्ज' । बालेश्वर, कटक, भद्रक आदि प्रदेशो मे स्थानीय बोलियो पर उर्दू शैली का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पडता है। न्यायालय और शासन सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्द मध्यदेश से आए हैं। उपन्यासकार फकीर मोहन सेनापति (सन् 1843-1917 ई०) के उपन्यासो मे उर्दू-मिश्रित ओडिआ का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

सत्रहवी शताब्दी के अतिम चरण मे ओडिशा मे मुगल साम्राज्य के कमजोर हो जाने पर ओडिशा मे मरहट्ठो का शासन स्थापित हो गया। मरहट्ठा के दरबारो मे प्रशासनिक भाषा के रूप मे हिन्दी और उर्दू को मान्यता प्राप्त थी। ओडिआ पर मराठी का भी प्रभाव पडा।

ओडिआ के षष्ठी रूपो (अमर, तमर आदि) के समान हिन्दी सार्वनामो का षष्ठी रूप (हमारा, तुम्हारा) दिखाई पडता है। उद्भव की दृष्टि से दोना सस्कृत मे निकली है। सस्कृत के तत्सम रूप दोनो मे समान हैं। सस्कृतनिष्ठ ओडिआ और सस्कृतनिष्ठ हिन्दी मे कोई विशेष अन्तर नही है।

हिन्दी और ओडिआ के इतने निकट होने पर भी ओडिआ एक स्वतत्र भाषा है। उसकी निजी विशेषताए उसे स्वतत्र व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। द्रविड भाषा परिवार का प्रभाव मिलता है। गग शासन (1111 से 1434 ई०) द्रविड शासन है। ओडिशा के स्वरूप निर्माण मे आदिम जातियो का प्रदेय भी महत्त्वपूर्ण है। रक्षणशील वनि

के कारण ओडिआ में प्राचीन संस्कृतेतर शब्द आज भी यथावत विद्यमान हैं अतः वह अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक प्रकृत है। भारत आर्य परिवार की सभी भाषाओं में ओडिआ शुद्धतम है। फारसी-अरबी का प्रभाव बहुत कम है। संस्कृत के अधिक निकट है। बोलचाल की ओडिआ में शब्द या तो शुद्ध संस्कृत के हैं या इतने कम घिसे हुए हैं कि आसानी से पहचानने जा सकते हैं। अतः प्राचीनतम ध्वनियों, शब्द-रूपों का संरक्षण इससे होता रहा है।

लिपि

ओडिआ लिपि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह प्राचीन भारत की ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई है। ई० पू० तीसरी श० से 18वीं श० तक वह विकास के कई स्तरों से गुजरी है। इसके बाद क्रमशः यह गोलाकार ओडिआ लिपि में परिणत हो गई है। ओडिआ लिपि की उत्पत्ति और विकास के मूल में ओडिशा में प्रचलित विविध लिपियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। लिपि-विकास का ऐतिहासिक विवरण इस प्रकार है।

(1) ब्राह्मी लिपि—जउगड़ एवं धउलिगिरि में अशोक के शिलालेख (ई० पू० 3 सदी)।
उदयगिरि स्थित खारवेल के हाथी गुफा शिलालेख (ई० पू० पहली सदी)।
(2) कुशान ब्राह्मी—भद्रक स्थित गण का शिलालेख (ई० तीसरी सदी)
(3) गुप्त लिपि—धर्मराज का सुमण्डल ताम्रपत्र (570 ई०), लोक-विग्रह का कणास ताम्रपत्र (600 ई०), शिवराज का परिमा विला ताम्रपत्र (602 ई०) माधवी वर्मा का गंजाम ताम्रपत्र (620 ई०)।
(4) कुटिल लिपि—गंग, भौम, कर और सोम राजाओं के शिलालेख (8वीं, 11वीं श०)।
(5) दक्षिण नागरी—उरजाम शिलालेख—(सन् 1051 ई०)।
(6) ग्रन्थ और तामिल—भुवनेश्वर का द्विभाषिक शिलालेख (1261 ई०)।
(7) नागरी—श्री कुर्मेश्वर शिलालेख (सन् 1403 ई०)।

ओड़िआ और देवनागरी लिपि—ओडिआ और देवनागरी का विकास एक ही सूत्र से हुआ है। यद्यपि ओडिआ वर्णमाला 'प्रत्न' वर्गीय के अंतर्मुक्त है फिर भी प्राचीन ओडिआ के खुदे हुए लेखों में नागरी का प्रभाव भी देखा जाता है। समय-समय पर 'प्रत्नवर्गीय' लिपि में लिखे हुए ओडिशा के उत्कीर्णित लेखों में नागरी के अनेक अक्षर मिलते हैं। ओडिशा में नागरी लिपि का प्रचलन प्रायः 7वीं-8वीं सदी से मिलता है। उसका कारण शैलोद्भव, सोम, पाडुवंशीय शासकों आदि के द्वारा सांस्कृतिक दिशा-निर्देश एवं यज्ञानुष्ठान के लिए मध्यदेश से ब्राह्मणों को बुलाकर वहां बसाना है। 13वीं श० के बाद जो लिपि और भाषा ओडिशा के शासन-कार्य में व्यवहृत हुई है, वही उत्कलीय भाषा और लिपि है। संस्कृत-प्रधान होने के कारण कई ताम्रपत्रों में उत्तर भारत में प्रचलित नागरी लिपि प्रयुक्त हुई है। दोनों लिपियों में सिर्फ आकृतिगत साम्य ही नहीं; वर्णमाला का क्रम वर्गीकरण, ध्वनिमूल आदि की भी समानता है।

डा० कुंज बिहारी त्रिपाठी निर्णीत प्रथम ओडिआ शिलालेख—वज्रहस्त देव द्वितीय के उरजाम शिलालेख (1051 ई०) की लिपि दक्षिण नागरी है। ओडिशा मे प्रथम पर्याय मे इस दक्षिण नागरी का व्यापक प्रयोग दिखाई पडता है। सन् 1403 ई० मे श्री कर्मेश्वर मंदिर मे खुदे शिलालेख की लिपि आधुनिक नागरी से मिलती है। कुछ ओडिआ अक्षरो का नागरी अक्षरो के साथ इतना सादृश्य है कि शीर्ष भाग पर कुहली के बदले रेखा खीच देने पर वे सब सहज ही नागरी हो जाएगे।

ग्रियर्सन ने आकृतिगत समानता एव ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर लिखा है—

The Maithili and Bengali alphabets are derived from Buhles proto-Bengali. The Oriya alphabets are on the contrary, derived from Nagari and probably reached Orissa directly from the West

ओडिआ लिपि तमिल, तेलुगु, बगला या नागरी किसी एक लिपि से नही जन्मी। ब्राह्मी लिपि से गुप्त, कुटिल और प्रोटो बगला होती हुई तमिल और नागरी लिपियों के प्रभाव से ओडिआ लिपि की सृष्टि और उसका विकास हुआ है। देव नागरी लिपि सस्कृत, हिन्दी, मराठी और नेपाली भाषाओ की भी लिपि है। अत केवल नागरी लिपि के साथ उसको घनिष्ठ रूप से जोड देना ठीक नही है। वस्तुत 'ताडपत्र' पर लिखने की प्रथा होने के कारण ओडिआ लिपि का यह 'गोल' स्वरूप बना है। क्योकि ताडपत्र पर नुकीली वस्तु से लकीर नही खीची जा सकती। तिब्बती धर्मशास्त्रो मे 'वार्तु' नामक एक लिपि का प्रयोग हुआ है। इसका प्राचीन ओडिआ लिपि के साथ बडी समानता है। प्राचीन काल मे ओडिशा एव तिब्बत के बीच धार्मिक सम्बन्ध था। उड्डियान पीठ से बौद्ध गुरु और सिद्धाचार्य धर्मप्रचार के लिए तिब्बत गए थे। सभवत धर्म-परपरा मे प्रतिष्ठा पाने के लिए उन्होने प्रोटो ओडिया और वार्तु लिपि मे सम्बन्ध स्थापित किया हो।

जो भी हो, ओडिआ और नागरी लिपि मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। ओडिआ भाषा पर इतर भाषाओ के प्रभाव के कारण ध्वनि, वर्ण की दृष्टि से हिन्दी ध्वनि एव वर्ण-माला से किंचित् अन्तर दिखाई पडता है, पर दोनो की ध्वनि एव वर्णमाला एक सी है। दोनों अक्षरात्मक हैं। दोनो मे प्रत्येक वर्ण अक्षर द्योतक है। दोनो लिपियो मे दो प्रकार के वर्णो-स्वर और व्यजन की व्यवस्था है। दोनो मे अक्षर गुणो (छदशास्त्र) के लिए सकेत चिह्न हैं। दोनो मे व्यजन के दो रूप वर्ग्य और अवर्ग्य हैं। वर्ग्य समुदाय मे पाच समापर 'क' वर्ग, 'च' वर्ग, 'ट' वर्ग, 'त' वर्ग, और 'प' वर्ग सम्मिलित हैं। इनका उच्चारण-क्षेत्र कठ, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य और ओष्ठ्य है।

गाधीजी ने भारत की विभिन्न भाषाओं के लिए एक ही लिपि—देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए कहा था। एक सर्वभारतीय लिपि के रूप मे देवनागरी को प्रयोग करने से पहले उसमे ध्वनि सम्बन्धी कुछ सस्कार आवश्यक है। 13वी-14वी सदी मे ओडिआ भाषा के वास्तविक लेखन के लिए नागरी लिपि मे जैसा सस्कार परिकल्पित हुआ था, अब सब भारतीय भाषाओ की अभिव्यक्ति के लिए वैसे एव ऐतिहासिक लिपि सस्कार की आवश्यकता है।

ओडिआ भाषा-भाषिओ द्वारा हिन्दी मे किए गए कार्य—प्राचीन काल से आधुनिक काल तक

ओडिआ और हिन्दी साहित्य का विकास—प्राचीन काल के अतिरिक्त प्राय अन्य युगो मे ओडिआ और हिन्दी साहित्य का विकास प्राय एक-सा रहा है, इसका कारण परिस्थितिया का एक समान होना है। प्राचीन काल म दोनो मे अन्तर इसलिए दिखाई पडता है कि जब विदेशियो के आक्रमण से सारा उत्तरापथ प्रताडित और पदाक्रांत हो गया था, तब अपनी प्राकृतिक सुरक्षा योजना—सुदृढ शासन के कारण कलिंग या उत्कल सुरक्षित रहा। यद्यपि दोनो म विभिन्न युगो के समय मे किंचित् अन्तर है।

12वी शती मे रामानुजाचार्य द्वारा पुरी म वैष्णवीय मठ की स्थापना एव वैष्णवीय भक्ति का प्रचार व प्रसार हुआ। 16वी शती मे चैतन्य देव मुसलमान शासित बगाल से हिन्दू शासित ओडिआ मे तीर्थाटन के लिए आए और वही रुक गए। चैतन्य देव ने पचसखा के ज्ञान योग मिश्रित वैष्णव भक्ति के स्थान पर प्रेमाभक्ति का प्रचार किया। इस मधुरा भक्ति को जयदेव की पदावलियो से रसमय सान्द्रता और मासलता मिली। चैतन्यदेव के पूर्व जयदेव व निम्बार्काचार्य ने प्रेमा भक्ति का प्रचार किया था, पर उसका इतना प्रसार नही हुआ था। बाजे के साथ नृत्य करते हुए सकीर्तन करने की रीति चैतन्यदेव न चलाई, जिसे जनप्रिय होने मे देर न लगी। अपनी मातृभाषा म राधा-कृष्ण की मधुर प्रेम लीलापूरित गीतो से वह जाति आत्म विस्मृत हो उठी। लोग बडी सख्या मे मथुरा वृन्दावन की यात्रा करने लगे। वहा की भाषा (ब्रज) म काव्य रचना करने मे मानो होड-सी लग गई। ब्रजबोली मे रचना करन की एक नई शैली चल पडी जिसके प्रवर्त्तक राय रामानन्द थे। महाप्रभु चैतन्य देव एव राय का सवाद प्रसिद्ध है। ओडिआ कवियो द्वारा रचित ब्रजबोली के पदो मे भावावेश की गभीरता, भक्त हृदय की विह्वलता तथा छदो का माधुर्य दिखाई पडता है।

(1) **राय रामानन्द पट्टनायक**—राय रामानन्द पट्टनायक प्रताप रुद्रदेव (ई० 1479 1535) के सेनापति थे। आपके पिता श्री भवानन्द पट्टनायक वैष्णव थे। वे केवल शुद्धाभक्ति के ही अन्यतम अनुरागी नही थे। वरन् साथ ही अच्छे कवि, कुशल गायक, नृत्य-अभिनय-कुशल, कलाप्राण, तत्त्वदर्शी महात्मा थे। रामानन्द की पदावलिया ब्रजबोली साहित्य म उच्चकोटि की मानी जाती हैं। यद्यपि आज उनकी विरचित समस्त पदावलिया उपलब्ध नही हैं, किन्तु सौ से अधिक पदावलिया श्री प्रियरजन सेन ने प्रकाशित की है। 'मैथिली साहित्य का इतिहास' म डा० जयकात मिश्र ने रामानन्द की पदावलियो के बारे मे लिखा है—

> "It contains more than hundred beautiful lyrics on devotion *to Krishna and is in many ways far superior to the average* Brijbuli poems Its Maithili is mixed with Brijbhasha, Oriya and Bengali [1]"

महाप्रभु चैतन्यदेव ने राय रामानन्द के जिस पद को सुनकर उनकी तत्त्वदर्शिता की सराहना की थी वह इस प्रकार है। 'चैतन्य चरितामृत' से उद्धृत—

"पहिलहि राग नयन मग भेल।
अनुदिन बढ़िल अवधि न गेल॥

न सो रमण न ह्याम रमणी ।
दुहु मन मनोभव पँसल जानि ॥
हे सखि सो सब प्रेम कहानी ।
कानुठा मे कहवि विछुरइ वानी ॥
न खोजिलि दोति ना खोजिलि ग्रान ।
दुहुक मिलाने मध्यूत पाच वाण ॥
ग्रब से विराग तुहु भेली दोति ।
सुपुरुष प्रेमिका एँछन रीति ॥
वर्द्धन रुद्र नराधिप मान ।
रामानन्द राय कवि भाण ॥

इसमे मैथिली ब्रज, ग्रोडिग्रा एव बगला भाषा का मिश्रित रूप प्रयुक्त हुग्रा है। इनका सस्कृत मे लिखा नाटक 'श्री जगन्नाथ वल्लभ' प्रसिद्ध वैष्णव ग्रथ है।

(2) **राजकवि प्रतापरुद्र देव**—ग्रोडिशा के सूर्यवशीय राजा प्रताप रुद्रदेव चैतन्य देव के समकालीन थे। महान पराक्रमी, योग्य नरेश होने के साथ ही ये सस्कृत के विद्वान थे। 'सरस्वती विलास' ग्रौर 'प्रताप मार्तंड' ग्रादि ग्रथ इन्होंने सस्कृत मे लिखे हैं। सभवत चैतन्यदेव से प्रभावित होकर ये ब्रजबोली की ग्रोर ग्राकर्षित हुए हों। ब्रज-बोली मे इनके कुछ पद मिलते हैं—

चन्द्रमुखि मानिक डोले रे।
हीरादत ग्रमीयक बोले रे।
वयारे रे भाई गउरे।
दयालु विनु ग्रानन न भावे रे।
सुनहु सखि ग्रान मिलाव रे।
प्रतापरुद्र राया, यह रस गावे रे।

(3) **दामोदर चपति राय**—श्री दामोदर चपति राय रामचन्द्रदेव (सन् 1576-1609 ई०) के समसामयिक थे। उन्होंने ब्रजबोली मे श्री कृष्णचरित लिखा है।

घन घन गर्जन ग्रम्बर घोर
चउ दिगे चमकई विजुलि जोर
ग्रहर्निश झाम्पइ मत्त मयोर
धुनि शुणि हियरा कम्पई मोर
ग्रबहु विसरि गये नागर मोर

(4) **ग्रति बडी जगन्नाथ दास**—थी चैतन्य देव के मित्र तथा पच सखा मे म एक हैं। जगन्नाथ दास एव उनके भागवत का ग्रोडिया जातीय जीवन पर वैसा ही गहरा प्रभाव है जैसा तुलसी एव रामचरितमानस का हिन्दी क्षेत्र पर। ग्रोडिग्रा ग्रौर बग्ला के साथ इन्होंने प्राचीन हिन्दी म रचनाए की हैं—

यमुना तीरे धीरे चलू माधव
मद मधुर वेणु बाग्रई रे।
इदीवर-नयनी वरज वधू कामिनी
सदन तजई वन धावई रे॥

असित अंबुधर असित सरसीरुह
अतसी कुसुम अहिमकर सुतानीर
इन्द्र नील मणि-उदार मरकत
श्री निंदित बपु आभा रे ॥

(5) **दीन कृष्ण दास**—इनकी रचना 'रस कल्लोल' अपनी रसालता, अगाध प्रेम, आवेगमयी अनुभूति, तरल मसृण शैली के लिए प्रसिद्ध है। अनेक काव्य-ग्रंथों एव फुटकर कविताओं की भी आपने रचना की है। इन्होंने हिन्दी में कुछ कविताएं की हैं—

सावरी नव गौरचन्द्र नागर बनवारी।
नवद्वीप इदु करुणा सिंधु भक्त वत्सलकारी ॥
वदन चन्द अधर रग नयन गलत प्रेम तरग।
चन्द्रकोटि भानुकोटि शोभा निउछारी ॥
× × ×
मकर कुडल झलक गड मणि कौस्तुभ दीप्त कठ।
अरुण वसन करुण वचन शोभा अति भारी।
मलय चदन चर्चित अग लाज लज्जित कोटि अनग।
अगद बलय रतन नूपुर यज्ञ सूत्रधारी ॥
छत्र धरत धरणी धरेंद्र गावत यश मगल वृन्द।
कमला सेवित पाद द्वन्द्व बलिये बलिहारी ॥
कहत दीनकृष्णदास गौर चरण करत आश।
पतित पावन निताई चाद प्रेमदान कारी ॥

(6) **बलराम दास**—बलराम दास ओडिशा के 'तुलसी' हैं। उनकी 'जगमोहन रामायण' या 'दाडी रामायण' लोकप्रिय रचना है। ये श्री चैतन्यदेव के सखा तथा प्रताप रुद्र देव के समकालीन थे। ओडिआ और संस्कृत के साथ हिन्दी और बगला का भी आपको ज्ञान था। हिन्दी मे इन्होंने कुछ पद लिखे है।

कलियुग मत्तमतगज मरदने कुमति करिणी दूर गैल।
पागर दुर्गत नाम मोतिशत दाम कठ करि नेल।
अपरूप गौर विराज
श्री नवद्वीप नगर गिरि कदरे उदग केशरी राज,
त्याग याग यम तीरथ बरत शम शशजकुकी जरियाति
बलराम दास कह विजय जगमह हरिधुनि शवद खिम्राति।

(7) **अनन्त दास**—16वीं सदी के निर्गुण भक्ति मार्ग के ये प्रसिद्ध कवि हैं। बगला और हिन्दी मे भी आपकी कतिपय कविताएं मिलती है।

विकच सरोज भान मुखमडल दिठि भगिम नटखज जोर
किये मृदु माधुरी हास उगारई पीपी आनन्द आंख पडलहि भार ॥
बरनि ना जाय रूप बरण चिकणिया, किये धनपुज किये कुवलयदल
किये काम किये इन्द्र नील मणिया ॥
कुंचित केश वेश कुसुमावली
सिर पर शोभ शिखी चाद किये छादे।

अनत दास वह अपरूप लावणि
सकल युवति मन पडिगेल फादे ।

(8) **उद्धव दास** 17वीं शती के उत्तरार्द्ध या 18वीं शती के पूर्वार्द्ध के कवि थे। इनकी 'गीतगोविन्द' (जयदेव कृत) की टीका एक सुन्दर रचना है। हिन्दी कविताओं की भाषा भी परिमार्जित है—

मधु ऋतु विहरइ गौर विशोर
गदाधर मुख हेरि आनन्द नरहरि
पुरुष प्रेमे भेल भोर।
नवीनलता नवपल्लव तरुकुल
नवल नवद्वीप धाम।
फुल्ल कुसुम चय झङ्कृत मधुकर
सुखद ये ऋतु पति नाम
. . ..
मनमथ राज साज लई फिरव
वन फूल फल प्रति शोभा।
समय वसते नदियापुर सुन्दर
उद्धव दास मन लोभा

(9) **दिव्य सिंह**—ये खुरधा के नरेश दिव्य सिंह प्रथम हैं। आप कला और साहित्य प्रेमी तथा संपोषक रहे हैं।

जब धरि पेखलु कालिंदी नीर।
नयनुझरय बत्त वारि अथिर।
काहे कहब सखि मरमक खेद।
चित्त ही ना भाय कुसुमित सेज।
नव जलधर जिन वरन उजारे।
हेरत हृदिमह पैठम मोर।
दिव्य सिंह कह सुन ब्रजरामा।
राई कान्ह एकतनु दुहु एक ठामा॥

(10) **पुरुषोत्तम अनग भीमदेव**—पुरुषोत्तम अनग भीमदेव बडखेमुडी के राजा थे। इनका समय ई० सन् 1729-1776 है। इनकी रचनाओं में कुछ हिन्दी कविताएं भी मिली हैं।

रमणी शिरोमणि रामा। मउन भाव कौन कामा।
निंदा करे निशि चदा, गरल सम नील मकरदा
चदन हू पीहु के विना कैसे जिअ पुरुषोत्तम भीम अनगा।

(11) **सालबेग**—सालबेग 16वीं शती के सन्त कवि थे। वे मुसलमान थे। उनके पिता लालबेग मुसलमान सेनापति थे तथा माता अपहृता ब्राह्मणी कन्या थी। वे मुसलमान कृष्णभक्त कवि थे। युवावस्था में ही युद्ध में क्षत-विक्षत हो उन्होंने घोर यन्त्रणा पाई थी। जगन्नाथजी की कृपा से वे रोगमुक्त हुए थे। उसके बाद वैरागी के रूप में अपना शेष जीवन उन्होंने श्रीक्षेत्र में बिताया था। भक्त हृदय के भावोच्छ्वास अत्यन्त काव्यमय है।

जय जय राधे गोपाल गोपागना रे
शीस मोरमुकुट नट, शोहे कटि पीत पट।
किंकिणि अधिक सोहा अोना रे
भाल वेशर तिलक, काने कुडल झलक।
अधर धर मुरली सुस पाओ ना रे।

(12) **माधवी दासी**—श्रीमती माधवी दासी श्री चैतन्यदेव के अतरग भक्तो मे से एक हैं। ये भक्त शिखी महान्ति की बहन थी और शुद्धाभक्ति मार्ग की अनुगामिनी थी। सभवत इनका जन्म पुरी मे हुआ था। नारी सुलभ प्रेम विह्वलता इनके पदा म मिलती है।

राधा माधव बिलसई कुजक माझ
अतनु तनु सरस परश रस
पीवई कमलिनी
मधुकर राज

(13) **चाद कवि**—चाद कवि दामोदर चम्पति राय के समकालीन थे। इन्होंने भी ब्रजबोली मे श्रीराम, कृष्ण और श्री जगन्नाथ की महिमा का गान किया है। ये रामचन्द्रदेव (ई० सन् 1578 1607) के समसामयिक थे।

(14) **यदुपति**—राजा नरसिंहदेव के (1605-1635) समसामयिक थे। उन्होने ब्रजबोली मे नरसिंह की प्रशस्ति गाई है।

सर्व अवनी पूति विक्रम शकति विविध रग रति बिहरतिया।
लावण्ये गजति लाख राजनीपति गौरवे और की गरिपतिआ।
देवी भानुमती रसवती सगति विविधरग रति विहरतिआ।
नीलगिरि को पति चरण कमले मति विजय तु नरसिंह नरपतिआ
उदिनले नृप नरसिंह धरणि तल।

(15) **कन्हाइ खुटिआ**—ये श्री चैतन्यदेव के समसामयिक थे। इनकी रचना का नाम 'महाभाव प्रकाश' है। इन्होने ब्रजबोली मे कतिपय पदो की रचना की है।

(13) **वशीवल्लभ मिश्र**—मुगलकाल, 18वी सदी का अतिम चरण। वे ब्राह्मण थे। पिता सत्यनारायण मिश्र गोस्वामी तथा मा सत्यवती देवी थी। फारसी भाषा मे प्रवीण थे। उन्होने फारसी मे कई लाक-नाट्य लिखे है। इनके लिखित 'मोगल तामसा', 'फकीर तामसा' और 'राधाकृष्ण तामसा' चैत महीने मे अभिनीत हाते हैं। इसलिए इन्हे 'चैती-तामसा' कहते है।

शिव वन्दना

जय हटेश्वर महिमा सागर मदिर शोहे चऊतारा।
त्रिशूल ऊपर बाना उटे घेरत धटकत है पारा॥
उधोग नाशी मुक्तक दासी जटा जुट गगतेरा।
अधीन वल्लभ दीन ही भावै जय हट नागर वमभोला॥

× × ×

भिश्ती के प्रति

बदजात भिश्ती वाला अब तक न लाया पानी।

पानी बिगैर हमारा हयरान परेशानी ॥
गोस्ताखी करके दिल में करता है बेइमानी ।
दरमा न मिलेगा जब तक न लावे पानी ॥

(17) रामदास (ई० 1730-1800)—'दाढ़यता भक्ति रसामृत' नामक ओड़िया भक्तमाला की रचना की है।

सिद्धन को छूटत ध्यान, मानिनी सब तजतमान
ग्यानी को भूल्यो ज्ञान, योगी मन भटक्यो
कहत प्रवीन श्रीराम, नव जलधर सुन्दर श्याम,
छिनतु हैं कोटि काम, मेरो मन में अटक्यो ।
× × ×
पीतपट पहरे पीत पछोरी उघारे
गोवर्द्धन धारे नन्द के दुलारे,
कहत हैं श्रीराम, रटतु है वाही नाम,
मेरो प्राण प्यारे मुरली वाले ॥

(18) जगबन्धु हरिचन्दन (समय ई० सन् 1740-1770)—आठगढ़ (गंजाम जिले के अन्तर्गत) के राजा थे । बाल गोपाल के उपासक थे ।

सुगन्ध गन्ध झर झर, मधुर मधुर बहे समीर,
तरुगन सब छन छन छन, लह लह लह
पल्लव सब होइये ।
लपट सब लता जाल या पर सब पक्षी माल,
छुटकत सब डाल डाल
कोयल सब कुहु कुहू कुहू—कोलाहल होइए
× × ×
जगबन्धु गुन गुन गुन, वृन्दावन किये वन्दन
बलीहारी बार बार वृन्दावन वास है ।
× × ×
महीभार निवारण जन्म लियो जो मोहन
पूरन ब्रह्म सनातन बैकुंठवास वासा
पुतुवा को ओहि मारे, शकटा चरन को तोड़े
तृणा को मथारे जो घेरि रन में डाला
कहे जगबन्द बली—श्रीकृष्ण सदा प्रकटि वृन्दावन
नवघन कान्हु काला ।

(19) कविचन्द्र दर्शसिंह रायगुरु—(इनि राजा सोमनाथ सिंह से) ये मनगुल (ढेंकानाल जिले के अन्तर्गत) के अन्तिम राजा सोमनाथ सिंह के समसामयिक थे ।

साहेब कहे सुन दारास राए
कहाँ पर तुमको सूनी चढ़ाए
कारे उहाँ प मोल भराए
घाट बाट सूनी नाट की जाए ।

राजा तुम क्या मन कहे जल्दी राची जाम्रो
विप्र श्रेष्ठ कविचन्द्र कहे विधि लिहि वाम को पाम्रो।

(20) श्री विप्र प्रह्लाद राय—सबलपुर राजा जयन्त सिंह के दरबारी कवि थे। 'जयचन्द्रिका' प्राचीन हिन्दी मे लिखी रचना है।

कोशल मे मुखमान महानद पाटन मे बसुधा बसुधाई
सबलपुर पवित्र पुरी, प्रह्लाद कहे मोही वर्णन ना जाई।
× × ×
कौशल्य मुख्य सबलपुर देशा, जहा बसत चौहान नरेशा।
बसे नगपुर गदी सीमाहि, जेहिं छबी जम्बो द्वीप सो नाही।।
चित्रोत्पल गढ बहे बढतीरा, अह उपजे मन कथन हीरा।
शस्त्र मशास्त्र पूरन पुरबासी, विद्या मे मन लहरें काशी।।
अलकापुरी पटान्तर देशा, पहुचे नाही पापु के लेशा।
आपु बैठी सिजो समलाई, ताते समलपुर कहाई।।
बसे सहर छतीसों जाति, महारम्य सो भावहु भाति। आदि

(21) श्री ब्रजनाथ बडजेना ढेकानाल निवासी थे। पिता का नाम बालुंबेश्वर था। बडजेना त्रिलोचन महेंद्र बहादुर के दरबारी कवि थे। इनका रचनाकाल सन् 1730 ई० से 1800 ई० के बीच माना जाता है। ये छ प्रादेशिक भाषाओं के पंडित थे। उनकी हिन्दी रचना 'गुंडिचा विजय' है। 'समस्तरस' की भाषा ग्रोडिया और खरोष्ठी मिश्रित है। अपने समय के युद्ध का वर्णन बडजेना के अतिरिक्त और किसी ओडिआ कवि ने नही किया है। ये ओडिशा के भूषण हैं। रीतिकाल मे इनकी वीर रसपूर्ण रचनाओं का विशेष महत्व है।

'गुंडिचा विजय' हिन्दी मे रचित खड-काव्य है। इसमे जगन्नाथजी की रथ-यात्रा का वर्णन है।

दाखिल है रथ खेचनदार, केतो गाओ के हैं असुमार।
कूदत दौडत मन सुख सो गावत नाचत कोई मानम,
खीचने रथ को होए तुरग, भाव मे पुलकित जिनके अग।

आधुनिक काल

(1) डॉ० कुन्तला कुमारी साबत (सन् 1900-1938)—ओडिशा की सुप्रसिद्ध कवयित्री एव उपन्यासकार हैं। इनकी रचनाओं मे देश-प्रेम, भक्ति, उदार मानवता और सर्वोपरि एक तरल प्रेम-मय नारी-हृदय की अभिव्यक्ति हुई है। डाक्टरी उनका पेशा था। सन् 1928 के लगभग इन्होंने दिल्ली मे प्रवास किया था। तथा कुछ हिन्दी पत्रिकाओं का सपादन भी किया था। 'वरमाला' हिन्दी रचना है जिसम गीतो का सकलन है। इन्हे हिन्दी के साहित्य क्षेत्र मे भी सम्मान प्राप्त था।

(2) स्वर्गीय गोलोक बिहारी धल (ढेकानाल 1921 ई०)—'ध्वनि विज्ञान' के अधिकारी समीक्षक है। आगरा के हिन्दी प्रशिक्षण केन्द्र मे कुछ दिनो के लिए अध्यापक भी रहे हैं। हिन्दी मे इन्होने 'ध्वनि विज्ञान' लिखा है। एक और बालपयोगी रचना 'पेट की हवा मुह की बात' मे इन्होंने ध्वनि सिद्धातो को सरल और सुबोध रूप म समझाया है। प्रेमचन्दजी के उपन्यास गोदान, प्रेमाश्रम और गबन का इन्होंने ओडिआ

में अनुवाद किया है।

ढेंकानाल, कटक के रेवेंसा कालेज, लंदन विश्वविद्यालय में आपने शिक्षा प्राप्त की।

(3) श्री विच्छन्द चरण पट्टनायक—आपका जन्म पुरी जिले के याला गाव में 20 जनवरी, 1901 ई० को हुआ था। ये अंग्रेजी में ऑनर्स तथा एल-एल० बी० हैं। ...ने 'प्राची' पत्रिका का प्रकाशन किया। कटक में वकालत भी की। मेधावी छात्र प्रतिभावान, सफल शिक्षक रहे। गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' का ...िशा भागवत वृत्त में एवं विनय-पत्रिका का 'ओडिशी संगीत' वृत्त में अनुवाद किया ...ो मधुर एवं सुन्दर हैं।

(4) श्री महेश प्रधान—ये उत्कल विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष। इन्होंने कुछ दिनों तक चीन जाकर हिन्दी अध्यापन का काम भी किया है।

(5) तारिणीचरणदास—ये रेवेंसा कॉलेज में हिन्दी के रीडर हैं। रचनाएं—(1) मन की बातें, (2) कला और साहित्य, (3) इतिवृत्त तथा अन्य कविताएं, (4) चिन्तन और अनुचिन्तन, (5) मामा (फकीर मोहन सेनापति)।

(6) वनमाली दास—ये उत्कल राष्ट्रभाषा प्रचार से सम्बद्ध रहे हैं। ओडिशा ...विश्वविद्यालयों के लिए इन्होंने पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया है।

(7) सुरेश नन्दा—हिन्दी अध्यापक हैं। हिन्दी और ओडिआ दोनों में इनकी ...सिंशात्मक रचनाएं हैं।

(8) गोपालचन्द्र प्रहराज—पूर्ण चन्द्रभाषा कोश—संस्कृत, ओडिआ, हिन्दी, ...चना चार भाषाओं में यह शब्द-कोश है।

(9) श्री निहार पात्र—'ओडिआ हिन्दी कोष' अत्यंत लघु है।

(10) अध्यापक दुर्गाचरण पट्टनायक—वाराणसी हिन्दी विश्वविद्यालय में ...ध्यापक हैं। रचना—मेघाक्रान्त।

(11) श्री नीलमणि मिश्र—क्यूरेटर, ओडिशा म्यूजियम, भुवनेश्वर। रच...—(1) ओडिआ नाटक और रंगमंच, (2) उत्कलीय राम-साहित्य।

(12) डा० अजयकुमार पट्टनायक—हिन्दी अध्यापक—महाराजा पूर्णचन्द्र कॉलेज। डा० पट्टनायक ने 'स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी और ओडिआ उपन्यासों का ...मक अध्ययन' विषय पर अनुसंधान कर डाक्टरेट की उपाधि पाई है।

(13) जोगेश्वर त्रिपाठी—राउरकेला। इन्होंने गंगाधर मेहर के 'तपस्विनी' ...का हिन्दी में अनुवाद किया है।

इनके अतिरिक्त अध्यापक रघुनाथ महापात्र (खल्लिकोट कॉलेज, ब्रह्मपुर) ...सुरेशचन्द्र नन्द, (शैलबाला कॉलेज-कटक), अध्यापक वनमाली दास (फकीर मोहन ...ज, बालेश्वर), डाक्टर अपर्णा प्रधान (प्रिंसिपल—हिन्दी ट्रेनिंग कॉलेज, भुवनेश्वर) ...हिन्दी में कार्य कर रहे हैं।

...डिआ से हिन्दी में अनुवाद .

(1) श्री फकीर मोहन सेनापति के दो उपन्यास 'लछमा' और 'छ माण आठ ...' हिन्दी में अनूदित हुए हैं। (साहित्य एकादेमी)

(2) केन्द्रीय सरकार द्वारा पुरस्कृत ओडिआ उपन्यास (अमृतर सन्तान)

(श्री गोपीनाथ महान्ति) तथा 'माटिर मणिष' (श्री कालिन्दी चरण पाणिग्राही) हिन्दी मे अनुवाद हो चुका है। दोनो ही केन्द्रीय साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित

(3) श्री कपिलेश्वर प्रसाद ने ओडिया की चालीस श्रेष्ठ कहानियो का हि मे अनुवाद प्रस्तुत किया है।

(4) श्री चन्द्रमैन कुमार जैन ने प्रसिद्ध ओडिआ कवि श्री राधानाथ र के 'चिलिक' खडकाव्य का हिन्दी मे रूपान्तरण किया है। यह उत्कल प्रान्तीय रा भाषा पत्रिका मे धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुआ है।

(5) नील शैल (ले० श्री सुरेन्द्र महान्ति)—अनु० श्रीनिवास उद्गा (ने० बु० ट्र०)

(6) ओडिआ गल्पमाला—अनु० डॉ० एस० महापात्र (ने० बु० ट्र०)।

(7) शास्ति (ले० कान्हुचरण महान्ति)—अनु० केशवचन्द्र सामल।

(8) माटि मटाल(ले० गोपीनाथ महान्ति)—अनु० श्री शकरलाल पुरोहि (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन)।

(9) हरेकृष्ण प्रधान—इन्होने गोपबन्धुदास के 'धर्मपद' काव्य का हिन्दी अनुवाद किया है।

ओडिशा म हिन्दी के प्रति पर्याप्त अभिरुचि दिखाई पडती है। ओडिशा हिन्दी मे अनुवाद की स्थिति भी सतोषप्रद है। ओडिशा मे हिन्दी के अध्यापन कार्य अनेक व्यक्ति सलग्न हैं। उससे हिन्दी साहित्य का प्रसार हो रहा है। ओडिशा पत्र पत्रिकाओ मे हिन्दी साहित्य मे सम्बन्धित लेख, समीक्षा आदि प्रकाशित होते हैं। प हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र म ओडिशा के प्रति वह आकर्षण नही दिखाई पडता है। कारण विविध हो सकते हैं। हिन्दी सपर्क भाषा होने के कारण राष्ट्रीय स्तर पर उसके प्रचार के लिए जो सुविधाए, आर्थिक, प्रशासनिक सहायता प्राप्त है वह अन्य [illegible] नहीं है। यह आवश्यक भी है। आंशिक रूप से ओडिआ लिपि [illegible] विस्तार मे बाधक है। सरकारी स्तर पर या विश्वविद्यालयों मे विभा [illegible] पूरी सफलता नही मिल सकती। किसी भी अभियान को कार्यकर्ता का उत्साह एव भावनात्मक लगाव ही वैयक्तिक एव अप्रशासनिक स्तर पर उसे सफल बनाते हैं, तब सरकारी और गैर-सरकारी सुविधाए पूरक सिद्ध होती हैं। देवनागरी लिपि में ओडिआ पुस्तकों का प्रकाशन इस दिशा मे अधिक सहायक होगा। अनुवाद की अपेक्षा कही अधिक सख्या मे हिन्दी क्षेत्र के लोग इसके द्वारा ओडिआ भाषा से परिचित हो सकते है।

उत्तर मध्यकाल मे श्री भूपति पडित ने ओडिआ मे रचना की है ('भूपति चउतिशा', 'प्रेमपचामृत' आदि) निस्सदेह—ओडिआ भाषा पर उनका असाधारण अधिकार दिखाई पडता है। भाषा सरल, सशक्त, परिष्कृत एव सुष्ठ है। उत्कलीय कृष्णभक्ति धारा मे 'प्रेम पचामृत' का बहुत ऊचा स्थान है। खेद का विषय है कि इस दिशा में उस प्रकार का प्रयास अत्यल्प दिखाई पडता है। सम्प्रति हिन्दी पत्र पत्रिकाओ मे ओडिआ कविता-कहानियो का अनुवाद, कुछ परिचयात्मक लेख आदि कभी-कभी प्रकाशित हो जाते है, पर इतना पर्याप्त नही है। ओडिशा मे रहने वाले हिन्दी-भाषियो द्वारा इस क्षेत्र म अधिक अभिरुचि एव सक्रियता प्रदर्शित होनी चाहिए।

नये पाठक वर्ग का निर्माण करने के लिए हिन्दी ओडिआ स्वय-शिक्षक जैसी

पुस्तकों की आवश्यकता है। वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा ऐसी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, पर इससे भी अधिक प्रयत्नों की जरूरत है।

ओडिशा मे हिन्दी-प्रचार का कार्य

सन् 1937 ई० मे वर्धा मे सर्व-भारतीय हिन्दी प्रचार-सस्था की स्थापना के वर्षों पहले, भाषा-सम्बन्धी यह स्वदेशी आन्दोलन (सम्पर्क भाषा के रूप मे अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी का प्रयोग) उत्कलमणि गोपबधुदास द्वारा ओडिशा में स्थान पा चुका था। उनकी इच्छा थी कि सन् 1932 ई० में पुरी मे होनेवाले काग्रेस के अधिवेशन का सारा काम हिन्दी में हो। इसी उद्देश्य से उन्होने स्थानीय स्वय-सेवको को हिन्दी सिखाने के लिए कलकत्ता से श्री अनुसूया प्रसाद पाठक को बुलाया था। हिन्दी शिक्षा का काम बडे उत्साह से प्रारभ हो गया, किन्तु राजनीतिक कारणों से काग्रेस का अधिवेशन रुक गया और तीन हजार ओडिआ काग्रेसी कार्यकर्ताओ के साथ श्री पाठक भी बन्दी बनकर पटना जेल मे पहुच गए। पाठकजी जेल में ही ओडिआ राजबंदियों को हिन्दी की शिक्षा देते रहे। छ महीने की सजा काटकर वे कटक पहुचे और स्थानीय सहयोग से घर-घर हिन्दी शिक्षण का कार्य करने लगे। सन् 1933 ई० में राधानाथ रथ तथा कतिपय अन्य प्रभावशाली नेताओ के द्वारा 'उत्कल प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना हुई। कार्यालय और पाठागार का भी प्रबन्ध हुआ। इस प्रकार हिन्दी प्रचार का काम व्यवस्थित रूप से होने लगा। स्थानीय नागरिको एव स्वयसेवको से पूरा सहयोग मिला। सर्वप्रथम सन् 1934 ई० मे प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षा मे 7 परीक्षार्थी बैठे। सन् 1936 ई० में ब्रह्मपुर में भी एक और केन्द्र खुला।

सन् 1938 मे ओडिशा मे काग्रेस की सरकार बनी और उसीके साथ शिक्षा विभाग ने सभी स्कूलो मे हिन्दी पढाने का आदेश दिया। श्री आर्त वल्लभ महान्ति की सहायता से पाठ्य पुस्तकें बनाई गईं। सन् 1940 ई० मे काग्रेस सरकार के भग होते ही हिन्दी की पढाई बन्द हो गई। पर स्थानीय प्रोत्साहन के कारण सभा के कार्य म विस्तार आता गया। इसी समय डा० कुन्तला कुमारी सावत तथा कुछ अन्य विद्वानों न हिन्दी मे रचना की।

सन् 1946 ई० मे फिर से काग्रेस सरकार बनी। सन् 1947 मे भारत स्वतन्त्र हुआ। ओडिशा के प्रथम मुख्यमत्री श्री हरेकृष्ण महताब तथा शिक्षा मत्री श्री लिंगराज मिश्र ने हिन्दी-प्रचार के कार्य को प्रोत्साहन दिया। राष्ट्रभाषा प्रचार सभा को प्रशासन की ओर से आर्थिक सहायता दी गई। स्कूलो मे हिन्दी को अनिवार्य विषय बना दिया गया। सम्प्रति सभा के पास अपना एक भवन, एक हिन्दी पुस्तकालय तथा प्रेस है। प्रचार केन्द्रो की सख्या मे भी सन्तोषप्रद वृद्धि हुई है। लोगो मे हिन्दी के प्रति आकर्षण बढ़ा है। सन् 1950 ई० के बाद—सविधान मे हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लेने के बाद हिन्दी प्रचार का कार्य केन्द्रीय सूची के अन्तर्गत आ गया। केन्द्रीय सरकार ने अहिन्दी भाषी राज्यो मे केन्द्रीय सस्थाए स्थापित की है। इस कार्य मे पहले से सलग्न सस्थाओ को वित्तीय सहायता दी गई तथा राज्य सरकारों को इसे प्रोत्साहित करने को कहा गया।

ओडिशा में हिन्दी-प्रचार का कार्य दो रूपो मे होता है। सरकारी तथा गैर-

सरकारी अथवा अर्ध-सरकारी।

सरकार की नीति के अनुसार राज्य के सभी विद्यालय में चौथी कक्षा से ही हिन्दी पढ़ाई जाती है पर यह परीक्षा का अनिवार्य विषय नहीं है। मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा में अहिन्दी भाषा-भाषियों के लिए एक वैकल्पिक विषय है। अनुमानतः 20 प्रतिशत ओडिआ विद्यार्थी इसका लाभ उठाते हैं। सभी माध्यमिक एवं उच्च विद्यालयों में एक हिन्दी शिक्षक की नियुक्ति अनिवार्य होती है। हिन्दी शिक्षकों के प्रशिक्षण की दो संस्थाएं हैं, जिनसे प्रतिवर्ष सौ से अधिक प्रशिक्षित हिन्दी शिक्षक निकल रहे हैं। सन् 1956 से स्नातक स्तर तक हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था हो गई है। आजकल करीब 15 सरकारी और दस गैर सरकारी महाविद्यालयों में इसका प्रबन्ध है। जिनमें हिन्दी अध्यापन की व्यवस्था नहीं है वहां भी एक विषय के रूप में हिन्दी को मान्यता प्राप्त है। उत्कल विश्वविद्यालय में हिन्दी में एम० ए० है तथा इसने हिन्दी में एक वर्षीय सर्टिफिकेट कोर्स भी प्रारंभ कर दिया है। गैर-सरकारी या अर्ध-सरकारी संस्थाओं को इस कार्य के लिए अनुदान दिया जाता है।

गैर-सरकारी संस्था के रूप में उत्कल राष्ट्रभाषा प्रचार सभा सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। इसके अन्तर्गत 450 परीक्षा केन्द्र हैं, जिनमें वर्धा-राष्ट्रभाषा प्रचार सभा द्वारा आयोजित विभिन्न परीक्षाओं (प्रथम से रत्न) तक में 15 हजार विद्यार्थी प्रतिवर्ष भाग लेते हैं। इनके अध्यापन का प्रबन्ध भी सभा की ओर से किया जाता है।

पुरी में 'पुरी हिन्दी परिषद' नामक एक अन्य संस्था इस दिशा में कार्य कर रही है। कटक, भुवनेश्वर, बालेश्वर, सम्बलपुर, पुरी आदि स्थानों पर हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने वाली कुछ संस्थाएं चल रही हैं। कुछ सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं और कुछ को आर्थिक सहायता मिलती है।

ओडिशा में हिन्दी छाया-चित्र बड़े लोकप्रिय हैं। इस दृष्टि से हिन्दी के प्रसार में इनका भी योगदान है। सिनेमाघरों में 80 प्रतिशत हिन्दी छाया-चित्रों का ही प्रदर्शन होता है। हिन्दी प्रदेशों के साथ अनेक रूपों में ओडिआ लोगों का आवागमन बढ़ गया है। इससे ओडिशा के परिवारों में हिन्दी का प्रवेश हो रहा है। हिन्दी पुस्तकों विशेषकर उपन्यासों की मांग बढ़ रही है। सभी रेलवे बुक स्टालों पर हिन्दी पुस्तकें नजर आएंगी। प्रायः सभी शिक्षित व्यक्ति थोड़ी-बहुत हिन्दी बोल लेते हैं। कम से कम 25 प्रतिशत ओडिशी जनता हिन्दी समझती है। इस प्रकार शहरों से लेकर ग्राम्यांचल तक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिन्दी का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है।

7

हिन्दी साहित्य को बंगाल की देन

डॉ० अशोक कुमार भट्टाचार्य

हिन्दी प्रदेश से बंगाल का सम्बन्ध न केवल प्राचीन है अपितु घनिष्ठ भी। सम्बन्ध-सूत्र का धरातल धार्मिक भी रहा और सामाजिक भी। महाप्रभु श्री चैतन्यदेव के पश्चात् गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त श्रीकृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन-मथुरा की यात्रा तब भी जिस प्रेमोन्माद से करते थे अब भी उतनी ही आतुरता से करते हैं। कहना अनुचित न होगा कि बंगला वैष्णव काव्यों में 'मथुरापुरी', 'मथुरा नगरी', 'मधुपुरी' उल्लेख जिस प्रकार हुआ है उससे सहृदय चित्तवृत्तिवाला पाठक भ्रम में पड़ जाता कि यह पुरी बंगाल ही में है। वस्तुतः कृष्णदास कविराज के ग्रन्थ 'चैतन्य चरितामृत' । ब्रजमण्डल और गौड़मण्डल के प्रेम-बन्धन का अन्यतम दृढ़ सूत्र मानना उचित ही गा। वैष्णवेतर भक्त और सामान्य यात्री भी मथुरा-वृन्दावन की यात्रा प्रेमपूर्वक रते रहे हैं। प्रयाग और काशी का आकर्षण भी धार्मिक बंगालियों के लिए कम नहीं । यही कारण है कि मथुरा-वृन्दावन में, इलाहाबाद और बनारस में अनेक बंगाली रिवार स्थायी रूप से बस गए हैं।

पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार बंगाल में बहुत पहले ही हुआ था। इसके प्रभावाधीन गाली नवयुवकों में सामाजिक निषेधों ('टैबू') पर विजय पाने की इच्छा प्रकट हुई। तर जाति के शव को स्पर्श तक करना निषिद्ध था, लेकिन मेडिकल कॉलेजों में शिक्षित युवक डॉक्टरी शिक्षा प्राप्त करने के लिए शव-व्यवच्छेद करने लगे। धीरे-धीरे मेडिकल कॉलेजों में प्रशिक्षित अनेक बंगाली डॉक्टर हिन्दी प्रदेश में जा बसे। केवल डाक्टर ही नहीं, वकील, विलायत से लौटे बैरिस्टर आदि धीरे-धीरे उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार में फैल गए थे। पड़ोसी प्रान्त बिहार में घनिष्ठ सम्बन्ध का कारण भौगोलिक तो था ही, सामाजिक भी कम नहीं था। भागलपुर में रहकर प्रसिद्ध बंगाली उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय, विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय, बलाइचाँद मुखोपाध्याय ('वनफूल') ने अमर साहित्य सर्जना की। इन साहित्यिक कर्मों के कारण सामाजिक सम्बन्ध और भी निविड़ बन गया।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देने के लिए विचार-परम्परा का सूत्रपात बंगाल में ही हुआ था। इस दिशा में कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज का बड़ा हाथ है। 1805 ईस्वी में यहीं से तारिणीचरण मित्र ने 'बैताल पचीसी' का सम्पादन करके छपवाया। 'ओरियण्टल फेबुलिस्ट' नामक बहुभाषिक ग्रन्थ के (अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला) संस्करण भी निकाले। 1810 ईस्वी में मित्र महोदय फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के हेड मुंशी बने और 1830 तक बराबर हिन्दी गद्य में

विभिन्न विषयों पर लिखते रहे। हिन्दी गद्य को तत्कालीन शासन की भाषा व प्रादेशिक भाषा के समानान्तर रखने के लिए तारिणीचरण ने जो श्रम किया, सार्वदेशिक सामान्य भाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता दिलाने के लिए जो लगन दिखाई वह निस्सन्देह स्तुत्य है।

कालानुक्रम से राजा राममोहन राय का नाम तारिणीचरण मित्र के बाद आता है परन्तु विषय गाम्भीर्य के विचार से पहले। 1815 ईस्वी में, जबकि हिन्दी गद्य का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, राममोहन ने हिन्दी गद्य को मान्यता दी, 'वेदान्त सार' नामक अपने वेदान्त विचारात्मक ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद किया और उसकी प्रतियाँ निःशुल्क बटवाईं। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से पढ़े लिखे लोगों के मन में मूर्तिपूजा जातिभेद, अस्पृश्यता आदि के प्रति अश्रद्धा हो रही थी। राजा साहब स्वयं प्रगतिशील विचारों के समर्थक थे। शुद्ध ब्रह्मोपासना का प्रवर्तन करने के लिए उन्होंने ब्रह्म समाज (बंगला में 'ब्राह्म समाज') की नींव डाली। ई० 1830 के आसपास उन्होंने हिन्दी में 'बंगदूत' नाम का एक समाचारपत्र निकाला और वर्षों बड़े अध्यवसाय के साथ उसका सम्पादन करते रहे। 'राजा साहब की भाषा में एक आध जगह कुछ बंगलापन जरूर मिलता है, पर उसका रूप अधिकांश में वही है जो शास्त्रज्ञ विद्वानों के व्यवहार में आता है। नमूना देखिये—

'जो सब ब्राह्मण सांग वेद अध्ययन नहीं करते सो सब व्रात्य हैं, यह प्रमाण करने की इच्छा करके ब्राह्मण-धर्म-परायण श्री सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी ने जो पत्र सांग वेदाध्ययन हीन अनेक इस देश के ब्राह्मणों के समीप पठाया है, उसमें देखा जो उन्होंने लिखा है—वेदाध्ययन हीन मनुष्य को स्वर्ग और मोक्ष होने शक्ता नहीं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल)।

हिन्दी साहित्य के विकास में चिरस्मरणीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की देन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिका 'कवि वचनसुधा' में पहले पुराने कवियों की कविताएं ही छपा करती थीं, पर पीछे गद्य लेख भी छपने लगे। विद्यासागर के लेख समय-समय पर 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित होते रहते थे। इन लेखों में विद्यासागर का हिन्दी साहित्य प्रेम प्रकट है, साथ ही उनकी संवेदनशील चित्तवृत्ति तथा विश्लेष संश्लेषणात्मक रचना-शैली की झांकी भी इन निबन्धों में मिलती है।

बंगाल के सुप्रसिद्ध लोकसेवक आचार्य केशवचन्द्र सेन ब्राह्ममत के अनुयायी थे, समाज-सुधार के लिए इन्होंने अनेक निबन्ध लिखे। देश भर में भाषागत एकता के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के समर्थन में केशवचन्द्र ने जोरदार शब्दों में प्रचार भी किया। ईस्वी 1875 में केशवचन्द्र ने अपने 'सुलभ समाचार' में घोषित किया था, 'यदि एक भाषा के न होने से भारत में एकता नहीं होती तो और उपाय ही क्या है?—सारे भारतवर्ष में एक ही भाषा का व्यवहार करना एकमात्र उपाय है। अभी जितनी भाषाएं भारत में प्रचलित हैं उनमें हिन्दी भाषा ही प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इसी हिन्दी को यदि भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बना लिया जाए तो अनायास ही यह (एकता) शीघ्र सम्पन्न हो सकती है। 'भाषा एक न होने पर सम्भव नहीं है।' (राष्ट्रभाषा प्रचार सर्वसंग्रह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा) राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत आचार्यजी के इन तर्कपूर्ण निबन्धों से राष्ट्रभाषा आन्दोलन को कितना बल मिला इसका अनुमान करना कठिन नहीं है।

बिहार की जनता आभार मानती थी। प० अम्बिका दत्त व्यास की निम्नलिखित कविता इस प्रसग मे उल्लेखनीय है :—

पूरबी गीत

धन्य धन्य गवर्नमेण्ट। परजा सुखदायी।
जामनीव दूर करी। नागरी चलाई॥ 1॥
'भुवनदेव' करि प्रचार। लाट निकट जाई।
परजा दुख दूर करहु। जामनी दुराई॥ 2॥
नाना विधि जोस होत। जामनी मे राई।
परजा मन हरष होत। विद्या निजपाई॥ 3॥
धन्य बुद्धि धन्य विचार। धन्य मन्तर भाई।
करि न्याय हिन्द बीच। हिन्दुई चलाई॥ 4॥
परजा नित सुयश गाव। अम्बिका मनाई।
जब लौं चन्द सूर्य रहे। राज रहे भाई॥ 5॥

हुकुम सरकारी भइल
रे नर सिखो नागरिया॥ टेक॥
जामन जीव देहु दुराई
पढि गुन काज करो नरहरिया॥ 1॥
ले पोथी नित पाठ करहु अब
जामनी ग्रन्थ देहु पंसरिया॥ 2॥
जब लो नागरी आवत नाही
कैथी अच्छर लिख कचहरिया॥ 3॥
धन्य 'मन्त्री' प्रजा हितकारी
अम्बिका मनावत राज विक्टोरिया॥4॥

(भूदेव मुखोपाध्याय—बगीय साहित्य परिषद)

अपनी 'सामाजिक प्रबन्ध' शीर्षक निबन्धो की पुस्तक मे जहा कही भी प्रसग आया, भूदेव ने अपने इस मत की पुष्टि की कि भारत जैसे विशाल देश मे भिन्न भिन्न प्रान्तो के विविध भाषा-भाषियो मे एकता स्थापित करने के लिए हिन्दी ही एकमात्र साधन है, "भारतवर्ष के अधिकाश व्यक्ति हिन्दी मे कथोपकथन कर सकते हैं। अत जिस बैठक मे केवल भारतवासी ही हैं वहा अग्रेजी का प्रयोग न कर हिन्दी मे ही बातचीत करनी चाहिए।" (सामाजिक प्रबन्ध—भूदेव मुखोपाध्याय)

उत्तर प्रदेश के कई नगरो मे बगभाषी हिन्दी प्रेमियो ने हिन्दी साहित्य-सर्जन मे हाथ बटाया। सन् 1844 मे तारामोहन मित्र के सम्पादकत्व मे आगरे से 'बनारस अखबार' प्रकाशित हुआ था। हिन्दी प्रदेश से निकलने वाला यह प्रथम पत्र था। पत्र की लिपि नागरी थी परन्तु भाषा अरबी फारसी से आक्रान्त रहती थी। इसके 6 वर्ष बाद सन् 1850 मे तारामोहन मित्र के उद्योग से और उन्ही के सम्पादकत्व मे काशी से 'सुधाकर' नामक पत्र प्रकाशित हुआ। इस पत्र की भाषा बहुत कुछ सुथरी हुई थी। इस पत्र के सम्पादन-काल मे तारामोहन ने भाषा-सम्बन्धी सिद्धान्तो में बड़ा साहस व धैर्य दिखाया। हिन्दी के सस्कृतनिष्ठ रूप का समर्थन किया और उसीमे

अपने लेख लिखते रहे।

हिन्दी साहित्य के विकास में प्रयाग के इण्डियन प्रेस का योगदान एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यहां से बहुत स्मरणीय ग्रन्थ निकले जिनके प्रकाशन प्रयत्न में घोष परिवार की देन उल्लेखनीय है। इण्डियन प्रेस के मैनेजर बाबू गिरिजाकुमार घोष थे जो हिन्दी में 'लाला पार्वतीनन्दन' के नाम से लिखा करते थे। इनकी हिन्दी कहानियों में भाषा का अपेक्षाकृत परिनिष्ठित रूप देखने को मिलता है। मिर्जापुर निवासी बाबू रामप्रसन्न घोष की सुपुत्री और बाबू पूर्णचन्द्र की धर्मपत्नी ने 'बंगमहिला, के उपनाम से बहुत-सी कहानियों का बंगला से हिन्दी में सफल अनुवाद किया, हिन्दी में कुछ मौलिक कहानियां भी लिखीं। इनमें से एक 'दुलाईवाली' शीर्षक कहानी थी जो ई०1907 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। हिन्दी की प्रारम्भिक मौलिक कहानियों में 'दुलाईवाली' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। कहानी भाव-प्रधान है और शैली में मार्मिकता है। हिन्दी कहानियों के प्रारम्भिक काल में एक ऐसी मौलिक कहानी लिखने का श्रेय एक बंगाली महिला को मिला, यह निस्सन्देह गौरव की बात है।

ऊपर हमने हिन्दी साहित्य को बंगाल की प्रत्यक्ष देन के बारे में चर्चा की, कुछ महापुरुषों ने परोक्ष रूप में हिन्दी भाषा व साहित्य के विकास में योगदान दिया। 'आनन्दमठ' के रचयिता और 'वन्देमातरम्' के मन्त्रद्रष्टा बंकिमचन्द्र इनमें से एक हैं। बंकिमचन्द्र ने अपने 'बंगदर्शन' में ई० 1877 में लिखा था, "हिन्दी भाषा की सहायता से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों के बीच जो लोग ऐक्यबन्धन स्थापित कर सकेंगे वे ही सच्चे भारत-बन्धु कहलाने योग्य होंगे।"

ऋषि अरविन्द ने 'धर्म' में लिखा था, "भाषा के भेद से देश की एकता में बाधा नहीं पड़ेगी। सब लोग अपनी मातृभाषा की रक्षा करते हुए हिन्दी को साधारण भाषा के रूप में अपनाकर इस भेद को नष्ट कर देंगे।"

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था, "बहुत वर्षों से अंग्रेजी हमारी राष्ट्र-भाषा बनी हुई है जो साधारण जनता की समझ से परे है। अगर हम हर भारतीय के नैसर्गिक अधिकार को स्वीकार कर लेते हैं तो हमें उस भाषा को (राष्ट्रभाषा के रूप में) ग्रहण करना चाहिए जो देश के सबसे बड़े भाग में बोली जाती है और जिसे स्वीकार करने के लिए महात्माजी ने हमसे आग्रह किया, अर्थात् हिन्दी। इसी विचार से हमें एक भाषा की आवश्यकता भी है।" (कलकत्ता हिन्दी क्लब बुलेटिन, सितम्बर 1938)। इसी वर्ष अर्थात् ई० 1938 में सुभाष चन्द्रबोस ने वर्धा की हिन्दी ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट के दूसरे अधिवेशन में भाषण देते हुए कहा था, "हिन्दी का प्रचार ..... इसलिए किया जा रहा है कि यह बहुत ही व्यापक रूप में बोली और समझी जाती है और भाषा विचार से सरल तथा नम्य है। इसकी शैली सरल तथा स्वाभाविक अवश्य होनी चाहिए। हम एक मिश्र भाषा के निर्माण का प्रयत्न नहीं करना चाहिए जो कि न तो हिन्दी, न उर्दू और न हिन्दुस्तानी हो। जो भाषा उत्तर में सामान्यतया बोली जाती है वही हमारी भाषा का प्रमाप रहे।" (एडवास, 30-7-1938)। हिन्दी की इस कसौटी की ओर सुभाषचन्द्र ने जो संकेत किया वह निस्सन्देह ध्यान देनेयोग्य है।

हिन्दी में सम्भवतः बंगला से ही सर्वाधिक ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। इन अनूदित ग्रन्थों की पूरी सूची बनाना इसलिए कठिन है कि प्रसिद्ध और अर्ध-प्रसिद्ध ग्रन्थों का अनुवाद तो हुआ ही, अपेक्षाकृत कमप्रसिद्ध पुस्तकों का भी अनुवाद हुआ।

भारतेन्दु युग मे और उससे कुछ पूर्व बगला उपन्यास व नाटको का सफल अनुवा प्रारम्भ हुआ और यह शृखला अभी बनी है। सक्षेप मे कह सकते है कि बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय, ताराशकर बन्धोपाध्याय आदि 'चिरायत' (क्लासिकल) साहित्यकारो के प्राय समस्त ग्रन्थो का हिन्दी मे अनुवा हुआ है। 'यह तो सर्वविदित ही है कि देश और समाज के प्रति नवीन भावो को जन्म देने की दृष्टि से उन्नीसवी और कुछ समय तक बीसवी शताब्दी मे बगाल ने नेतृत्व प्रदान किया। अत बगला उपन्यासो का हिन्दी मे अनुवाद किया जाना स्वा भाविक ही था।" (हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—नागरी प्रचारिणी सभा) भारतेन्दु-युग मे बकिमचन्द्र के अतिरिक्त रमेशचन्द्र दत्त, स्वर्णकुमारी घोषाल, भूदे मुखोपाध्याय (जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है), राधिकानाथ बन्द्योपाध्याय, नारायणदा मौलिक आदि की कृतियो का अनुवाद उल्लेखनीय है। "बगाल मे सबसे पहले आधुनि शिक्षा का प्रसार होने से वहा नाटकक्षेत्र मे विशेष उन्नति हो गई थी। वहा के देशी विदेशी धनिक वर्ग और विद्वानो ने इस कला को उच्च शिखर पर पहुचा दिया था स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी बगाल यात्रा मे वहा के नाटको से कुछ प्रभाव ग्रहण किया और 'विद्यासुन्दर' की बगला के माध्यम से रचना की।" (हिन्दी साहित्य क बृहत् इतिहास—नागरी प्रचारिणी सभा)। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "सत्यहरिश्चन्द्र मौलिक समझा जाता है, पर हमने एक पुराना बगला नाटक देखा है जिसका वह अनुवाद कहा जा सकता है। कहते है कि 'भारत जननी' उनके एक मित्र का किया हुआ बगभाषा मे लिखित 'भारत माता' का अनुवाद था जिसे उन्होंने सुधारते-सुधारते सारा फिर से लिख डाला।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास)।

अनूदित नाटकों के प्रसग म एक बात और कहना आवश्यक है कुछ नाटको के अनुवाद मूल कृतियो के समान ही लोकप्रिय हुए। उदाहरण के तौर पर डी० एल० राय (द्विजेन्द्रलाल राय) के नाटक लिए जा सकते हैं। 'शाहजहा', 'दुर्गादास', 'ताराबाई' आदि कई नाटक ऐसे है जो मूल रचनाओ के समान आकर्षक बने थे और साधारण हिन्दी भाषी पाठक अनूदित रूपो को ही मूल मानते रहे।

बगला छोटी कहानियो (छोटी गल्प) का भी हिन्दी मे अनुवाद कम नही है। रवीन्द्रनाथ, शरत्चन्द्र, विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, बलाइचाद मुखोपाध्याय (बनफूल) आदि लेखको की सैकडो कहानियो का हिन्दी मे अनुवाद हुआ है और अब भी हो रहा है। कुछ प्रसिद्ध बगला कहानी-सग्रहो का दूसरे या तीसरे सस्करण के साथ ही साथ हिन्दी अनुवाद का सस्करण भी निकला और काफी लोकप्रिय भी रहा।

बगाल मे हिन्दी-प्रचार के हेतु रचित पुस्तकें मुख्यत व्याकरण, अनुवाद-शिक्षण व विद्यालयों की पाचवी से आठवी श्रेणियो के पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। स्कूली कोर्स की किताबो का उल्लेख यहा अप्रासगिक होगा, क्योंकि वे हिन्दीतर प्रान्त मे हिन्दी प्रचार के उद्देश्य से रचित नही हुई। शेष दो कोटियो की पुस्तकें—व्याकरण और अनुवाद शिक्षण-सम्बन्धी—पश्चिम बग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जैसी स्वैच्छिक हिन्दी सस्थाओ के अध्यापको (या प्रमाणित प्रचारको) द्वारा लिखी गईं। इनका माध्यम प्रान्तीय भाषा बगला है, उदाहरण के वाक्य हिन्दी के हैं। ऐसी पुस्तको के रचयिताओ मे श्री रेवती रजन सिंह, श्रीविधुभूषण दासगुप्त आदि उल्लेखनीय हैं, कोरा ग्रन्थकार

के रूप में श्रीगोपाल वेदान्तशास्त्री उल्लेखनीय हैं। इन्होंने हिन्दी बंगला-कोश प्रकाशित कर एक बड़े प्रयोजन की पूर्ति की। अशोककुमार भट्टाचार्य (प्रस्तुत निबन्ध के लेखक) की 'हिन्दी वाग्भंगी' में बंगला के माध्यम से हिन्दी मुहावरों के तत्त्व को समझाने का प्रयास है। यहा पर यह कह देना आवश्यक है कि ऊपर जो सूची दी गई है वह सम्पूर्ण नहीं है, क्योंकि प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक वर्षों से बंगाल के बाहर रहे हैं और उस प्रदेश में आए दिन नया साहित्य-सर्जन हो रहा है। अतः उपर्युक्त उल्लेख इन सीमाओं के कारण भी क्षम्य है।

आलोचनात्मक और शोध प्रबन्धों के प्रसंग में सबसे पहले आचार्यप्रवर डा० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय का नाम उल्लेखनीय है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में डा० चट्टोपाध्याय मूर्त प्रेरणा-स्वरूप हैं और गिनाना कठिन है कि कितने शोध कर्ताओं को भारत में तथा भारत के बाहर, हिन्दी में तथा हिन्दीतर भाषाओं में, आचार्य सुनीति कुमार ने अनुप्राणित किया। अहमदाबाद से प्रकाशित उनकी 'इण्डो-एरियन एण्ड हिन्दी' तथा कलकत्ते से प्रकाशित 'लेंग्वेजम् एण्ड लिट्रेचरस् आफ मॉडर्न इण्डिया' तुलनात्मक भाषा विज्ञान तथा साहित्य पर शोध करनेवालों के लिए सन्दर्भ-उत्स है। आचार्यजी ने समय-समय पर भारत के विभिन्न स्थानों में हिन्दी भाषा तथा साहित्य के सम्बन्ध में हिन्दी में जो तथ्यपूर्ण भाषण दिए थे उनका संकलन अभी संभवत प्रकाशित नहीं हुआ। इस दिशा में प्रयत्न होना चाहिए।

कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा शान्तिनिकेत स्थित विश्वभारती में अनेक बंग-भाषी शोध-कार्य कर चुके हैं और कर भी रहे हैं। शुद्ध हिन्दी साहित्य सम्बन्धी अथवा तुलनात्मक हिन्दी-बंगला साहित्य विषयक कई शोध-प्रबन्ध स्वीकृत भी हो चुके हैं। सामान्य भाषा विज्ञान पर अथवा तुलनात्मक भाषा विज्ञान पर भी कई स्वीकृत शोध-प्रबन्ध हैं जो हिन्दी में प्रस्तुत किए गए हैं।

8

हिन्दी साहित्य को असम की देन

डॉ० कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'

'असम' नाम अपेक्षया नवीन और आधुनिक है। इरावदी नदी के मैदानी भागों म बसी शान अथवा टाइ जाति की एक शाखा—आहोमों ने पाटकोइ दर्रे से इस क्षेत्र मे सन् 1228 ई० के आस पास प्रवेश किया और धीरे धीरे इस प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया। कदाचित् उनकी असम शक्ति के कारण ही यह प्रदेश असम कहलाया। एक अन्य मत के अनुसार यह नाम प्रदेश की असमान, ऊबड़-खाबड़ भौमिक संरचना का सूचक है। कभी-कभी इसकी व्युत्पत्ति टाइ जाति के 'स्याम' (पराजेय) शब्द से भी बताई जाती है। 'स्याम' म 'अ' जुडने पर 'अस्यम' (अपराजेय) > आस्यम > असयम होकर पीछे आसाम, असाम अथवा असम (अपराजेय) बना। यदि आहोमो से ही 'असम' का सम्बन्ध जोड़ा जाए तो भी यह नाम सात सौ वर्षों का ठहरता है, किन्तु यह इतना पुराना है नहीं। शकरदेव की रचनाओं म 'असम' का प्रयोग नही हुआ है। देश अथवा प्रदेश के अर्थ में 'असम' का प्रयोग "अन्यान्य बहुत-सी चीजों की तरह यह भी ब्रिटिश राज्य की ही देन है।"[1] इसी दृष्टि से यह "केवल सौ साल से कुछ पहले का है।"[2]

असम का प्राचीनतम नाम प्राग्ज्योतिष (राजधानी का प्राग्ज्योतिषपुर) है। पर्जिटर के अनुसार उक्त राज्य का विस्तार करतोया नदी तक था। अनेक पुराण भी इसी मत का समर्थन करते है। प्राग्ज्योतिषपुर का उल्लेख (वाल्मीकि कृत) *रामायण, महाभारत, राजतरंगिणी, कालिकापुराण* इत्यादि मे मिलता है। इस नामकरण के सम्बन्ध म दो अनुमान लगाए जाते हैं—(1) प्राच्य-प्रकाश-नगर अर्थात् पूर्व की ओर प्रकाश का नगर, पूर्व दिशा म सूर्योदय होने के कारण ही कदाचित् यह नाम प्रचारित हुआ होगा। एव (2) कालिकापुराण (51-64) के अनुसार ब्रह्मा ने तारो की सृष्टि यहीं की थी। प्राच्य-ज्योतिर्विज्ञान के पीठ के रूप मे इसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक कभी फैली थी। गुवाहाटी के चित्राचल (चित्र शैल) अथवा अर्वक पहाडी (आजकल नवग्रह पहाडी) पर स्थित नवग्रह मन्दिर किसी प्राचीन वेधशाला की पुष्टि भी करता है।

प्राग्ज्योतिष (अथवा प्राग्ज्योतिषपुर) के पश्चात् भारतीय इतिहास के मध्य काल म इसका एक अन्य नाम कामरूप प्रचलित था। कालिदास ने रघुवंश (6/24) मे प्राग्ज्योतिष और कामरूप दोनो नामो का प्रयोग किया है। कालिकापुराण और योगिनी-तन्त्र मे कामरूप नाम प्रयुक्त हुआ है। ह्वेनत्स्याग और अलबरूनी ने भी कामरूप नाम

---

1 लौहित्य और नीलाचल, हेम बरुवा, पृ० 13।
2 वही, पृ० 13।

के प्रयोग किए है। इस नाम के प्रचलन के सम्बन्ध मे क्या मिलती है कि भगवान शकर के कोप से भस्मीभूत काम ने यहीं रूप प्राप्त किया था, इसीलिए इसे कामरूप कहा गया। यह कमरू और कमरूत्त के रूप मे भी प्रचलित रहा है। सस्कृत-ग्रन्थ हर-गौरी-संवाद मे इसका उल्लेख 'कमरू' नाम से ही हुआ है। मध्यदेश अथवा हिन्दी-क्षेत्र की सामान्य जनता इस मत्र-तत्रों का देश कमरू-कमच्छा के नाम से जानती रही है। डॉ० वाणीकान्त काकति ने कामरूप की व्युत्पत्ति कमरू (kamru—a god of santals) + पउ (pau—a hill) मे मानी है। इस प्रकार कामरूप का अर्थ है—कमरू देवी की पहाड़ी अर्थात कमरू देवी की पहाडियों का देश। चौथी से ग्यारहवी शती तक प्राग्ज्योतिप और कामरूप—प्राय दोनो नाम प्रयुक्त मिलते है एव उसके पश्चात् केवल कामरूप। आजकल कामरूप असम के केवल एक जिले का नाम है जिसका मुख्यालय गुवाहाटी है।

असम के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और सास्कृतिक जीवन को निर्मित करने मे यहा के भूभाग का बहुत बडा हाथ है। लौहित्य अथवा लोहित (असमी लोकगीता मे लुइत) नदी और नीलाचल (जिसपर कामाख्या-मन्दिर निर्मित है) इस प्रदेश के प्राण-सचारक रहे हैं। लौहित्य का ही दूसरा नाम ब्रह्मपुत्र है। विष्णु राभा का अनुमान है कि बोडो शब्द 'बुलुम बुथुर' का सस्कृत रूप ही ब्रह्मपुत्र है जिसका अर्थ है—बुद्-बुद् के पानी से परिपूर्ण नद। आहोम इसे ही 'नाम-दाम्रा-फी' (The river of star god) कहते थे। कहा जाता है कि परशुराम ने अपना खून-सना कुठार लौहित्य मे ही सादिया से लगभग पचास मील पूर्व (अब परशुराम कुण्ड) धोया था जिसम इसका पानी लाल हो गया है। असम के सास्कृतिक विकास की कथा को श्री हेम बरुवा लौहित्य और नीलाचल की कथा ही मानना चाहते है। इसी आधार पर वे इसे लौहित्य और नीलाचल अर्थात् नीललोहित भी कहना चाहते हैं।

असम का हिन्दी-क्षेत्र से सम्बन्ध

असम और प्राचीन मध्यदेश अथवा आधुनिक हिन्दीभाषी-क्षेत्र की धार्मिक, सास्कृतिक और भाषिक एकता एव समान सम्बन्ध-सूत्रता का इतिहास प्राचीन है। कृष्ण-रुक्मिणी-परिणय ही कदाचित् वह प्रथम घटना है जिसे इस दृष्टि से प्रतीक रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। कृष्ण की लीलाभूमि व्रज है और रुक्मिणी-परिणय की भूमि असम। भले ही तर्कसम्मत न हो, पर असम मे प्रबल अनुश्रुति है कि रुक्मिणी यहीं की थी। आज भी बताया जाता है कि उत्तरी गुवाहाटी का अश्वक्लान्त मन्दिर उस स्थान-विशेष पर ही निर्मित है, जहा कुण्डिनपुर से रुक्मिणी-सहित लौटते समय कृष्ण का अश्व क्लान्त हो गया था, परिणामत वहा विश्राम हेतु कृष्ण को रुकना पडा था। या, उक्त स्थान-विशेष के सम्बन्ध मे दूसरी अनुश्रुति यह भी है कि नरकासुर की हत्या के लिए आए कृष्ण के अश्व की टाप से वह भूमि आक्रान्त हुई थी, इसीलिए वह अश्वाक्रान्त है, अश्वक्लान्त नहीं। घटना चाहे कोई भी सच हो, मूल बात है सास्कृतिक एकता की। पुन श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का विवाह भी यहीं शोणितपुर (वर्तमान तेजपुर) की कन्या ऊषा से हुआ था। अर्जुन की दो पत्निया चित्रागदा और ऊलूपी बृहत्तर असम (वर्तमान मणिपुर और नागालैण्ड) की ही थी। भीमसेन की पत्नी हिडिम्बा की जन्मभूमि हिडिम्बापुरी (वर्तमान डिमापुर) भी यहीं थी। चाहे ये सब अनुश्रुतिया ही हो, पर असम के साहित्य और सस्कृति को निर्मित करने और सजोने

मे इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐसे अनेक पुरातत्त्वीय और अन्य प्रकार के प्रमाण भी प्रभास क्षेत्र मे परशुराम कुण्ड (लौहित्य कुण्ड) तक की सास्कृतिक एकता के प्रमाण प्रस्तुत करते है।

कृष्ण एव विष्णु के अन्य अवतारो की पूजा-उपासना की बात तो है ही, इनमे इतर शैव, शाक्त, तत्र, महायान इत्यादि उपासनाओ द्वारा भी असम मध्यदेश मे सम्बन्धित रहा है। काशी हो या कामाख्या, श्रीहट (सिलहट—अब बगला देश मे) हो या सोमपुरी, भारतीया के लिए सभी समान महत्त्व के रहे हैं। मणिकर्णिकेश्वर काशी मे भी है और कामरूप म भी। राजपुताना कभी मध्यदेश का अग रहा है और राउना (राजपुत्र>राजपुता >राअपुता >राओता, राउता) और राउताकुची इत्यादि असम मे भी है। यहा ध्यातव्य है कि आठवी शती से आहोमो के आगमन के पूर्व तक असम का इतिहास प्राय कुहराच्छन्न है जिससे उक्त अवधि के विषय मे अधिकाश तथ्य अनुमानाश्रित है।

राजनैतिक दृष्टि से भी असम मध्यदेश से अनेक बार जुडा रहा है। कृष्ण ने कस की हत्या कर व्रज मे सुशासन की पुन नीव तो डाली ही थी, नरकासुर वध के उपरान्त उसके द्वारा बन्दी बनाई गई सोलह हजार रमणियो को मुक्त कर कृष्ण ने ही प्राग्ज्योतिषपुर (वर्तमान गुवाहाटी) मे भी पहली बार सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था स्थापित की थी। नरकासुर के पुत्र भगदत्त ने भी महाभारत मे भाग लिया था। परशुराम का आतक माहिष्मती से मिथिला तक ही सीमित नही था। उनका खून-सना कुठार लौहित्य-कुण्ड मे धुलने के बाद ही रुका था। कुमार भास्कर वर्मन और हर्षवर्द्धन मे मित्रता थी, यह इतिहास बताता है। ह्वेनत्साग हर्ष के राज्य से भ्रमण करते हुए ही भास्कर के राज्य मे आए थे। औरगजेबी अत्याचार का शिकार मध्यदेश ही नही, कामरूप भी हुआ था। उसके सेनापतियो को शिवाजी ने ही नही, लाचित बरफुकन ने भी भौचक्का कर रखा था।

असम की सीमाए शासन के साथ परिवर्तित होती रही हैं। कोचराज नरनारायण के राज्य की पश्चिमी सीमा बिहार के पूर्णिया जिले तक फैली थी। उसके दरबार मे अनेक क्षेत्रों के विद्वान और कवि समादृत हुए थे। पिछले डेढ सौ वर्षों में भी असम राज्य की सीमाए फैलती सिमटती रही है। इसके बावजूद यह केवल हिन्दी क्षेत्र से ही नही सम्पूर्ण भारत की अन्तरगता से आबद्ध है। खान-पान, रहन सहन, नाटक-प्रहसन, रीति नीति, धर्म-सस्कृति मे यह समग्र भारत, मूलत हिन्दी क्षेत्र से जुडा होकर भी अन्य राज्यो की तरह ही, सभी क्षेत्रो मे, अपनी निजता और विशिष्टता की गरिमा मे मण्डित है।

भाषिक दृष्टि से असम मुख्यत मगही, मैथिली और किंचित् भोजपुरी से अधिक निकट है। *मध्यदेश से भी इसका सम्बन्ध रहा है। यहा की भाषा असमी भारतीय आर्य* परिवार की ही एक भाषा है। भाषाविदा के अनुसार भारतीय आर्यभाषा प्रारम्भ से ही उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या मे विभक्त रही है। उदीच्या के अन्तर्गत पश्चिमोत्तर की बोलिया थी और प्राच्या के अन्तर्गत पूर्वांचल की। दोनों के मध्य की भाषा मध्यदेशीया थी। शूरसेन (मथुरा) प्रदेश और उसके आस-पास बोली जानेवाली शौरसेनी मध्यदेशीया के अन्तर्गत पडती थी।

अपाणिनीय प्रयोगो को ईसा पूर्व दूसरी शती मे पतजलि ने अपभ्रश कहा था।

ईसा की आठवीं शती तक अपभ्रंश की प्रतिष्ठा मानक काव्यभाषा के रूप में हो चुकी थी। अपभ्रंश में भी उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या का किंचित् भेद वर्तमान था। मागधी प्राच्या के अन्तर्गत थी। सातवीं शती के यात्री ह्वेनत्स्याग ने यहां की भाषा को मध्यदेश की भाषा से किंचित् भिन्न पाया था। तात्पर्य यह कि उस समय भाषा-गत साम्य ही अधिक था, वैषम्य कम।

ऐतिहासिक-राजनैतिक-धार्मिक कारणों से अपभ्रंशों में शौरसेनी (अथवा नागर) और मागधी महत्त्वपूर्ण हुईं। सर्वाधिक प्रसिद्धि और व्याप्ति शौरसेनी को मिली। ईसा की 12-14वीं शती में द्रविड को छोड़कर शेष भारत की मानक साहित्यिक भाषा (और सम्पर्क-भाषा) होने का गौरव शौरसेनी को ही मिला। नाटकों में शौरसेनी के समानान्तर मागधी का प्रयोग यह सूचित करता है कि शौरसेनी के पश्चात् दूसरा महत्त्व मागधी को ही प्राप्त था। मागधी के प्रति तिरस्कार का मूल कारण धार्मिक (बुद्ध-वचन का होना) है। यों जहां शौरसेनी लगभग सम्पूर्ण भारत में समादृत थी, वहां मागधी पूर्वांचल में। बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि मागधी-क्षेत्र में आकर शौरसेनी को भी अपना किंचित् रूप-परिवर्तन करना पड़ा था।

मागधी के पश्चिमी रूप से भोजपुरी, पूर्वी रूप से असमी, उड़िया और बगला एवं मानक रूप से मगही और मैथिली के विकसित होने का प्रारम्भिक चरण 12-13वीं शती तक पूरा हो चुका था। इस अवधि में इन भाषा-क्षेत्रों की मानक काव्य-भाषा शौरसेनी ही थी। इक्के-दुक्के प्रयत्न लोकभाषाओं में भी हो रहे थे। इसी अवधि को अवहट्ठ-काल भी कहा जाता है।

मागधी से लोकभाषाओं का विकास होना अभी प्रारम्भ होने ही लगा था कि मागधी के केन्द्र—नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालय जला दिए गए। कटने-मरने के पश्चात् जो थोड़े विद्वान्, पण्डित, धर्माचार्य इत्यादि अपने को बचा सके वे उत्तर में नेपाल, भातगाव, मोरग, तिरहुत एवं पूर्व में बंगाल (राढ, सुह्म, वरेन्द्र), कामरूप की ओर भाग निकले। प्राचीन केन्द्र नालन्दा के नष्ट होने पर नवीन केन्द्र बना बगाल का मालदा जिला। वहीं से समान भाषा-भाषियों की एक टोली पश्चिम की ओर उड़ीसा गई और दूसरी पूर्व की ओर कामरूप। उड़िया और असमी के पारस्परिक अधिक साम्य का यही रहस्य है। इस प्रकार एक ओर जहां मागधी से मगही, मैथिली, असमी इत्यादि का विकास हो रहा था, वहीं उसके साथ-साथ शौरसेनी का किंचित् स्थानीय प्रभावापन्न किन्तु मध्यदेशीय (सर्वभारतीय) रूप का भी। अतः आकस्मिक नहीं कि पूर्वांचल की ब्रजावली, शूरसेन प्रदेश की ब्रजी और पश्चिम की ग्वालियरी एवं पिंगल, शौरसेनी के ही विकसित रूप हैं।

विभिन्न प्रमाणों से यही भी पुष्ट होता है कि उत्तरभारत से विभिन्न समयों में इधर आनेवाली मानव-टोलियां भी यहां बसती रही हैं। फिर अनेक राजाओं ने भी समय-समय पर कान्यकुब्ज, मगध, मिथिला आदि से ब्राह्मणों, कायस्थों इत्यादि को बुलाया-बसाया है। मध्यकालीन असम के सर्वाधिक गत्वर व्यक्तित्व वाले महापुरुष शकरदेव के पूर्वज भी यहां कान्यकुब्ज से ही आए थे। अतः उक्त क्षेत्रों से आनेवालों के साथ वहां की भाषा, संस्कृति एवं अन्य परम्पराएं भी यहां समय-समय पर आती रही हैं। शकरदेव के व्यक्तित्व का अधिकांश भी उन्हीं परम्पराओं से निर्मित था। उनके गत्वरशील व्यक्तित्व ने इसे और भी दृढ़ता एवं विस्तृति प्रदान की होगी। यही कारण

है कि शकरी-साहित्य एव अन्तत समस्त असमी वैष्णव साहित्य के निर्माण म मध्यदेश और उसकी सस्कृति ने महत्त्वपूर्ण पट्ल किया ।[1] शकरदेव एव अन्य कवियो द्वारा स्थानीय लोकभाषा (असमी) के साथ-साथ ब्रजावली (तत्कालीन मानक केन्द्रीय हिन्दी का एक आचलिक रूप) मे रचना करना इसी का प्रमाण है । भाषा, सगीत और सस्कृति (अत साहित्य भी) इन तीन बिन्दुओ को मिलानेवाली यदि एक सीधी रेखा खीची जाए तो उसकी गति स्पष्टत पश्चिम मे पूर्व—ब्रज से असम की ओर प्रतीत होती है । बीच मे मगध और मिथिला का महत्त्व सयोजन की दृष्टि से है । शकरदेव कालीन "असम को (एक वार पुन) वोध हुआ कि वह भारतवर्ष की पवित्र भूमि का एक आवश्यक अग है" और "परिणाम यह निकला कि यह (असमी) भाषा—जो एक भारतीय आर्यबोली थी और तिब्बती-बर्मी सागर मे एक द्वीप के समान थी—जन-साधारण की भाषा म विकसित हुई । × × × एकता के सूत्र मे बधे आधुनिक *असम के प्रादुर्भाव की प्रथम सभावनाए अब स्पष्ट दिखाई दे रही थी ।'*[2]

यह भी कम महत्त्वपूर्ण नही कि असमिया और बगला लिपियो के प्राचीनतम शिलापटो के नमूने राजगृह (मगध) मे ही मिलते हैं । पुन लिपि और भाषा-भेद के बावजूद हिन्दी और असमी साहित्य की प्रवृत्तियो मे प्राय सर्वत्र अतरग साम्य जैसा दीखता है । आदिकालीन हिन्दी और असमी दोनो के आरम्भिक उदाहरण चर्या गीतो मे प्राप्त होते हैं । बौद्ध सिद्धो की रचनाए दोनो की सम्मिलित निधियां-सी प्रतीत होती हैं । असम मे नाथ मत का भी प्राबल्य रहा है । असभव नही कि इसके विपुल साहित्य का निर्माण भी असमी मे हुआ हो । समुचित शोधकार्य के अभाव मे कुछ भी कहना मुश्किल है । पूर्वमध्यकालीन अथवा भक्ति-कालीन काव्य की अन्तरग धाराओ मे भी वैषम्य की अपेक्षा साम्य ही अधिक है । आगे तो आदान-प्रदान भी चलता है । इस दृष्टि से एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा । आहोम नरेश कमलेश्वर सिंह स्वर्गदेव के राजमत्री पूर्णानन्द बूढागोहाइ के आदेश पर सन् 1794 ई० मे श्रीकान्त सूर्यविप्र ने तुलसी के रामचरितमानस का असमी मे अनुवाद प्रस्तुत किया था । सम्प्रति इसका केवल युद्धकाण्ड (लकाकाण्ड) उपलब्ध है[3] इससे अनुमान किया जाएगा कि 'रामचरितमानस' न केवल हिन्दी भाषियो, बल्कि तत्कालीन असम के राजन्य वर्ग और बुद्धि-जीवियो मे भी लोकप्रिय हो चुका था । पुन हिन्दी की 'मधुमालती', 'मृगावती' इत्यादि रोमाटिक काव्यो की लोकप्रियता ने भी अपना रग जमाया था ।[4] तभी उन्ही नामो से एव उनके ही वजन पर असमी वैष्णव (?) कवियो ने भी असमी मे प्रेमगाथाओ की रचनाए की थी । रीतिकालीन शृगार की अबाध धारा असमी मे नही चली है, पर कतिपय घोर शृगारपरक रचनाए लिखी अवश्य गई हैं । श्री बापचन्द्र महन्त की सूचना के आधार पर कहा जाएगा कि 'श्री राधाहरण', 'गुप्त मणि', 'युगल-विहार' इत्यादि रचनाए वैसी ही हैं । ब्रिटिशकालीन भारत मे आधुनिकता का प्रभाव हिन्दी और असमी दोनो पर प्राय समान स्रोतो से पडता है । अत: अन्तरग एकता यहा भी

---

1 विस्तार के लिए देखिए—प्रस्तुत लेखक कृत 'शकरदेव साहित्यकार और विचारक' ।
2 डा० नेओग, 'शकरदेव एण्ड हिज टाइम्स', पृ० 378 ।
3 द्रष्टव्य—प्रस्तुत लेखक का निबंध—'रामचरितमानस के असमी अनुवाद' ।
4 द्रष्टव्य—प्रस्तुत लेखक के एतद्विषयक निबंध ।

प्राय बिखरती नहीं है। इस शती के तीसरे दशक मे तो यहा हिन्दी के प्रचार की हवा नय सिरे से शुरू ही हो जाती है।

अस्तु कहा जाएगा कि असम और हिन्दी-क्षेत्र एक दूसरे से प्राचीन काल से ही जुडे रहे हैं। सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, भाषिक, साहित्यिक इत्यादि विविध सम्बधो के सूत्र प्राय स्पष्ट हैं। इनमे कही कही धुधलापन अवश्य दिखाई देता है, पर है य परस्पर सम्बद्ध ही। इनमे विच्छिन्नता नही है। जो कुछ अन्तर है, वह उनकी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता ही है। वे भी परस्पर विरोधी नही, वस्तुत पूरक ही हैं।

असम मे हिन्दी-प्रचार

रजनीकान्त चक्रवर्ती की उक्ति "यह सच है कि भारत की पूर्वी सीमा असम राज्य मे आज से करीब सवा पाच सौ वर्ष पहले ही साधारण लोगो मे महापुरुष श्री शकरदेव ने हिन्दी भाषा की नीव डाली थी। उनके 'बरगीत' तथा 'अकीया नाट' इसके प्रमाण हैं',[1] से सीधा अर्थ यही निकाला जाएगा कि शकरदेव ने 'बरगीत' और 'अकीया नाट' की रचना हिन्दी म की थी। किंचित् शब्द-भेद से इसी तथ्य को परेशचन्द्रदेव शर्मा भी स्वीकार करते हैं : "इन कवियो ने उस युग मे ब्रजभाषा को उत्तरभारत की प्रधान काव्य-भाषा बना दिया था। उस समय इसका प्रचार गुजरात से असम तक था। असम और बगाल मे ब्रजभाषा के ही एक रूप ब्रजबुलि म अनेक कवियो ने कविताए लिखी थी शकरदेव की कविता इसका प्रमाण है।"[2] उद्धृत मतो के आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकालना सर्वथा न्यायसगत है कि शकरदेव के समय (सन् 1449-1568 ई०) म भी असम म तत्कालीन हिन्दी और उसके सर्वभारतीय रूप को बूझने-समझने, पढने लिखने वाले लोग थे।

पिछले पृष्ठो मे यह स्पष्ट किया गया है कि हिन्दी-क्षेत्र और असम का पारस्परिक सम्बन्ध बडा प्राचीन है। इसका अर्थ यह नही होता कि असम मे हिन्दी के विधिवत् प्रचार-कार्य का इतिहास भी उतना ही पुराना है। नही, इसका इतिहास मुश्किल से पचास वर्षों का माना जा सकता है। ऐतिहासिक अथवा विकासात्मक दृष्टि म हिन्दी प्रचार के तीन मोटे क्रम अथवा पर्व माने जा सकते हैं—(1) स्वप्रेरणा, (2) प्रारम्भिक अवस्था और (3) महत्त्वानुभूति एव विस्तार। इसी प्रकार प्रचार के प्रयत्नो के आधार पर यह दो रूपो मे अध्ययनीय हो सकता है—(क) गैर सरकारी और (ख) सरकारी। सरकारी प्रयत्न का इतिहास केवल तीसरे पर्व तक ही सीमित है।

स्वप्रेरणा से तात्पर्य है बिना किसी बाह्य प्रेरणा के ही असम मे हिन्दी के प्रचार की दृष्टि स किए गए कार्य। यह पर्व मोटे तौर पर सन् 1920 से सन् 1934 ई० तक का है एव इसके एकमात्र कार्यकर्त्ता हैं—भुवनचन्द्र गर्ग (सन् 1887- 1940)। स्वदेश-प्रेम, स्वदेशी-शिक्षा और स्वावलम्बन ही इनके आदर्श थ। उन्ही आदर्शो को कार्यान्वित करने की दिशा मे शिवसागर के निकट बकता ग्राम मे इन्होंने 'असम पॉलि

---

1 रजत जयन्ती महोत्सव स्मृति ग्रन्थ (हिन्दी) असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पृष्ठ 9।

2 हिन्दी नव मालिका, सशोधित सस्करण, भूमिका XI.

टेकनिक इंस्टिट्यूशन' नामक एक विद्यालय की सन् 1918 ई० में स्थापना की। इस समय तक म० गांधी के प्रयत्नों से दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार कार्य का श्रीगणेश हो चुका था। असम में उसकी शायद कल्पना भी नहीं की जा रही थी। कदाचित् तभी श्री गर्ग ने हिन्दी के भावी और राष्ट्रीय महत्त्व को समझा। असम्भव नहीं, उनके अन्तर्मन को ऐसी अनुभूति हुई हो कि भारत के अन्य प्रान्तों की तुलना में जैसे अंग्रेजी सीखने में असम के पिछड़ जाने के कारण इसकी समुचित प्रगति नहीं हुई, वहीं वैसी ही स्थिति हिन्दी सीखने में भी न हो। सम्भवतः इसी अनुभूति और दूरदर्शी विचार ने उनमें असम में हिन्दी-प्रचार की व्यवस्था करने की स्वप्रेरणा जगाई और सन् 1926 ई० से उक्त विद्यालय में उन्होंने हिन्दी को अनिवार्य पाठ्यविषय के रूप में स्थान दिया। इस प्रकार असम में विधिवत् पहली बार सन् 1926 ई० में हिन्दी-प्रचार कार्य का अध्यापन के द्वारा श्रीगणेश हुआ। (योग्य पाठ्य पुस्तकों एवं अनुभवी शिक्षकों के अभाव में इसमें सन् 1928 ई० के पूर्व समुचित गति नहीं आई।) सन् 1928 ई० में काशी और बिहार[1] से शिक्षक के आ जाने पर यहां हिन्दी-शिक्षण में गति आई। परिणामतः कुछ ही वर्षों में उक्त क्षेत्र में, मुख्यतः "शिवसागर में हिन्दी-प्रचार का एक ऐसा वातावरण पैदा हुआ था कि केवल भिन्न-भिन्न स्कूल की छात्र-छात्राएं ही नहीं, बड़े-बूढ़े तक हिन्दी वर्गों में आया करते थे।"[2] उक्त विद्यालय में हिन्दी की शिक्षा तीसरी से आठवीं कक्षा तक अनिवार्य एवं आगे दसवीं तक ऐच्छिक रूप में दी जाती थी। इस समय अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में ऐसे इक्के-दुक्के विद्यालय ही होंगे जहां हिन्दी-शिक्षा की ऐसी व्यवस्था हुई होगी। उक्त विद्यालय में हिन्दुस्तानी बालचर (सरकारी ब्वॉज-स्काउट के बदले) की प्रशिक्षा में सारे आदेश तक हिन्दी में दिए ही जाते थे, प्रभातफेरियों और पथ-सचालना में भी हिन्दी के राष्ट्रीय गीत ही गाए जाते थे। वर्धा समिति के केन्द्र भी प्रथम वहीं खुले जिनके प्रथम केन्द्र व्यवस्थापक इन्द्रेश्वर सुतिया थे। हिन्दी प्रचार की अखिल भारतीय योजना के अनुसार बाबा राघवदास असम में पहली बार सन् 1934 ई० में आए। उसके पूर्व ही श्री गर्ग ने हिन्दी-प्रचार के लिए असम की जमीन गोड़ दी थी, बल्कि हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था कर यथार्थवादिता और दूरदर्शिता का परिचय भी दिया था। निस्सन्देह असम में हिन्दी-प्रचार और हिन्दी शिक्षा के प्रवर्तन के इतिहास में श्री भुवनचन्द्र गर्ग प्रथम व्यक्ति हैं।

हिन्दी-प्रचार के दूसरे पर्व (सन् 1934-1948) के प्रथम सूत्रधार हैं बाबा राघवदास (1896-1958) जिन्होंने अपने स्थान बरहज (उत्तर प्रदेश) से ही प्रचार-कार्य सम्भाला। इस निमित्त प्रथम उन्होंने सन् 1934 ई० असम की यात्रा की एवं कई व्यक्तियों को प्रचार-कार्य में जुटाया। सन् 1937 ई० तक यहां अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी, शिवसिंहासन मिश्र, सूर्यवंशी मिश्र, देवेन्द्रदत्त शर्मा, धनेश्वर शर्मा, वैकुण्ठनाथ शर्मा इत्यादि क्रमशः जोरहाट, डिब्रूगढ़, शिवसागर, नौगांव, गुवाहाटी, गोलाघाट इत्यादि स्थानों में प्रचार कार्य सम्भालने लग गए थे। सन् 1937 में ही यहां के तीन तरुणों—रजनीकान्त चक्रवर्ती, नवीनचन्द्र कलिता और हेमकान्त भट्टाचार्य ने वर्धा समिति द्वारा आयोजित हिन्दी अध्यापन-शिविर में भाग लिया और वहीं से जून 1938

---

1 रुपाली जयन्ती महोत्सव ग्रन्थ (असमी, पृ०-61), असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति।
2 राष्ट्रभाषा—विकास, प्रचार और प्रसार, श्रीचित्र महन्त, पृ० 120।

में वे तीनों हिन्दी-प्रचारक बनकर अपने प्रान्त असम में लौटे।

सन् 1937 ई० में ही बाबा राघवदास के साथ काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, मोटूरी सत्यनारायण और श्रीमन्नारायण ने असम की यात्रा की और म० गांधी के रचनात्मक कार्यों से असम के नेताओं और बुद्धिजीवियों को अधिक निकटता से परिचित कराया। परिणामत लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै ने हिन्दी-प्रचार के प्रति अधिक रुचि दिखाई। सन् 1938 ई० में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अनुभवी प्रचारक यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव को असम के प्रचार-कार्य का सचालक बनाया गया जिनके साथ बाबा राघवदास ने पुन असम की यात्रा की तथा प्रचार-कार्य को व्यवस्थित करने की दृष्टि से ही 3 नवम्बर, 1938 को असम हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना भी की गई। लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै ही नवगठित समिति के प्रतिष्ठाता अध्यक्ष चुने गए। उन्हीकी अध्यक्षता में समिति की पहली बैठक कॉटन कॉलेज, गुवाहाटी में 11 दिसम्बर, 1938 ई० को हुई जिसमें बाबा राघवदास और यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव के अतिरिक्त रमेशचन्द्र, बी० के० भण्डारी, नीलमणि फुकन, आर० डी० शाही, जे० एन० उपाध्याय, देवकान्त बरुवा (वर्तमान कांग्रेस-अध्यक्ष) एव शिक्षा-निदेशक मि० जी० स्माल जैसे लोग भी उपस्थित थे। सयुक्त कांग्रेस सरकार के नेता लोकप्रिय बरदलै चूकि असम के मुख्यमत्री बने, इसीलिए उसी बैठक में डॉ० हरेकृष्ण दास समिति के अध्यक्ष और देवकान्त बरुवा मत्री बनाए गए। समिति के वार्षिक बारह सौ रुपये सरकारी अनुदान देने की घोषणा भी उसी बैठक में लोकप्रिय बरदलै ने की। दूसरी बैठक में ही काका कालेलकर के प्रस्तावानुसार समिति का नाम 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' में परिवर्तित कर दिया गया। हिन्दी-प्रचारकों की बढती हुई माग की पूर्ति के लिए ही समिति ने प्रचारक-शिविर की योजना बनाई जिसके प्रधान अध्यापक के रूप में कमलनारायणदेव आए और बाद में समिति के सचालन का दायित्व भी सम्भाला। उनके सचालन में समिति ने बहुमुखी विकास किया।

हिन्दी और हिन्दुस्तानी के झगडे से प्रचार-कार्य अप्रभावित नही रह सका। लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै ने म० गांधी के आदर्शों को स्वीकार करते हुए कहा कि "असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति गांधीजी के आदर्शों पर चलने वाली सस्था है।" स्वय म० गांधी ने भी सन् 1945 ई० में असम की यात्रा की। राज्य-सरकार ने भी समिति के वार्षिक वित्तीय अनुदान में वृद्धि की। पहले केवल पाचवी और छठी श्रेणी में ही हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था थी, धीरे-धीरे वह चौथी से आठवी श्रेणी तक लाजिमी हो गई एव अक्तूबर 1948 ई० से 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' ने पाठ्य पुस्तकों के निर्माण और स्वयचालित प्रचार-परीक्षाओं के सचालन का दायित्व भी स्वय सम्भालना शुरू किया। उधर वर्धा समिति की ओर से भी स्वतन्त्र प्रचार और परीक्षा-केन्द्रों की व्यवस्था चलती रही। इस प्रकार प्रचार-कार्य का दूसरा पर्व बीत गया।

तीसरा पर्व राष्ट्रभाषा की महत्त्वानुभूति और उसके विस्तार का है। इस पर्व का प्रारम्भ होता है सन् 1948 ई० में ही, पर इसे पूर्ण गति प्राप्त करने में किंचित् और समय लगता है। यह पर्व राष्ट्रभाषा-प्रचार के विस्तार और सयोजन की दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उसके बिखराव और आडम्बरायोजन की दृष्टि से भी। इस पर्व में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति न केवल अपने पैरो पर खड़ी होती है बल्कि अपना अनेकमुखी विकास करती हुई राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य में भी

सफलता प्राप्त करती है। प्रचार-कार्य की सफलता का अन्दाज केवल इसीसे लगाया जा सकता है कि सन् 1948 मे जहा इसके 34 केन्द्रो से कुल 1304 परीक्षार्थी विभिन्न प्रचार-परीक्षाओ मे सम्मिलित हुए थे, वहा आजकल लगभग 400 केन्द्रो से प्रतिवर्ष पैंतीस हजार से भी अधिक परीक्षार्थी भाग लेते हैं। पहले इनके निजी प्रचार-विद्यालय भी प्राय. नही थे, पर आज एक सौ के लगभग प्रचार विद्यालय भी हैं। सन् 1956 ई० से समिति ने स्मारक प्रशिक्षण शिविर की भी व्यवस्था शुरू की है।

वर्धा समिति ने भी इस पर्व मे असम मे उल्लेखनीय प्रचार-कार्य किए हैं। उसका क्षेत्रीय मुख्यालय शिलङ् मे है। शिलिङ् से ही उसके बीसों परीक्षा-केन्द्र एव कतिपय निजी राष्ट्रभाषा प्रचार विद्यालय भी सचालित होते रहे हैं, पर उसका मुख्य प्रचार क्षेत्र असम नही, मेघालय आदि अन्य राज्य हैं।

इस पर्व की एक महती विशेषता है—सरकारी प्रयत्न। इसके पूर्व राज्य (व केन्द्र) सरकार वित्तीय सहायता भर देती थी, प्रत्यक्ष कुछ करती नही थी। शिक्षा-विषयक नई नीतियो के परिणामस्वरूप अब राज्य सरकार का भी इस ओर ध्यान गया। सन् 1952 ई० से असम सरकार ने चौथी श्रेणी से हिन्दी शिक्षण की अनिवार्यता स्वीकार कर ली एव उसी वर्ष 140 माध्यमिक विद्यालयो म हिन्दी अध्यापन की व्यवस्था भी की गई। इसी क्रम म समिति के वैतनिक प्रचारकों का प्रथम दल सरकारी हिन्दी शिक्षक के रूप मे मान्य हुआ एव समिति ने दुघर्न (ग्वालपारा) मे सन् 1951 ई० मे शुरू किए गए हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र को सरकार को सौंप दिया।

सन् 1960 ई० के पूर्व असम के कॉलिजो म हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था प्राय नहीं थी। तभी कोनोई कॉलेज, डिब्रूगढ एव प्राग्ज्योतिप कॉलेज, गुवाहाटी ने इस दिशा म पहल की। सन् 63 ई० स असम के एकमात्र सरकारी कॉलेज—कॉटन कॉलेज म भी हिन्दी विभाग चालू किया गया। आज दसाधिक कॉलिजो मे स्नातक स्तर की हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था है। चौथी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सन् 1970 ई० से गुवाहाटी विश्वविद्यालय म भी हिन्दी विभाग खुल गया है जिसम स्नातकोत्तर शिक्षा और शोध कार्य की सुविधा है।

शिक्षा-नीतियो म कतिपय परिवर्तना के कारण सन् 1973 ई० से हिन्दी शिक्षा मे भी कतिपय परिवर्तन हुए हैं। परिणामत अब केवल पाचवी से सातवी श्रेणी तक ही अनिवार्य विषय के रूप मे हिन्दी को स्वीकृति मिली है। आठवी से दसवी श्रेणी तक इसकी पढाई ऐच्छिक कर दी गई है। आज राज्य के विभिन्न प्रकार के लगभग दो हजार विद्यालयो म हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था है।

सरकारी प्रयत्नो के अतिरिक्त हिन्दी-माध्यम वाले विद्यालयो का भी महत्त्व है। असम के विभिन्न नगरो म हिन्दी-भाषी अल्पसंख्यकों द्वारा भी विभिन्न प्रकार के विद्यालय चलाए जाते हैं जिनम सारी शिक्षा हिन्दी के माध्यम से ही दी जाती है।

असम म हिन्दी प्रचार की मुख्य भूमिका उपरिवर्णित दो समितियो ने तो निभाई ही, उनके अतिरिक्त कई छोटी मोटी समितियो एव ऐच्छिक सस्थाओ के भी नाम गिनाए जा सकते हैं। इस दृष्टि स 1. **हिन्दी प्रसार मण्डल**, 2 **असम हिन्दी साहित्य सम्मेलन**, 3 **असमिया हिन्दी विनमय परिषद्**, 4 **भारतीय सस्कृति समिति**, 5 **साहित्य परिषद्, गौहाटी**, 6 **विद्यापति गोष्ठी** इत्यादि के नाम गिनाए जा सकते हैं, जिनके

अपने विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा हिन्दी के अनुकूल वातावरण निर्मित करते रहने की दिशा में अनेक प्रयत्न किए हैं। कुछ वर्ष पूर्व 8 'भारती' अधिक जीवन्त थी, जिसने कुछ प्रकाशन भी किए थे। पिछले वर्ष एक नई संस्था 9. असम राष्ट्रभाषा साहित्य परिषद् का गठन श्री चित्र महन्त के सभापतित्व में हुआ है। उसने अपने मासिक कार्यक्रमों से अपनी जीवटता और कार्य की व्यावहारिकता का न केवल परिचय दिया है, बल्कि भविष्य के प्रति हिन्दी-प्रेमियों को आश्वान्वित भी किया है।

उपरिवर्णित माध्यमों एवं प्रयत्नों के अतिरिक्त कतिपय ऐसे अन्य तत्त्व भी हैं जो हिन्दी प्रचार के सबल माध्यम बने हैं। इस दृष्टि से सर्वप्रथम ध्यान आता है उन श्रमिकों पर जो उत्तरी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से यहां आए हैं एवं यहां के नगरों, कस्बों एवं गांवों के भी प्राणसंचारक बने हैं। चाय के बाग हों या खेती, रेल की लाइनें बिछानी हों या दूर-संचार एवं बिजली के तारों का जाल फैलाना हो, पहाड़ों को काटकर उन्हें सम-तल बनाना हो या सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा सड़कों का निर्माण कराना या नई इमारतों का काम—सब प्रकार के कठिन शारीरिक श्रम करनेवाले अधिकांश श्रमिक उक्त हिन्दी-क्षेत्रों के ही मिलेंगे। उनकी मातृभाषा भोजपुरी, मैथिली, अंगिका, बज्जिका इत्यादि हिन्दी की बोलियां हैं। जीविका-निर्वाह के क्रम में उन्होंने एक ओर जहां असम के सामान्य जीवन को गति और उसके आर्थिक ढांचे को स्थिरता प्रदान की हैं, वहीं अनजान ही वे हिन्दी प्रचार के भी माध्यम बने हैं। इनकी देन को असम किसी भी प्रकार नकार नहीं सकता। पुन हिन्दी-क्षेत्र और राजस्थान, गुजरात इत्यादि से आए व्यापारियों और व्यवसायियों की सम्पर्क भाषा हिन्दी ने भी हिन्दी-प्रचार में योगदान किया है।

इसी प्रकार प्रचार का एक सबल माध्यम सिनेमा भी बना है। सच पूछिए तो सिनेमा ने हिन्दी का जितना व्यावहारिक प्रचार किया है, उतना और किसी भी माध्यम ने नहीं। हिन्दी के प्रति आन्तरिक रुचि जगाने और ठीक-ठीक उच्चारण सिखाने में भी सर्वोपरि स्थान और महत्त्व सिनेमा का ही है। इसके पश्चात् ही स्थान मिलना चाहिए आकाशवाणी के हिन्दी प्रसारणों को, मुख्यत फिल्मी गीतों को। तात्पर्य यह कि ऐसे ही अनेक अनाम और अज्ञात माध्यमों ने भी असम में हिन्दी-प्रचार कार्य को तीव्रता प्रदान की है।

असम हिन्दी के प्रचार-कार्य का यही संक्षिप्त इतिहास है। साराशत यह इतिहास निरन्तर विकास और विस्तार अथवा प्रगति का है। यों, इस इतिहास में बाधाओं और बिखराव के वर्ष भी आए हैं, पर महत्त्वपूर्ण बात रही है उनपर विजय पा लेने की।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाएं :

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका विशेष महत्त्व की रही है। पुन यह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि हिन्दी का प्रथम पत्र डॉ० महादेव साहा के अनुसार 'दिग्दर्शन' सन् 1918 ई० में बंगाल यानी एक अहिन्दी-भाषी राज्य से ही प्रकाशित हुआ था। यदि 'दिग्दर्शन' को हिन्दी का प्रथम पत्र माना जाए तो कहना पड़ेगा कि उसी (बंगाल) के पड़ोसी राज्य असम में उसके ठीक एक सौ इक्कीस वर्ष पश्चात् सन् 1939 ई० में प्रथम हिन्दी पत्र 'नवजागृति' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसका प्रकाशन

पन्नालाल पुरोहित के प्रयत्न से डिब्रूगढ से हुआ। वे ही इसके सम्पादक भी थे, किन्तु 'नवजागृति' केवल अल्प समय तक ही जागरण का कार्य कर सकी। इस साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन बन्द होने के लगभग सात वर्ष पश्चात् ही पुन असम म हिन्दी पत्र दिखाई दे सके। यहा केवल उन पत्र-पत्रिकाओ की तालिका द रहे है, विशेष विवरण नही। यथा—

पत्र-पत्रिकाओं के नाम	प्रकाशन अवधि/स्थान	सम्पादक/प्रबन्धक/प्रकाशक
1 नवजागृति	साप्ताहिक, डिब्रूगढ	पन्नालाल पुरोहित
2 अकेला	साप्ताहिक, (पहले कलकत्ते से) तिनसुकिया	विश्वनाथ गुप्त
3 शखनाद	साप्ताहिक, गुवाहाटी	शकरलाल शर्मा
4 जागरण	साप्ताहिक, शिलङ्	स० रामस्वरूप शर्मा प्रबन्धक—सुरेन्द्रनाथ गुप्त
5 पूर्वज्योति	पहले मासिक, पुनः साप्ताहिक, गुवाहाटी	छगनलाल जैन, देवन्द्रनाथ प्रशान्त
6 राजदूत	साप्ताहिक, गुवाहाटी	श्री कमलेश
7 राष्ट्रसेवक	पहले त्रैमासिक, पुन मासिक	रजनीकात चक्रवर्ती, चित्रमहन्त
8 आज का ससार	साप्ताहिक, शिलङ्	विश्वनाथ उपाध्याय/ परमानन्द साह
9 नवीन समाज	मासिक, डिब्रूगढ	नवावसिह रघुवशी
10 मेरी कलम	साप्ताहिक, गुवाहाटी	जी० एस० मधुप और ब्रजेश/ हीरालाल सेठी
11 आपकी आवाज	साप्ताहिक, पाक्षिक, गुवाहाटी	जी० एस० मधुप और इन्द्रशेखर मिश्र
12 लोक-सन्देश	पाक्षिक, गुवाहाटी	इन्द्रशेखर मिश्र और उमाशकर मिश्र
13 देश हित	साप्ताहिक, गुवाहाटी	उमाशकर मिश्र
14 सवाद	मासिक, गुवाहाटी	चन्द्रभूषण शर्मा 'भूषण'
15 वसन्त	मासिक, सिलचर	अशोक वर्मा
16 बालार्क	मासिक, सिलचर	अशोक वर्मा
17 असम प्रदीप	मासिक, डिब्रूगढ	सूर्यवशी चौधरी
18 दीप	मासिक, डिब्रूगढ	रघुनाथ शरण
19 मजदूर	साप्ताहिक, गुवाहाटी	हीरालाल तिवारी, ब्रजेश और निर्भीक/शुकदव राय
20 प्रभात	मासिक, तिनसुकिया	पुष्पराज 'कठिन'
21. महाजाति	साप्ताहिक, तेजपुर	पूर्णनारायण सिंह
22 लोकमान्य	दैनिक, गुवाहाटी	रमाशकर त्रिपाठी
23 रणभेरी	मासिक, तिनसुकिया	नवावसिह रघुवशी
24 अन्तर्द्वन्द्व	साप्ताहिक, गुवाहाटी	भगवती प्रसाद सर्राफ

5. अभियान	मासिक, गुवाहाटी	शंकरलाल खरे
6 प्राच्य-भारती	त्रैमासिक, तिनसुकिया	डॉ० लक्ष्मीशंकर गुप्त
7. नक्षत्र	मासिक (बालोपयोगी), गुवाहाटी	अम्बिका प्रसाद पंकज एवं रत्नेश कुमार 'सुमन'
8 प्राच्य-भारती	मासिक, गुवाहाटी प्राच्य-भारती प्रकाशन	कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'
9 जैन पार्षद	पाक्षिक, महावीर छात्र-परिषद्	अशोक कुमार जैन
0 जय हिन्द	मासिक, गुवाहाटी	विनोद कुमार

इनमें अधिकांश पत्र अल्पजीवी रहे हैं। मासिकों ने मुश्किल से अपने प्रथम वर्ष पूरे किए थे। कुछ साप्ताहिक तो आठ-दस सप्ताहों के पश्चात् ही बन्द हो गए। दैनिक 'सौभाग्य' का प्रकाशन अप्रैल 1963 ई० से प्रारंभ हुआ था, पर वह भी दिन ही बन्द हो गया। महत्वाकलन करें तो कहना पड़ेगा कि साप्ताहिकों में 'अकेला' और 'पूर्वज्योति' ही किंचित् विराम से लगातार चलते आ रहे हैं। इसी प्रकार असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का मुखपत्र 'राष्ट्रसेवक' द्विभाषी पत्रिका होते हुए भी लगातार चलते रहनेवाला एकमात्र मासिक है। यों, समय-समय पर प्रकाशित होनेवाले मासिकों में 'सवाद' और 'प्रभात' का स्तर श्रेष्ठ था अवश्य। 'सवाद' का नलिनविलोचन शर्मा स्मृति अंक अपने में काफी महत्त्वपूर्ण रहा था। मासिक 'प्राच्य-भारती' के प्रत्येक अंक को विद्वानों और साहित्यानुरागियों ने सदा सजोया और सम्भालकर ही रखा है। इसके 'माधवदेव विशेषांक' और 'शंकरदेव विशेषांक' विशेष उपयोगी और आकर्षक रहे हैं।

इन सबके अतिरिक्त विशेष अवसर पर प्रकाशित होनेवाली कुछ पत्रिकाएं, यथा—नेशनल फेडरेशन ऑफ रेलवे पोर्टर्स ऐण्ड वेण्डर्स, पूर्वोत्तर सीमा रेलवे, 1973 द्वारा प्रकाशित इन्दिरा गाधी के जन्मदिन पर प्रकाशित अंक, 'भारती' की 'भारती-स्मारिका', 1972 ई०, 'हिन्दुस्तान समाचार' का रजत-जयन्ती अंक-1974 ई०, विजय-नगर युवा संगठन द्वारा प्रकाशित 'ज्योत्स्ना' अथवा विभिन्न हिन्दी विद्यालयों की पत्रिकाएं भी उदाहृत की जा सकती हैं।

पत्र-पत्रिकाओं ने दुहरे दायित्व का निर्वाह किया है। एक ओर इन्होंने जहां हिन्दी के लिए किंचित् वातावरण निर्मित किया है, वहीं दूसरी ओर उसमें कहीं अधिक महत्त्व का काम यह किया है कि असम के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण एवं असमी साहित्य से हिन्दी पाठकों को रुचिसम्पन्न बनाया है। परस्पर विनिमियता इनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है।

सम्मेलन और गोष्ठियां

सम्मेलनों और गोष्ठियों ने हिन्दी का प्रचार भले न किया हो, पर इन्होंने हिन्दी के प्रति सहज अनुराग तो जगाया ही है। इस दृष्टि से पिछले कुछ वर्षों में 'भारती' और 'उद्बोधिनी' ने विशेष रुचि दिखलाई है। इनकी बैठकें और कविगोष्ठियां सार्थक महत्त्व की होती रही हैं। विद्यापति-गोष्ठी के वार्षिक कार्यक्रम का महत्त्व भी

कुछ इसी प्रकार का रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टि से असम मे प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि-सम्मेलन का आयोजन सन् 1947 मे आकाशवाणी के द्वारा किया गया था। पुन भारतीय स्वातंत्र्य की रजत जयंती के अवसर पर भी आकाशवाणी द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन अधिक सफल था। उसमे कवि श्री रामकुमार वर्मा और केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने भी भाग लिया था। स्थानीय कवि तो प्रत्येक सम्मेलन मे रहते ही हैं। इनके अतिरिक्त 26 जनवरी 1959 को श्री जी० एस० मधुप एव इन्द्रशेखर मिश्र के प्रयत्नो स आयोजित विशिष्ट कवि-सम्मेलन भी ऐतिहासिक महत्त्व का रहा है जिसका सभापतित्व किया था गुवाहाटी विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्राध्यापक डॉ० बी० बी० मिश्र ने। उसी दिन श्री राधेश्याम 'प्रदीप' द्वारा तिनमुकिया मे कवि-सम्मेलन आयोजित हुआ था।

सन् 1961 ई० मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की असम शाखा ने अपने तिनसुकिया अधिवेशन म जिस सम्मेलन का आयोजन किया था उसमे गीतसम्राट कविवर गोपाल सिंह 'नेपाली', हास्यकवि बेधडक बनारसी, गीतकार शम्भुनाथ सिंह, श्री राजेन्द्र सिंह राहगीर बनारसी, श्री लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी', कवयित्री रमासिंह, सुमित्रा कुमारी सिनहा, कुमारी मधु, नाटककार उपेन्द्रनाथ अश्क, श्रीमती कौशल्या अश्क इत्यादि महान कवियो-लेखको ने अपनी उपस्थिति से एक नये वातावरण का निर्माण किया था। उक्त सम्मेलन के पश्चात् उसके गुवाहाटी और शिलङ् मे भी सम्मेलन आयोजित हुए थ। निश्चय ही वह सम्मेलन अपने आपमे ऐतिहासिक महत्त्व का हो गया है।

प्रादेशिक हिन्दी साहित्य

असम मे हिन्दी साहित्य का सृजन प्राय उसी समय स आरम्भ होता है, जब स हिन्दी प्रान्त मे। या, यह और बात है कि यहा सृजन-कार्य न तो लगातार चलता रहा है और न आज तक जो कुछ भी लिखा गया है उसके क्रमिक विकास के संधान के लिए किसी प्रकार का वैज्ञानिक कार्य ही किया गया है। यह भी, सर्वेक्षण स स्पष्ट है कि हिन्दी लेखन यहा सदा अबाधित नही रहा है। कभी-कभी शताब्दियों तक उसकी रेखा मिटी-सी प्रतीत होती है। असम मे हिन्दी साहित्य के मौलिक लेखन के इतिहास को मोटे तौर पर दो भागो म विभाजित किया जा सकता है—(क) आदि एव मध्यकालीन और (ख) आधुनिककालीन। आधुनिककालीन उपलब्धियो पर विचार करने के पूर्व पृष्ठभूमि के तौर पर आदि एव मध्यकालीन हिन्दी के मौलिक लेखन का रेखाकन कर लेना यहा अप्रासगिक नही होगा।

(क) आदि एवं मध्यकालीन

हिन्दी के प्रारम्भिक एव प्रमुख साहित्यकारो म सिद्धो एव नाथों के नाम लिए जाते हैं एव इस दृष्टि स सरहपा को हिन्दी का पहला कवि भी घोषित किया जाता है। कुछ विद्वानो ने अनुमान भिडाया है कि सरहपा की जन्मभूमि कामरूप जिले के रानी (राज्ञी) गाव ही रही होगी। सिद्धो मे मीनपा अथवा लुइपा शायद यहीं के थे। असम्भव नहीं कि अन्य अनेक सिद्धों एव नाथो का सम्बन्ध भी कामरूप से ही रहा हो।

असम मे मध्यकालीन नव्य-वैष्णव आन्दोलन के प्रवर्त्तक शकरदेव ने तो तत्कालीन असमी के अतिरिक्त ब्रजावली मे रचना ही की है। ब्रजावली के विषय में

मैंने अन्यत्र लिखा है कि "वह आधुनिक अर्थों मे हिन्दी नही है। साथ ही वह असमी, बगला या उडिया भी नही है। दूसरी ओर वह जितनी हिन्दी की है, उतनी ही असमी की भी। उसमे प्राचीन असमी के प्रयोग खोजे-पाए जा सकते हैं पर उसे असमी नही कहा जा सकता। असल मे वह पूर्वज भाषा है—पूर्वजा है। वह सम्मिलित निधि है। विभिन्न जनपदीय भाषाओ मे जो ब्रजी का मिश्रण है—शौरसेनी का अश है, वह हिन्दी के विशाल व्यापकत्व का सूचक है। हिन्दी का उनपर आधिपत्य है, वे हिन्दी की हैं। कदाचित् इसी कारण डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी-भाषा' (पृष्ठ-157) मे ब्रजबुलि (अथवा ब्रजावली) को हिन्दी की एक बोली के रूप मे स्वीकार किया है। उसम ब्रजी के प्राय अधिकाश रूप सुरक्षित है। ब्रजी अथवा ब्रजरंजित रचनाए जिन अर्थों मे हिन्दी के अन्तर्गत स्वीकृत और मान्य होती रही हैं, उन अर्थों मे ब्रजावली को भी हिन्दी कह सकते है। × × × ब्रजावली उत्तरी भारत की भाषिक और साहित्यिक एकता की विधायी परिणति है।"[1] डॉ० दशरथ ओझा ने इस भाषा को अन्तर-प्रान्तीय अथवा सार्वदेशिक भाषा घोषित किया है। उनके अनुसार "हमारे देश मे भाषा और साहित्य के इतिहास मे ये भाषा-नाटक उस एकसूत्री, व्यापक और सार्वदेशिक प्रवृत्ति की शृखला के रूप मे समादृत होने चाहिए जो पूरी होने से पहले ही छिन्न-भिन्न हो गई। यदि वह पूरी हो जाती तो कौन जाने हमारे देश—विशेषत उत्तरी भारत···की भाषा और साहित्य का एकीकृत रूप कितना भव्य हो पाता।"[2] वस्तुत अवहट्टकाल के उपरान्त एक अन्तर-प्रान्तीय व्यवहार और काव्य की भाषा का नाम है 'ब्रजावली', जिसकी सूत्रधारिणी थी शौरसेनी की सार्वदेशिकता। और यहा मात्र इतना कहना ही पर्याप्त है कि मध्यकालीन असमी के भक्त एव सन्त कवियो ने ब्रजावली मे अपरिमित रचनाए की हैं। वे रचनाए विषय-वस्तु एव भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से तत्कालीन उत्तर भारत की मानक रचनाओ के अधिक निकट पडती हैं। यह निर्विवाद है कि जिनकी मातृभाषा मगही, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रजी आदि हैं, वे ब्रजावली की रचनाओ को अधिक सहजता मे समझ और ग्रहण कर सकते हैं, करते हैं। आगामी पक्तियो मे हम वैसे कतिपय प्रमुख साहित्यकारो का उल्लेख करते हैं जिन्हे आदि और मध्ययुगीन हिन्दी के मौलिक लेखन का श्रेय दिया जाना चाहिए। यथा—

मीननाथ—ये मीनपाद, मीनानाथ, मछेन्द्रपा, मछन्दरनाथ आदि कई नामो से जाने जाते हैं। इन्हे कामरूप का मछुआ वशीय व्यक्ति माना जाता है। तिब्बती ग्रथों म इन्हें ही लुइपा भी कहा गया है। विभिन्न साक्ष्यो से पता चलता है कि इन्ही मीननाथ अथवा मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) थे। विदित होता है कि कामरूप के प्रसिद्ध योगिनी कौलपन्थ का प्रवर्त्तन भी इन्होने ही किया था। नाथपथ का प्रवर्तक आचार्य भी इन्हें ही माना जाता है। डॉ० बड़थ्वाल ने 'योग प्रवाह' मे इनके कतिपय फुटकल पद्यो का सकलन-भर किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'नाथ-सिद्धों की बानियाँ' मे इनके कुछ मुक्तक रखे हैं। पण्डित एस० पी० शास्त्री के 'बौद्ध गान ओ दोहा' से यहा इनका एक पद्य रखा जाता है। यथा—

---

1 ब्रजावली पर विस्तार से देखिए—प्रस्तुत लेखक कृत 'ब्रजावली पद-साहित्य'।
2 प्राचीन भाषा नाटक-सग्रह, पृ० 140।

कहति गुरु परमार्थर वात, धर्म कुरग समाधिक पात।
कमल विकसिल कहे न जमरा, कमल मधु पिवि ढोवे न भमरा ॥

शकरदेव (सन् 1449-1568 ई०)

महापुरुष शकरदेव के जीवन, व्यक्तित्व, महत्त्व इत्यादि[1] का आकलन करना जितना सहज है, उतना ही दुष्कर भी। ठीक ही कहा गया है—

तोमार जीवनी देव लिखे एने साध्यकार,
गोटेइ असम जुरि विस्तृत जीवनी यार।

ब्रजावली मे लिखित शकरदेव की रचनाए[2] निम्नाकित हैं—(1) बरगीत, (2) फुटकल पद्य (तोटय और भटिमा), (3) पत्नी-प्रसाद, (4) कालि दमन, (5) केलि गोपाल, (6) रुक्मिणी हरण (7) पारिजात हरण और (8) राम-विजय। इनमे प्रथम दो काव्य एव अन्तिम छह नाटक है। इनकी काव्यकारिता के सम्बन्ध मे मैंने पहले ही लिखा है कि "'बरगीत' शकरदेव की मन विजय की साधना के सोपान है। विषय की सकीर्णता और भाव का सकोच उनकी विशेषता है। तोटय और देव-भटिमा मे विनय ही प्रमुख है। नाटको के गीतो मे सगीत भी है, सवाद भी है, आख्यान भी है, वर्णन भी है और चित्र भी है। भावों की आवृत्तियो के बावजूद उनमे नवीनता है।"[3] और उनके नाटक "उनकी बहुज्ञता, कलाप्रियता, भारतीय जीवन की समग्रता और एकात्मकता, समन्वयात्मक बुद्धि, लोकमगलकारिणी दृष्टि इत्यादि के विचार से तदयुगीन अद्वितीय उपलब्धि हैं। वे उनकी युग-प्रवर्त्तक प्रतिभा के परिचायक हैं। नाटको मे जीवन की तिक्तता, कसैलापन और मिठास सभी कुछ है। शकरदेव का भावुक कवि जैसे नाटको मे जीवन को वास्तविक धरातल पर उतार लाने मे सफल हो गया है।"[4]

माधवदेव (सन् 1489 1596 ई०)

माधवदेव के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि

शकरे भकति प्रकाश करिल, माधवे प्रचारिला।
माधवर प्रसादत व्यभिचारी अज्ञानी, सबे बुजिला ॥

शकरदेव के शिष्य माधवदेव की ब्रजावली मे लिखित निम्नाकित कृतिया हैं—(1) बरगीत, (2) फुटकल पद्य (काव्य) (3) अर्जुन-भजन यात्रा, (4) चोरधरा झुमुरा, (5) भूमि-लोटवा झुमुरा, (6) पिम्परा-गुचोवा झुमुरा, (7) भोजन-विहार झुमुरा (8) ब्रह्मा मोहन झुमुरा, (9) भूषण-हरण झुमुरा, (10) कटोरा-खेलोवा झुमुरा और

---

1 विस्तार के लिए देखिए—प्रस्तुत लेखक कृत—शकरदेव साहित्यकार और विचारक।

2 हिन्दी में इनकी रचनाए प्रकाशित हैं—(1) महापुरुष शकरदेव—ब्रजबुलि ग्रन्थावली, (2) प्राचीन भाषा नाटक सग्रह, (3) शकरदेव के नाटक इत्यादि देखिए।

3 ब्रजावली पद्य-साहित्य, पृ० 42।

4. विशेष के लिए द्रष्टव्य—(क) माधवदेव के नाटक, प्राच्य भारती प्रकाशन, गुवाहाटी।
(ख) प्राचीन भाषा नाटक सग्रह, के० एम० मुशी इन्सटिच्यूट आगरा।
(ग) ब्रजावली पद्य साहित्य, डॉ० कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'।

(11) रास झुमुरा।

गीतिकाव्य का सम्पूर्ण माधुर्य माधवदेव के गीतो मे प्राप्त है। दैन्य और आत्मनिवेदन के गीत जहा हृदय को बेधते है, वही कृष्ण की बाल-क्रीडा से सम्बन्धित पद नवीन रूप मे उल्लसित भी करते हैं। कृष्ण की चतुराई, ढिठाई बतकटइ, बहाने-बाजी, छेडछाड, जिद, होडा-होडी आदि ऐसी अनेक मनोहारी चेष्टाए हैं जिनके निरूपण और अकन मे माधवदेव का कवि-कर्म और कौशल अष्टछाप शिरोमणि सूरदास से भी टक्कर लेता हुआ प्रतीत होता है। माधवदेव के नाटक अपेक्षया छोटे हैं जिनका लालित्य और वास्तविक सौन्दर्य उनके यथार्थपरक, लघु और रोचक सवादो मे अन्तर्निहित है। सब मिलाकर माधवदेव का व्रजावली साहित्य शकरदेव की कृतियों से भी बीस पडता है। भाषिक दृष्टि से भी इनके साहित्य का अधिक महत्त्व है।

गोपाल आता (सन् 1541-1611 ई०) :

गोपाल आता[1] के व्रजावली मे दो नाटक उपलब्ध है—(1) जन्म-यात्रा और (2) गोपी-उद्धव-संवाद नाट। एक अन्य कृति 'नन्दोत्सव' या 'बोका यात्रा' भी बताई जाती है, पर वस्तुत वह 'जन्म-यात्रा' का ही किंचित् भिन्न रूप है।

'जन्म-यात्रा' मे श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर नन्द द्वारा पुत्रजन्मोत्सव मनाए जाने की भागवतीय कथा को कथावस्तु का रूप दिया गया है एव 'गोपी-उद्धव-सवाद नाट' मे गोपी-उद्धव-सवाद की कथा को। इनके नाटको से ही एक नई परम्परा भी चली, जिसके अनुसार नाटको मे अन्य रचित गीतो को स्थान मिलने लगा। इन्होने अपने नाटको मे शकरदेव और माधवदेव के गीतो को स्थान दिया है। इनके नाटको मे भी भाषा प्राय. शंकरदेव के समान ही सार्वदेशिक प्रवृत्तियो से ओत-प्रोत है। स्थानीय प्रयोग अत्यल्प हैं।

रामचरण ठाकुर (सन् 1550-1620 ई०) :

रामचरण ठाकुर माधवदेव के भाजा और कदाचित् उन्हीके शिष्य थे[2]। व्रजावली मे लिखित इनकी एकमात्र रचना 'कंस-वध' नाटक है। इस नाटक की कथा-वस्तु भागवत (10/36-44) पर आधारित है। मूल कथा नाटक मे प्राय अपरिवर्तित रूप में रखी गई है। भाषा सरल और भावानुसारी है।

भूषण द्विज (सन् 1580-1650 ई०) :

भूषण द्विज चक्रपाणि के पौत्र और वैकुण्ठदेव के पुत्र थे।[3] व्रजावली मे लिखित इनका एकमात्र नाटक 'अजामिल उपाख्यान नाट' प्राप्त है। नाटक की कथावस्तु भागवत के षष्ठ स्कन्ध मे वर्णित अजामिलोपाख्यान पर आधारित है। नाटकीय

1. विशेष के लिए देखिए—(क) प्राचीन भाषा नाटक-सग्रह।
(ख) व्रजावली पद्य-साहित्य।
2. विशेष के लिए देखिए—(क) व्रजावली पद्य-साहित्य—डॉ० कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'
(ख) प्राचीन भाषा नाटक-सग्रह—डॉ० माताप्रसाद गुप्त।
3. उपरिवत्।

आवश्यकता से मूलकथा को नाटककार ने कई स्थलो पर परिवर्तित भी कर दिया है। द्विज भूषण की यह अकेली रचना उन्हें सफल नाट्यकार का आसन प्रदान कराने में समर्थ है। विनय और भक्ति के पदो मे इनके भक्त मन की सहज अभिव्यक्ति हुई है। आचलिक प्रयोग इनमे भी प्राय कम है।

दैत्यारि ठाकुर (सन् 1596-1650 ई०) ·

दैत्यारि ठाकुर उपरिचर्चित रामचरण ठाकुर के प्रथम पुत्र थे[1]। ब्रजावली मे इनके द्वारा रचित दो नाटक—(क) नृसिंह यात्रा और (ख) स्यमन्तक-हरण एव (ग) कतिपय फुटकल पद्य प्राप्त होते है। रचनाओ से विदित होता है कि ब्रजावली के अतिरिक्त सस्कृत भाषा पर भी इनका पूर्ण अधिकार था। नाटको मे इन्होंने स्वरचित श्लोक भी रखे है। डॉ० दशरथ ओझा ने दैत्यारि ठाकुर को "शकरदेव की नाट-परम्परा का अन्तिम प्रभावशाली नाटककार" माना है, जो न तो वैज्ञानिक है और न जनसामान्य की परम्परा मे परिपुष्ट। वस्तुत इनके बाद भी ब्रजावली मे नाट्य-लेखन की परम्परा चलती रही है।

दैत्यारि ने दोनो नाटको की कथावस्तु का चयन भागवत से किया है। दोनो मे भागवतीय कथा प्राय अपरिवर्तित रूप मे रखी गई है। नाटको मे प्रयुक्त गीत विविध रूप मे है। या, विनय गीतो की ही प्रधानता है जिनमे वैयक्तिकता की अपेक्षा सामान्य जनमानस की पीडा को ही अधिक घनीभूत रूप मे उपस्थित किया गया है।

श्रीराम आता (16-17 वी शती)

श्रीराम आता कामरूप जिले के प्रसिद्ध उपाध्याय घराने मे उत्पन्न हुए थे[2]। ये सन् 1611 ई० मे गोपाल आता की मृत्यु के पश्चात् कालाभार सत्र के अधिकार बनाए गए थे। इन्होंने ब्रजावली मे (क) फटकल पद्य एव (ख) कई अकिया नाट लिखे है जिनमे 'सुभद्रा-हरण' अधिक प्रसिद्ध है। फुटकल पद्यो मे दास्य भाव की प्रधानता है। यो कतिपय गीत राधा-कृष्ण-परिहास, वात्सल्य-विरह, गोपी विरह इत्यादि स सम्बन्धित भी है। 'सुभद्रा-हरण' नाटक पर शकरदेव के नाटक 'रुक्मिणी-हरण' का किंचित् प्रभाव भी लक्षित होता है। वस्तुत नाटककार श्रीराम आता अनेक दृष्टियो से शकरदेव के ऋणी है।

रामानन्द द्विज (1615 1680 ई०)

ये उपरिचर्चित श्रीराम आता के द्वितीय पुत्र और उन्हीके शिष्य थे।[3] श्रीराम आता की मृत्यु के पश्चात् कालाभार का सत्राधिकारत्व उत्तराधिकार मे इन्हे ही प्राप्त हुआ था। ब्रजावली मे लिखित रामानन्द की दो रचनाए उपलब्ध हैं— (क) प्रेम-कलह नाट और (ख) स्फुट गीत। 'प्रेम-कलह नाट' श्रीकृष्ण की किशोर-लीला स सम्बन्धित है। स्फुट गीत मुख्यत कृष्ण विषयक ही है। थोड़े-से गीत राम-

---

1 उपरिवत।
2. देखिए—ब्रजावली पद्य साहित्य—डॉ० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध'
3 विशेष के लिए देखिए—ब्रजावली पद्य साहित्य, डॉ० कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'

कथा से सम्बन्धित हैं। विषय वस्तु और भावाकन की दृष्टि से रामानन्द के अविसंवादी गीत हैं तो माधवदेव के गीतों के समान ही, पर इनमें कवि का निजी वैशिष्ट्य सर्वत्र स्पष्ट है। इनके गीतों में राधा को भी प्रमुखत्व मिला है। नवीन प्रसंगोद्भावना की दृष्टि से दानलीला का गीत (गीत सं०-405 'व्रजावली पद्य-साहित्य' में संकलित) देखा जा सकता है। इनके गीतों पर 'गीतगोविन्द' की शैली की छाप भी लक्षित होती है।

दीनगोपाल (17-18वीं शती)

दीन गोपाल विषयक कोई विवरण प्राप्त नहीं है।[1] यह भी निर्णय करना असम्भव है कि 'दीन गोपाल' में 'दीन' पद मात्र विनय-सूचक है या मूल नाम का मुख्य अंग। इनके रचित व्रजावली में दो नाटक—(क) जरासंध-वध[2] और (ख) सीता-हरण—प्राप्त होते हैं। इनका रचनाकाल सत्रहवीं शती उत्तरार्द्ध या अठारहवीं शती पूर्वार्द्ध होना चाहिए। 'जरासंध-वध' की कथा 'भागवत' पर आधारित है, पर 'सीता-हरण' की कथा का आधार वाल्मीकि रामायण का पूर्वांचलीय पाठ ही रहा है। उपलब्धि की दृष्टि से दूसरी रचना अधिक महत्त्वपूर्ण इसीलिए हो सकी है कि उसमें कतिपय आंचलिक वैशिष्ट्य को अधिक महत्त्व मिला है। यों, नाटककार की अपेक्षा दीन-गोपाल का कविरूप ही अधिक पुष्ट प्रतीत होता है।

गोपाल (अठारहवीं शती)

गोपाल कृत 'बलिछलन नाट' व्रजावली भाषा में उपलब्ध है। यह रचना शंकर-देव कृत 'बलिछलन' काव्य पर आधारित है। नाटककार ने वहां से मात्र ढांचा लिया है, शेष निर्माण सर्वथा मौलिक है। नाटक के कतिपय गीत गोपाल की काव्यकारिता के श्रेष्ठ प्रमाण हैं।[3]

लक्ष्मीनाथ दास

व्रजावली में लिखित लक्ष्मीनाथ दास[4] की एकमात्र रचना 'कुमर-हरण नाट' प्राप्त है। नाटक की भणिता में इसका एक अन्य नाम 'कृष्ण-विजय' का भी पता चलता है। इसकी रचना आहोम नरेश चन्द्रकान्त सिंह की प्रेरणा से हुई थी। इसमें उषा-अनिरुद्ध की पुराण-कथा को नाटकीय कथावस्तु के रूप में ढाला गया है।

कैवल्यानन्द (1811-1886 ई०)

कैवल्यानन्द[5] दिहिंग सत्र के पांचवें सत्राधिकार थे। ये चिक्न गोसाईं के नाम विख्यात थे। व्रजावली में इन्होंने कई नाटक लिखे हैं। यथा—1 'कंस-वध'

---

1 उपरिवत्।
2 'जरासंध-वध' प्रस्तुत लेखक द्वारा सम्पादित होकर 'प्राच्य भारती' (114) में प्रकाशित भी हुई है।
3 उपरिवत्
4. विशद के लिए देखिए—व्रजावली पद्य-साहित्य, डॉ० कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'
5 उपरिवत्

2 **श्री रामचन्द्र जन्म-नाटक**, 3 **अमृत-मथन नाटक** इत्यादि। इनके नाटकों की भाषा तत्सम-प्रधान है जो अन्य नाटककारों से उन्हें भिन्न बनाती है। नाटकों में प्रयुक्त गीतों का भी निजी वैशिष्ट्य है। निस्सन्देह कंदल्यानन्द का स्थान ब्रजावली के उत्तम कवियों में अक्षुण्ण रहेगा।

महीन्द्र द्विज

महीन्द्र द्विज अथवा महीन्द्र[1] कदाचित् अठारहवीं शती के अन्तिम दिनों में वर्तमान थे। ब्रजावली भाषा में इनके द्वारा रचित **'बोधोदय नाट'** प्राप्त है। कतिपय दृष्टियों से यह पारम्परीण अंकिया नाटकों से भिन्न प्रकार का है। वस्तुतः यह संस्कृत के **'प्रबोध चन्द्रोदय'** की परम्परा का प्रतीकात्मक नाटक है।

उपरिवर्णित ब्रजावली के साहित्यकारों के अतिरिक्त भी अनेकों की ब्रजावली में रचनाएं विभिन्न भाण्डारों में दबी-पड़ी हैं जिनके विषय में खोज और शोध करने की आवश्यकता है।

कालान्तर में जैसे जैसे स्थानीय प्रयोग ब्रजावली में प्रविष्ट होते गए, स्थानीय भाषा का मोह बढ़ता गया, वैसे-वैसे ब्रजावली भाषा का रूप भी परिवर्तित होता गया और अन्ततः वह भी हिन्दी से दूर होती गई। एक दिन वैसा भी आया जब ब्रजावली में सर्जनात्मक कार्य पूर्णतः समाप्त हो गया। और इस प्रकार हिन्दी-क्षेत्र से असम का शताब्दियों पुराना सम्बन्ध, चाहे वह अस्थायी तौर पर ही क्यों न हो, विच्छेदित हो गया। इसका एक कारण अंग्रेजों का आधिपत्य भी माना जाएगा।

एक बात और। ब्रजावली में रचित साहित्य की प्रायः सभी पाण्डुलिपियां असमी लिपि में उपलब्ध होती हैं। इक्की-दुक्की प्राचीन पोथियों की लिपि कैथाली (कैथी) भी बताई जाती है। लिपि और तत्परिणामस्वरूप वर्तनी की भिन्नता के कारण भी ब्रजावली की रचनाएं तत्कालीन केन्द्रीय हिन्दी के मानक रूप से किंचित् भिन्न-सी प्रतीत होती हैं। फिर असमी उच्चारण से तो उनका प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। इसके बावजूद वे हिन्दी की विस्तृत परिधि के अन्तर्गत ही पड़ती हैं, उससे वे अलग नहीं हैं।

(ख) आधुनिककालीन :

असम में हिन्दी-प्रचार का संक्षिप्त रेखांकन करते हुए हम पहले ही कह आए हैं कि इस प्रदेश में हिन्दी वर्तमान शती के तीसरे दशक में नये सिरे से प्रवेश करती है किन्तु इसके सुपरिणाम सन् 1940 ई० के आस-पास ही दिखाई पड़ते हैं, उसके पूर्व नहीं। यों, हजारों हिन्दी-भाषी यहां पहले से ही थे, पर उनके सर्जनात्मक कार्य का कोई पता नहीं चलता है।

इस कालावधि में हिन्दी में मौलिक लेखन का वास्तविक प्रारम्भ सन् 1948 ई० के आस पास होता है। असमी से हिन्दी में अनुवाद-कार्य भी प्रायः उसी के आस-पास प्रारम्भ होता है। यों, हिन्दी से असमी में अनुवाद-कार्य उसके कम से कम एक दशक पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। मौलिक लेखन और अनुवाद—दोनों प्रकार

---

1 उपरिवत्।

ने कार्य हिन्दी और हिन्दीतर (मुख्यत असमी)-भाषी दोनो करते चलते है। प्रारम्भ म एसे कार्य प्राय पारस्परिक सहयोग से चलते हुए दिखाई पडते है। आज भी वह स्थिति बहुत कुछ बनी है। सर्जनात्मक कार्य करते हैं दोनो प्रकार के लोग, पर मेरे विचार से प्रादेशिक हिन्दी साहित्यकारो मे महत्व मिलना चाहिए हिन्दीतरभाषियो का ही। इस सम्बन्ध मे मैं अपने पूर्व प्रकाशित विचार को उद्धृत करने का लोभ सवरण नही कर पा रहा हू "यहा हिन्दीसेवी दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के हिन्दी-सेवियो म गणनीय हैं हिन्दी भाषी ही। इस वर्ग के अन्तर्गत अधिकाश लोग मेरे जैसे ही है, जिन्हे हिन्दीसेवी की अपेक्षा पेशेवर कहना अधिक सटीक होगा। दरअसल मेरे जैसे लोग यहा धन्धा करते हैं, मगज मारते है, अपनी रोटी कमाते हैं और छपास के आकर्षण मे कभी-कभार कुछ लिख भी मारते हैं। या, 'प्रिया-नीलकण्ठी', 'रस आखेटक' और गन्धमादन' के विख्यात लेखक—बहुत माथा खुजलाने के बाद भी द्विवेदी शैली के ललित निबन्धकारो की युवापीढी म अग्रगण्य—श्री कुबेरनाथ राय की साधनाभूमि भी असम ही है। इसे अपवाद कहना चाहिए। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि हम हिन्दी-भाषी, तथाकथित हिन्दी सेवी अपने पेशे के प्रति ईमानदार नही हैं। उत्तर-दायित्व की बात तो खैर छोडिए ही। और इसपर तुर्रा यह कि हम हिन्दी प्रचारक अथवा हिन्दी का राजदूत (?) होने का दम्भ भरते हैं।" द्वितीय प्रकार है—हिन्दीतर-भाषी हिन्दीसेवियो का, जिनमे असमी-भाषियो की सख्या प्रकृतित अधिक होनी चाहिए और है भी।

असम के आधुनिककालीन सर्जनात्मक हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व आगामी पक्तियो मे यहा के कतिपय प्रसिद्ध हिन्दीतरभाषी (इनमे वेम हिन्दी भाषी भी सम्मिलित कर लिए जाने चाहिए जो प्रकृतित हिन्दीतर-भाषी बन चुके हैं) साहित्यकारो के कार्यों को एकत्र खतिया लेना अनुचित नही होगा। इस दृष्टि स निम्नाकित के नाम लिए जा सकते हैं

छगनलाल जैन

ये प्रदेश मे हिन्दी के प्रचारात्मक और रचनात्मक कार्यों से सदा जुडे रहे हैं। इनकी कृतिया—1 हसते हसते जीना (कहानी-सग्रह), 2. इन्सान की खोज (ध्वनि नाटक), 3 सघर्ष (नाटक), 4 राह और रोडे (उपन्यास), 5 राष्ट्रभाषा-व्याकरण शिक्षा, 6 राष्ट्रभाषा-शब्दसग्रह, 7 राष्ट्रभाषा-अभिधान आदि प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त दर्जाधिक निबन्ध भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हैं। अनेक पाठ्य-पुस्तकों का भी सम्पादन किया है। साथ ही 'पूर्वज्योति' नामक साप्ताहिक पत्रिका भी प्रकाशित करते हैं।

नवारुण वर्मा

नवारुण वर्मा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति मे कलम की मजदूरी करते हैं पर असम की सिपहीगीरी भी इन्हे सम्भालनी पडती है। प्रदेश का शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार (हिन्दी) हो जिसकी निस्वावट पर इनकी लाल स्याही न फिरी हो। कवि ॥ ये कवि है। मौलिक लेखन के साथ-साथ अनुवादक के रूप में भी ख्यात हैं। इनकी मौलिक कृतिया—1 सावित बरफुकन, 2 युग देवता शकरदेव

3 **सिन्धु-मंथन**, 4 **सती जयमती**, 5 **ब्रह्मपुत्र का नाविक**, 6 **कविता सकलन**, (काव्य), 7 **काला लोहित** (उपन्यास), 8 **कहानी सकलन** इत्यादि हैं। इनकी ग्रनत कविताए, कहानिया और लेख देश की विभिन्न पत्रिकाओ—राष्ट्र सेवक, राष्ट्रभाषा-पत्र, मधुमती, माध्यम, सारिका, धर्मयुग, विश्व-ज्योति, भाषा, युवक, गन्ध-दीप, हिन्दुस्तान, आजकल इत्यादि—मे प्रकाशित हैं। असमी से हिन्दी मे कविताए, कहानिया, उपन्यास आदि भी इन्होने अनूदित किए है जिनमे कुछ प्रसिद्ध कृतियो के नाम गिनाए जा सकते हैं, यथा—'सागर देखिछा' (देवकान्त वरुवा), 'वका देओतार हाड' (नवकान्त वरुवा), 'डावर आरु नाइ' (योगेशदास), 'महात्मारपरा रुपकोवर लै' (लक्ष्मीनाथ फुकन) इत्यादि।

बापचन्द्र महन्त

बापचन्द्र महन्त का हिन्दी साहित्यकार मूलत कवि और आलोचक है। ये सही अर्थों मे हिन्दी के साधक हैं। इनकी एक कविता-पुस्तक 'देश की पुकार' प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त इनके बीसो गम्भीर आलोचनात्मक और गवेषणात्मक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हैं। इन्होने 'राष्ट्रवाणी' (पुणे) के 'महापुरुष शकरदेव विशेषाक' का सयोजन और सम्पादन भी किया है। शकरदेव विषयक एक गम्भीर आलोचनात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशनार्थ तैयार है। इनकी आलोचक प्रतिभा अधिक सजग और सामजस्यवादिनी है। इनपर मैने अन्यत्र विस्तार से विचार किया है।

रुनण आजाद डेका

ये आकाशवाणी से सम्बद्ध हैं। ये मूलत नाटककार हैं। इनकी प्रसिद्ध नाट्य कृतिया—1 **कवच** (नाटक), 2 **नई दुनिया** (एकाकी), 3 **इन्सान** (नाटक), 4 **मूला गाभरू**, 5 **बरगीत**, 6 **बिहु**, 7 **गोवालपरीया लोकगीत**, 8 **मणिपुर** 9 **कामरूप** (रूपक) इत्यादि है। ये सभी आकाशवाणी से प्रसारित तो हुए ही हैं पत्रिकाओ इत्यादि मे प्रकाशित भी हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने सैकडो नाटको का असमी से हिन्दी मे अनूदित भी किया है। जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रो से प्रसारित हुए हैं। इन्होंने कुछ पाठ्य पुस्तकें भी लिखी और अनूदित की हैं। इनका 'कवच' नाटक भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुआ है।

चित्र महन्त

चित्र महन्त राष्ट्रभाषा मे प्रचारात्मक और रचनात्मक दोनो प्रकार के कार्यों मे जुड़े रहे हैं। मौलिक लेखन के अतिरिक्त हिन्दी से असमी एव असमी से हिन्दी मे अनुवाद-कार्य भी करते रहे हैं। इनकी मुख्य कृतिया—1 **असमिया साहित्य और साहित्यकार**, 2 **राष्ट्रभाषा : विकास प्रचार, और प्रसार**, 3 **लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै** (प्रकाशित) 4 **असम** इत्यादि हैं। असमी से हिन्दी मे इन्होंने 1 **निर्मन**, 2 **इयाद्दगम** (वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य), 3 **साहित्य और प्रेम** (डॉ० वाणीकान्त काकति) इत्यादि के अनुवाद किए हैं। इनके अतिरिक्त इनके अनेक लेख भी पत्रिकाओ मे प्रकाशित हैं। कई वर्षों तक इन्होंने 'राष्ट्रसेवक' के सम्पादन का भार भी निभाया है।

सोनेश्वर दास

इन्होंने कुछ निबन्ध लिखे हैं अवश्य, पर निबन्धकार के रूप मे नही बल्कि कोशकार के रूप मे ये समादृत रहेगे । इनका 'आदर्श असमिया हिन्दी शब्दकोश' इन्हे बहुत दिनो तक अमर बनाए रखेगा ।

लोकनाथ भराली

असम सरकार के हिन्दी-पदाधिकारी (सम्प्रति, उपनिदेशक, हिन्दी) के रूप मे विख्यात भराली मूलत निबन्धकार हैं । इनकी पुस्तक 'आधुनिक मानस का सकट' भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुई है । इन्होंने असमी से हिन्दी मे 1 'मनोमती' (रजनीकात बरदलै), 2, मा (वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य) इत्यादि के अनुवाद भी किए हैं । इन्होंने कतिपय पाठ्य पुस्तकें भी तैयार की हैं ।

रजनीकात चक्रवर्ती

चक्रवर्ती जी हिन्दी के प्रथम प्रचारको म से हैं । इन्होंने अनेक वर्षों तक 'राष्ट्र सवक' का सम्पादन किया है । इनकी दो किशोरोपयोगी पुस्तकें हैं—1 महापुरुष शकरदेव एव 2 विद्यार्थी गाधीजी । समय समय पर इन्होंने कुछ लेख भी लिखे है । इनकी लिखी पुस्तक 'असम मे राष्ट्रभाषा प्रचार की झाकी' की एक पाण्डुलिपि भी देखने को मुझे मिली है । हिन्दी प्रचारक के रूप म इन्हे प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर मे सम्मानित भी किया गया था ।

नरनाथ भट्टाचार्य

ये पेश स हिन्दी-अध्यापक और रुचि से निबन्धकार हैं । इनके अनेक निबन्ध 'राष्ट्रसवक' के विभिन्न अको म प्रकाशित हैं । डॉ० वाणीकान्त काकति की पुस्तक 'पुरनि असमीया साहित्य' का इन्होन अनुवाद भी किया है ।

परेशचन्द्रदेव शर्मा

ये साहित्यकार की अपेक्षा हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप म अधिक विख्यात हैं । अनेक पाठ्य पुस्तका के सम्पादन के अतिरिक्त इन्होने कई निबन्ध भी लिखे हैं जो 'राष्ट्रसवक' के पुराने अको मे देखे जा सकते हैं । इधर वे एक हिन्दी असमी कोश के सम्पादन मे जुटे है ।

मोती मदरासी

इनका मूल नाम एस० मुत्तु सुब्रह्मण्यम है । ये तमिल भाषी हैं, किन्तु इनका कार्यक्षेत्र असम है । ये मुख्यत कहानीकार है । अब तक इनकी कुल बावन कहानिया विभिन्न पत्र पत्रिकाओं—सरिता, मुक्ता, सुप्रभात, मनोरमा, नोक झोक, अरुण, अरोडा, आज, सन्मार्ग, विश्वमित्र, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, जनरुचि, अनुनय इत्यादि—म प्रकाशित और कुछ आकाशवाणी के गुवाहाटी केन्द्र से प्रसारित हो चुकी हैं । 'कुछ कहानियाँ' मे इनकी तीन कहानिया सकलित हैं । इनकी शायद ही कोई ऐसी कहानी मिलेगी जो हास्य-व्यग्य से मिक्त अथवा पूरित न हो ।

जितेन्द्रनाथ खाग्रोन्द

ये पेशे से हिन्दी-अध्यापक और रुचि से आलोचक और निबन्धकार हैं। 'हिन्दी और असमिया के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' इनका पी एच० डी०-शोधग्रन्थ है। इनके निबन्ध 'राष्ट्रसेवक', 'विश्वभारती पत्रिका' आदि में प्रकाशित होते रहते हैं। इधर ये कतिपय पाठ्य पुस्तकों पर काम कर रहे हैं।

रमेन्द्र शर्मा :

रमेन्द्र शर्माजी भी पेशे से अध्यापक हैं। निबन्ध लेखन में इनकी विशेष रुचि रही है। इनके कई लेख 'राष्ट्रसेवक' में बिखरे पड़े हैं। लेखों का विषय मूलतः असम प्रदेश और संस्कृति है।

कमलचन्द्र बायन

कमलचन्द्र बायन भी मूलतः निबन्धकार हैं। इनके अनेक लेख 'राष्ट्रसेवक' और 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुए हैं। इनके कतिपय लेख निश्चय ही महत्वपूर्ण बने हैं।

भूपेन्द्रनाथ रायचौधरी

असमीभाषियों में हिन्दी के उदीयमान लेखकों में रायचौधरी अधिक लगनशील और उत्साही हैं। विज्ञान के विद्यार्थी और शिक्षक होते हुए भी हिन्दी के प्रति सहज अनुराग ने ही इन्हें हिन्दी लेखक बनने की दिशा में प्रेरित किया है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिताओं में इनके निबन्ध दो बार सर्वप्रथम आए हैं। दो लेखक-शिविरों में भी इन्होंने अब तक भाग लिया है। इनके कई लेख 'राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी को इनसे अनेक आशाएं हैं।

इनके अतिरिक्त चिरजीलाल जैन, धर्मचन्द काला, पीताम्बर मिश्र निर्भीक, दामोदर जोधानी, गोपालसिंह 'शांत', गणेशबिहारी शास्त्री, नवीनचन्द्र कलिता, मनेश्वर बड़ो, नरेन्द्र नाथ पटवारी, हरेन्द्रनाथ बरा, हीरेन्द्र बरा, राजकुमार इन्द्रजीत सिंह, प्रताप चन्द्र शर्मा, सोमनाथ उपाध्याय, म० अब्दुल बशर फारुक, अहमदअली साह, घनश्याम खाती नकुलराम मेंच तथा लेखिकाओं में सुमति तालुकदार, सीता देवी, निराला भराली, केदादा महन्त, निरुपमा फुकन, स्वर्ण महन्त, कुमारी बन्ती चालिहा, आइति प्रेटिस एस० लिगवा इत्यादि अनेक छोटे बड़े नाम हैं जिनकी विभिन्न रचनाएं विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से कई ने कई पुस्तकों, निबन्धों, कविताओं इत्यादि के असमी से हिन्दी में अनुवाद भी प्रस्तुत किए हैं।

पिछले तीस वर्षों में हिन्दी में अनेक सर्जनात्मक कार्य किए गए हैं। उपर्युक्त हिन्दीतर लेखकों के अतिरिक्त कई हिन्दी-भाषियों ने भी बहुत कुछ रचनाएं प्रकाशित कराई हैं। आगामी पंक्तियों में हम रचनात्मक कार्य का प्रवृत्यात्मक परिचय उपस्थित करेंगे।

्य :

ाई घाटी[1]

हरिहरप्रसाद द्विवेदी की यह पुस्तक गुवाहाटी के निकट शराईघाट में हुए
र मनापति रामसिंह एव आहोम सेनापति लाचित बरफुकन के मध्य ऐतिहासिक
पर आधारित एक वर्णनात्मक खण्डकाव्य है। काव्य नौ शीर्षकों में विभाजित है।
यह लाचित की शौर्य-गाथा हो, पर इसमें कवि ने असम के आंचलिक-सांस्कृतिक
ंग्य को आक लेने में सफलता प्राप्त कर ली है। रचना ओजगुण-प्रधान है।
ी काव्य के आवरण पृष्ठ (अंतिम) पर उल्लिखित सूचना से विदित है कि हरिहर-
ाद द्विवेदी के ही दो और काव्य—(क) युग-विहान और (ख) युग-सक्रमण भी
ाशित हुए थे, पर वे अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। अत, उनके विषय में कुछ भी कहना
म्भव है।

ोव्रनी[2] .

इस लघु काव्य (कवि के अनुसार नृत्य-नाट्य) में अर्जुन द्वारा इन्द्रनील
ि पर तपस्या कर पाशुपतास्त्र प्राप्त करने की कथा को नाट्यगीति के रूप में
म्पित किया गया है। काव्य आठ पर्वों में पूर्ण हुआ है। अर्जुन की तपस्या को खण्डित
ने के लिए उर्वशी द्वारा अन्य अप्सराओं के साथ नृत्य, उर्वशी द्वारा अर्जुन को एक
ं तक नपुंसक रहने के श्राप और अर्जुन एव किरातवेशी शिव के युद्ध की घटनाओं
ा सयोजन भी इसमें कौशलपूर्वक कर लिया गया है। इसकी भाषा तत्सम-प्रधान
न्तु भावानुरूपिणी है। पुस्तक के आवरण (तीसरे) पृष्ठ पर प्रकाशित सूचना से
ा चलता है कि रामस्वरूप मागध की चार और काव्यकृतियां—1 यक्ष-संदेश
मगधदेश की द्रोहि-महार, 3. कल्पना बड़ी हो गई और 4 स्फुट कविताएं प्रकाशित
ई थी। मुझे वे अब तक देखने को नहीं मिली हैं।

ेयसी[3]

चन्द्रभूषण शर्मा 'भूषण' की 'प्रेयसी' खण्डकाव्य है जिसकी रचना एव रूपक-
ाव्य के रूप में हुई है। पुस्तकान्त में कवि ने रूपक का निम्नांकित रूप में स्पष्टीकरण
ी कर दिया है। यथा

मन—पथिक।	दुनिया—मधुशाला।
चित्त—मतवाला (पथिक का मित्र)।	प्रवृत्ति—मधुबाला (मार्गी)।
आत्मा—प्रेयसी (वनमाला)।	ऋषिवर—विवेक।

इसकी संक्षिप्त कथा यही है कि पथिक अपनी प्रेयसी से एक क्षण भी जुदा
ों होना चाहता है, पर दुर्भाग्यवशात् उसकी प्रेयसी अन्यत्र एक ऋषि विशेष के
ाश्रम में रहने लगती है। इधर पथिक मधुशाला में मदिरा का सेवन करने लगता है।

1 लेखक—हरिहरप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन, तिनसुकिया, सं 1961 ई०।
2 लेखक—रामस्वरूप मागध प्रका०—जिला सेवा सदन, पलटन बाजार, गुवाहाटी, सन् 1962 ई०।
3 लेखक—चन्द्रभूषण शर्मा 'भूषण', प्रका०—जिला सेवा सदन, पलटन बाजार, गुवाहाटी, 1962 ई०।

एक दिन वह अपने मित्र मतवाला के साथ छककर मदिरापान करता है और मदहोशी मे ही वह उस ऋषि-विशेष के आश्रम मे जा पहुचता है, जहा होश सम्भालने पर ऋषि-कृपा से उसे पुन अपनी प्रेयसी मिल जाती है।

लाचित बरफुकन[1]:

प्रसिद्ध शराईघाटी-युद्ध की घटना पर आधारित नवारुण वर्मा के इस खण्ड-काव्य मे आहोम सेनापति लाचित की वीरता, सैन्य-सचालन-निपुणता, देशभक्ति इत्यादि का योग्य प्रकाशन हुआ है। खण्डकाव्य तीन सर्गों मे विभाजित है—निशा, चेतना और प्रभात। प्रारम्भ की 'जाग शराईघाटी' कविता 'पीठिका' का काम तो करती ही है, 'ऐतिहासिक परिचय' भी काव्य-वर्ण्य को ग्राह्य बनाने मे समर्थ है। मातृभूमि भक्ति का प्रतिपादन करना ही इस खण्डकाव्य का उद्देश्य है जिसके लिए लाचित बरफुकन जैसे योग्य माध्यम का चुनाव कवि की सूझ बूझ का परिचायक है। कवि की घोषणा है—

जो मातृभूमि की सेवा से, चले स्वार्थ को बडा मान,
प्रथम शत्रु है वह जनता का, चाहे अपना हो, या महान।

और इसके लिए शक्ति सचय आवश्यक है, चूकि शक्ति ही मुक्ति को मूर्तित करती है—

दुर्बल होकर जो इस जग मे, निज स्वतन्त्रता-कामी हैं;
भ्रान्ति, न मिल सकती है उनको, चिर शक्तिमान ही स्वामी है।

अपने वर्ण्य-विषय एव उद्देश्य प्रतिपादन की दृष्टि से पुस्तक एक उत्तम उपलब्धि है।

युगदेवता शकरदेव

नवारुण वर्मा द्वारा रचित इस चरितप्रधान काव्य का प्रकाशन 'राष्ट्रसेवक' मे धारा वाहिक रूप मे हो रहा था, पर वह सम्पूर्ण प्रकाशित न होकर बीच मे ही रुका रह गया। इसमे कवि ने असम मे वैष्णव मत के प्रवर्त्तक श्रीमन्त शकरदेव की जीवन गाथा को काव्यात्मक रूप दिया है।

सिन्धु-मथन

नवारुण वर्मा द्वारा रचित यह काव्यरूपक सिन्धु-मथन के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित होते हुए भी वर्तमान भारत की विभिन्न समस्याओ का एक सफल व्याख्यान है। इसका प्रकाशन 'राष्ट्रसेवक' मे धारावाहिक रूप से तो हो चुका है पर पुस्तकाकार रूप मे अभी प्रकाशित होना बाकी है। पुराण-कथा को आधुनिक सन्दर्भ मे ढालकर उपस्थित करने के क्रम मे ही यह एक प्रतीकात्मक काव्य भी बन गया है। इसके सभी पात्र—इन्द्र, वरुण, कुबेर, राहु इत्यादि हैं पौराणिक ही, पर सब के सब आधुनिक भारतीय मानव जैसे ही यहा अकित किए गए हैं। समस्याओ को सन्दर्भित कर उनपर अपने दो टूक विचार रखने की कला मे कवि माहिर है।

1 लेखक नवारुण वर्मा, प्रका०—असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी, 1966 ई०।

कहीं-कहीं विचार सूक्तियों में ढलकर और भी निखर उठे हैं। स्तर-निर्वाह और मूल्यांकन विषयक वैमत्य हो सकते हैं, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि समस्याओं के सन्दर्भन और वैचारिक भूमिका के निर्वाह की दृष्टि से यह दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' और धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' की परम्परा की ही कृति है। निस्सन्देह नवारुण वर्मा की कृतियों में 'सिन्धु-मंथन' सबसे बीस है, श्रेष्ठ है।

सती जयमती :

असम की सती-साध्वी स्त्रियों में जयमती का नाम सर्वोपरि है। लरा राजा के भय से जयमती के पति लाडि गदापाणि नगा पहाड़ में जा छिपे थे। उसका पता पाने के लिए राजा ने जयमती पर तरह-तरह के अत्याचार करवाए। उसे शिवसागर के जेरेंगा मैदान में एक वृक्ष से बंधवाकर बेत्राघात, कशाघात तो दिए ही, लोहे की सलाखें गर्म कर शरीर को भी दागा गया। फिर भी वह अविचलित ही रही एवं पति का पता उसने नहीं बताया। अन्तत उसकी वहीं मृत्यु हो गई। बाद में उसके पति गदापाणि ने लरा राजा को समाप्त कर स्वयं आहोम सिंहासन प्राप्त किया एवं राजा गदाधर सिंह के नाम से राज्य किया। उसीके पुत्र रुद्रसिंह ने अपने राजत्व-काल में मां की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए एक बड़ा तालाब (शिवसागर) और उसके किनारे पर एक शिवमन्दिर(जयदोल)का निर्माण कराया। यही वह घटना है जिसपर श्री अज्ञेय ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'जयदोल' की रचना की है। नवारुण वर्मा का यह (सती जयमती) काव्य भी उक्त घटना पर ही आधारित है। इसके किंचित् अंश 'राष्ट्र-सेवक' के अंकों में प्रकाशित हुए हैं, किन्तु अधिकांश अब भी अप्रकाशित ही हैं। यह नायिका-प्रधान काव्य है। इसमें जयमती के चारित्रिक वैशिष्ट्य को अंकित करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। साथ ही तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का भी कुशल अंकन यहां हो गया है।

इन काव्यों के अतिरिक्त नवारुण वर्मा के दो और काव्य—(क) ब्रह्मपुत्र का नाविक और (ख) स्फुट कविताएं, प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं।

असम की हिन्दी कविताए

चिरंजीलाल जैन द्वारा सम्पादित 'असम की हिन्दी कविताए'[1] में आठ कवियों—श्यामसुन्दर जालान, धर्मचन्द काला, सुमनलता जालान, प्रफुल्ल कुमार शर्मा, ऊषा देवी जैन, दामोदर जोधानी, नन्दलाल जोधानी और स्वयं चिरंजीलाल जैन की कुल 27 कविताए सकलित हैं। काव्यारम्भ के छह पृष्ठों के 'प्राक्कथन' में कहा गया है कि "इसके कवि न किसी एक विशेष वाद से सम्बन्ध रखते हैं और न ही किसी एक विचार-धारा के वाहक हैं।" कहना नहीं होगा कि उक्त कथन में अज्ञेय की('तारसप्तक' वाली) पंक्तियां को ही शब्द-भेद से रखने की कोशिश की गई है। इसमें मिला-जुलाकर चिरंजीलाल जैन की कविताए ही ठीक-ठाक लगती हैं। 'जीवन-लिप्सा' के विषय में उनकी इस उक्ति—"जकड़े रहती है यह आक्टोपस की भांति। हमारे मानस को आदि से अन्त तक।" में शायद ही किसीको वैमत्य हो। अन्यों की कविताए तुकबन्दियों की

1 भारती प्रकाशन, गोपाल बाजार, मनबारी, असम, सन् 1968 ई०।

सीमा से आगे या तो बढती ही नहीं है या फिर बचकानी मानसिकता की पहचान भर बन सकी है।

मुट्ठी-मुट्ठी अक्षत

'मुट्ठी मुट्ठी अक्षत'[1] में आठ कवियों—रामचन्द्र, राजकुमार 'कमल', हीरालाल तिवारी, आनन्दकुमार शर्मा 'चंचल', महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, वागीशदत्त तिवारी, मदनलाल जण्ड 'अमल' और रामविलास महतो—की कुल 57 कविताएं संकलित हैं। 'दो शब्द' के अन्तर्गत की यह घोषित प्रतिज्ञा—"मुट्ठियां अनेक हैं और अक्षत बहु विध। कई मुट्ठियां के होने के कारण से सारे के सारे अक्षत (अखण्ड) भले ही न हों, पर ये मांगल्य और सबल्य के प्रतीक हैं। ये आठों मुट्ठियां कामकाजी मध्यवर्गीय बुद्धिवादियों की हैं जो किसी आग्रह अथवा वाद से निर्लिप्त काम-काज से समय निकाल कर ईमानदारी से लिखते हैं।" संकलित कविताओं पर पूर्णतः लागू है। कविताएं तो प्रायः सबकी कवितापन से युक्त हैं ही, पर रामचन्द्रजी की रचनाएं सर्वोत्तम हैं। उनकी 'विषमा पृथ्वी' तो किसी भी उत्कृष्ट काव्य संकलन का शृंगार बन सकती है। यों, उनकी सभी कविताएं संश्लिष्ट अनुभव के टटकेपन की कुशल अभिव्यक्ति हैं। रामचन्द्रजी के समानान्तर हैं रामविलास महतो, जिनके काव्यचित्र सैकड़ों अन्य काव्य चित्रों में मिला दिए जाने पर भी अपनी निजता के कारण सहज ही छांट लिए जाएंगे। इसमें संकलित कतिपय शेर, गजलें और रुबाइयां समय से पीछे की वस्तुएं हैं। राजकुमारजी के गीत अच्छे हैं। यों, 'एक जिन्दगी', 'आजादी' 'इतिहास के अपराधी' इत्यादि भी समय को सन्दर्भित करने में सफल हैं।

देश की पुकार[2]

श्री बापचन्द्र महन्त ने अपनी इस रचना को 'प्रबन्ध-कविता' कहा है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में मैं अपने पूर्व प्रकाशित विचार को ही यहां उद्धृत कर रहा हूं 'इसे कवि के प्राण-वल्लकी के तारों की मदिर झंकार की अपेक्षा मस्तिष्क मथन से उद्भूत बुद्धि व्यापार की रागात्मक व्यक्ति कहना चाहिए। इसकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति बौद्धिक विकास के रागात्मक प्रेषण का सूचक है। जीवन की निकटता के अतिरिक्त बन्ध का सश्लेष एवं इंगित की स्पष्टता पुस्तक की निजी विशेषताएं हैं। सही अर्थों में यह विचार-काव्य है। विचार एक बिन्दु से प्रारम्भ होकर अग्रे-अग्रे निखरता गया है। व्यक्त विचार हैं जाने-पहचाने ही, पर मौलिकता है उनके प्रस्तुतीकरण में। कवि महसूसता है कि बाहर से आनेवाले भारतभूमि को बाजार ही बनाएंगे और बहुत होगा तो इसे सैनिक शिविर में परिणत करेंगे। अतः पश्चिमी विचारों का अनावश्यक आयात लाभप्रद नहीं है। × × × संकलित कविताएं इसलिए उल्लेख्य नहीं कि इनकी भाषा भावानुवर्तिनी है, शैली नई है अथवा कल्पना का एकीभाव (Esemplastic) है। ये, या इनमें से कुछ विशिष्टताएं भी किसीके लिए गौरव की बातें हो सकती हैं, होती हैं, पर श्री महन्तजी की लब्धि एक भिन्न कारण से भी महत्व की अधिकारिणी

1 भारती प्रकाशन, गुवाहाटी 1 असम, सन् 1969 ई०।
2 परिवेशक—नवीन पुस्तक भण्डार, जोरहाट-1 असम, सन 1972 ई०।

है। वह कारण है—भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत लिखी गई कविताओं का जटिल किन्तु सफल संघटन। हिन्दी काव्याकाश के विस्तार में यह अल्प प्रयास होकर भी निर्माण में महान इसलिए माना जाएगा कि यह हिन्दीतरभाषी की मन साधना है। महन्तजी के कवि का यहां अविश्वसनीय और कठिन विकास हुआ है।" वस्तुतः 'देश की पुकार' अपने-आपमें एक श्रेष्ठ कृति है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में 'विचारों की मौलिकता, भावना की गहराई, दृष्टि की व्यापकता तथा उन्मेषिणी कला" का इसमें योग्य संयोग हुआ है।

उपर्युक्त चर्चित कवियों के अतिरिक्त भी अनेक छोटे-बड़े कवियों की कतिपय रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में आए दिन देखने को मिलती हैं। इनमें धर्मदेव तिवारी, श्रीमती शकुन्तला शुक्ल 'नीरसा', भूपेन्द्रनाथ रायचौधरी, इन्द्र हाजारिका इत्यादि के नाम प्रमुख हैं। इनमें से कइयों की कविताएं आकाशवाणी के गुवाहाटी केन्द्र से प्रसारित भी हुई हैं।

निबंध :

निबन्ध अथवा निबन्ध पर प्रकाशित पुस्तकों की चर्चा के पूर्व यह संकेत कर देना आवश्यक है कि हिन्दी के आधुनिक निबन्धकारों में बहुचर्चित नाम कुबेरनाथ राय का है। यों उनकी जन्मभूमि है गाजीपुर (उत्तरप्रदेश) पर बीसों वर्षों से उनकी साधनाभूमि असम ही है। उनकी 'प्रिया नीलकण्ठी', 'रस आखेटक', 'गन्धमादन', 'विषाद-योग', 'लौह-मृदंग' आदि निबन्ध-पुस्तकों से प्रायः सभी हिन्दी पाठक परिचित हैं। इनके अतिरिक्त भी उनकी पचासों रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। मैं यहां उनकी पुस्तकों पर अलग-अलग चर्चा न करते हुए मात्र उनकी निबन्धकला पर अपने पूर्वप्रकाशित विचार दुहरा रहा हूं—'पिछले दशक में जिन कुछ निबन्धकारों ने अपने को प्रतिष्ठित किया है, उनमें कुबेरनाथ राय प्रथम पांक्तेय हैं। विषय चाहे नवीन हो या प्राचीन, विचारित समस्या समसामयिक हो या शाश्वत, राय जी के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसका प्रारम्भ दार्शनिक लपेट में ही करें। रायजी के समक्ष जो वस्तु, घटना, सन्दर्भ अथवा तथ्य होता है उसीमें वे प्रारंभ कर परस्पर सम्बद्ध असम्बद्ध अनेक प्रासंगिक-अप्रासंगिक विषयों को स्पर्श करते हुए या सूत्रों को सजोते हुए अपनी बात कहते नहीं थकते। जहां वही उनकी बात चुक जाती है, वहीं निबन्ध पूर्ण हो जाता है और सारे अप्रासंगिक अथवा असम्बद्ध-से दिखनेवाले सन्दर्भ वहां ऐसी अन्विति और एकसूत्रता पा लेते हैं कि विषय और लेखकीय लक्ष्य पूर्ण स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः उनका निबन्ध-कौशल आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध-कौशल को स्मरण करा देता है।'[1] उनके निबन्ध-लेखन में जो निजता और विशिष्टता है, उसमें योगदान, चाहे वह किंचित् ही क्यों न हो, असम का भी है। उनके लेखन ने असम को दोष हिन्दी-क्षेत्र में मर्यादित करने में योग्य भूमिका निभाई है। उनकी निबन्ध-पुस्तकों के अतिरिक्त निम्नांकित पुस्तकें भी महत्त्वपूर्ण हैं

---

1 निबन्ध निकुंज, सम्पादक—कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', पृ० 14-15।

भारत की आत्मा[1]

ध्रुव नारायण शुक्ल के निबन्ध-सकलन 'भारत की आत्मा' मे कुल सात निबन्ध हैं। 'गीता के प्रेरणादायक प्रसग' इसमे सबसे लम्बा—साठ पृष्ठों का—निबन्ध है। सकलित निबन्धों के सम्बन्ध मे प्राग्ज्योतिष कॉलेज के भूतपूर्व प्राचार्य एव विश्व हिन्दू परिषद की असम शाखा के अध्यक्ष तीर्थनाथ शर्मा का यह कथन "धर्म, सस्कृति और जीवन के आदर्शों को लिखने के लिए केवल पाण्डित्य का सम्बल ही पर्याप्त नही है, बल्कि उन विषयो को जिन्हे लेखक ने आगे बढाया है, हृदयानुभूति और श्रद्धा से अनुप्राणित होना चाहिए। प्रस्तुत ग्रन्थ मे हृदयानुभूति और श्रद्धा तो है ही, लेखक की विद्वत्तापूर्ण पहुच भी स्पष्ट है।" उचित ही है। प्रत्येक निबन्ध मे पश्चिमी लेखको के अधिकाश उद्धरण अग्रेजी मूल मे ही रखे गए है। यदि उन्हे हिन्दी मे ही अनूदित कर रखा जाता तो अधिक उत्तम होता।

आधुनिक मानस का संकट[2]

लोकनाथ भराली की यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत भी की गई है। इस पुस्तक मे लेखक ने आधुनिक भारत की सकटग्रस्त मानसिकता पर सविस्तर विचार किया है। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय मानस मे अपने गौरवोज्ज्वल अतीत का विस्मरण, परकीयो का अन्धानुकरण, अकर्मण्यता, क्षेत्रीय राष्ट्रीयता, आचलिक स्वाभिमान इत्यादि अनेक विषैली प्रवृत्तिया पनपी है। फलत भारत का मानसिक जगत् सकुचित होता हुआ प्रतीत होता है, यह चिन्त्य है। विश्व मच पर अपने राष्ट्रीय जीवन, स्वाभिमान, सम्माननीय व्यक्तित्व आदि को प्रतिष्ठित करने के लिए भारतीय मानस का सस्कार किया जाना आवश्यक है। यही इस पुस्तक का प्रतिपाद्य है। कहना चाहिए कि इसमे लेखक ने आधुनिक भारतीय मानस की सकटग्रस्तता का विश्लेषण करते हुए उसकी समाप्ति के लिए कतिपय विधायक उपायो पर विचार किया है।

श्री भराली के विभिन्न विषयो से सम्बन्धित अनेक निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ म भी बिखरे पडे है। इनके अतिरिक्त कई अन्य असमी-भाषी भी श्रेष्ठ निबन्धकार है किन्तु उनके निबन्ध पुस्तकाकार प्रकाशित नही हुए हैं। सभी पत्र-पत्रिकाओ मे ही बिखरे है। इस दृष्टि से कतिपय महत्त्वपूर्ण निबन्धकारो की चर्चा आग की जाती है। यथा—

निबन्धकारो मे कई दृष्टियो से सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं—बापचन्द्र महन्त। इनके 'शकरदेव', 'ब्रजावली के दृश्य काव्य', 'ब्रजावली भाषा का स्वरूप' (विश्वभारती पत्रिका) 'शकरदेव के साहित्य की रूपरेखा', 'असम की ब्रजावली-भाषा मे भटिमा और गीत-साहित्य', 'असम मे मनसादेवी और मनसा-साहित्य', 'पद्मपुराण का उत्स और विकास' (परिषद्-पत्रिका) इत्यादि निबन्ध जितने आलोचनात्मक हैं, उतने ही गवेषणात्मक भी। विषय की मौलिकता तो स्वय शीर्षक ही बता रहे है। हिन्दी की नि स्वार्थ सेवा एव असम के साहित्य और उसकी सस्कृति को हिन्दी मे अवतरित करना ही आपके लेखन का उद्देश्य है।

---

1 सपादक—ध्रुवनारायण शुक्ल, मुद्रक—सत्यो-सा, पान बाजार, गुवाहाटी, सन 1967 ई०।
2 सपादक—लोकनाथ भराली, प्रकाशक—विनोद पुस्तक मदिर, आगरा, सन् 1972 ई०।

श्रीमती केशदा महन्त, बापचन्द्र महन्त की पत्नी एवं असमी, संस्कृत और हिन्दी की विदुषी हैं। आप तीनों भाषाओं में लिखती भी हैं। आपके कतिपय प्रसिद्ध आलोचनात्मक निबन्ध 'लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा' (पाचजन्य), 'शकरदेव के साहित्य में मार्गीयता' (हिन्दू विश्व), 'शकरदेव और माधवदेव के साहित्य मे राम-सीता का पूर्वराग', 'माधवकन्दलि कृत रामायण' (परिषद-पत्रिका) हैं। इनके अतिरिक्त 'राष्ट्रसेवक' इत्यादि में भी आपके कई श्रेष्ठ निबन्ध प्रकाशित हैं। आपके निबन्धों में भी आलोचना और गवेषणा साथ-साथ चलती हैं।

श्री राही कौण्डिन्य के लेख 'पूर्वांचल की पाण्डुलिपियां,' 'सामति रामायण', 'असम की बुरजी-साहित्य' (परिषद-पत्रिका) इत्यादि सर्वथा अछूते और नवीन विषयों से सम्बद्ध हैं। विचारों की गम्भीरता एवं प्रतिपाद्य की नवीनता इनके निबन्धों में सर्वत्र देखी जा सकती है।

छगनलाल जैन ने असमिया भाषा और साहित्य एवं संस्कृति से सम्बन्धित कई निबन्ध लिखे हैं जो विभिन्न सन्दर्भ-ग्रन्थों में मुद्रित-प्रकाशित हैं।

नवारुण वर्मा के लेखों में 'असमिया साहित्य का परिचय' (माध्यम), 'शकरदेव' (धर्मयुग), 'माधवदेव का बाललीला वर्णन' (विश्वज्योति), 'भारतीय भाषाविद् बाणीकान्त काकति' (भाषा), 'असमिया कहानी साहित्य' (गन्धदीप) आदि विशेष महत्त्व के हैं।

चित्र महन्त के लेख और सम्पादकीय भी महत्त्व के हैं। इन्होंने भी असमी साहित्य और संस्कृति विषयक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराए हैं। इनके लेखों का एक संकलन शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है।

परेशचन्द्र देव शर्मा के निबन्धों में 'असम के लोकगीत' एवं 'असम के रेशम की कथा' विशेष ध्यानाकृष्ट हैं।

नरनाथ भट्टाचार्य हिन्दी के अध्यापक और कुशल निबन्धलेखक हैं। इनके निबन्ध मूलत 'राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित होते रहे हैं। इनके लेखों में विषय-वैविध्य और विस्तार दोनों देखे जा सकते हैं। असमी संस्कृति विषयक इनके निबन्ध विशेष महत्त्व के हैं।

तरुण आजाद डेका मूलत नाटककार हैं, किन्तु 'गारो जाति', 'बडो कछारी तथा उनके गीत', 'असम की नारियां' इत्यादि निबन्ध उन्हें सहज ही निबन्धकार के रूप में भी प्रतिष्ठित करते हैं।

रमेन्द्र शर्मा ने 'राष्ट्रभाषा', 'असमिया और असमिया जन जीवन', 'पूर्वांचल में पिबूजा की परम्परा', 'असम में रगमच की परम्परा', 'रामायणकार तुलसी और माधवकन्दलि', 'असम के ग्राम्य-जीवन की झांकी', 'पद्मश्री नलिनीबाला देवी' इत्यादि कई उत्तम निबन्ध प्रकाशित किए हैं।

नृपेन्द्रनाथ रायचौधरी उदीयमान लेखकों में प्रथम पांक्तेय हैं। इनके 'धर्म के सम्बन्ध में गांधी जी के विचार', 'भक्ति-रत्नावली,' 'महापुरुष शकरदेव एवं चुनौती', 'सन्दर्भ के बीच युवापीढ़ी' इत्यादि निबन्ध न केवल महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि इस बात के भी प्रमाण हैं कि लेखक गंभीर से गंभीर विषय को भी बड़ी सहजता से पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर सकता है।

जितेन्द्रनाथ आजाद हिन्दी के व्याख्याता और निबन्धकार हैं। इनके निबन्ध प्रायः

'विश्वभारती पत्रिका', 'राष्ट्रसेवक', 'प्राच्य भारती', 'जागरण' इत्यादि विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। 'असमिया के ऐतिहासिक उपन्यास' इनका बहुचर्चित एवं सुदीर्घ निबन्ध है।

उपर्युक्त निबन्धकारों के अतिरिक्त मनेश्वर बड़ो, कमलचन्द्र बायन, कुमारी बन्ती चालिहा, नकुलराम मेच, आइति प्रेटिस एस० लिगवा इत्यादि के भी निबन्ध कभी-कभार देखने को मिल जाते हैं। इसी प्रकार सुरेन्द्रनाथ साहु, सीतादेवी, सोनेश्वर दास, महेश्वर महन्त, हरेन्द्रनाथ बरा, श्रीमती स्वर्ण महन्त, घनश्याम खाती, म० आबुल बशर फारुक इत्यादि के भी एक-दो लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

कथा-साहित्य :

कथा-साहित्य के लेखक अपेक्षया कम हैं। अब तक केवल एक उपन्यास और चार कहानी-संग्रहों का प्रकाशित होना भी इसीका प्रमाण माना जाएगा। आगे प्रत्येक पुस्तक का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। यथा—

राह और रोड़े :

'राह और रोड़े'[1] छगनलाल जैन का ही नहीं, बल्कि असम के लेखकों द्वारा लिखा जानेवाला एकमात्र हिन्दी उपन्यास है। प्रकाशक के शब्दों में "राष्ट्रभाषा के प्रचार-आन्दोलन पर आधारित इस लघु उपन्यास में अवश्य ही कुछ नवीनता है, जो पाठक के हृदय को सिर्फ छूती ही नहीं, अपितु झकझोरकर रख देती है। वह चाहे अंग्रेजी-भक्त हो, या हिन्दी-प्रेमी, चाहे हलका पाठक हो या गम्भीर अध्येता, इस उपन्यास से एक नई दिशा, एक नई प्रेरणा प्राप्त करता है। × × × हिन्दी प्रचार के महान् कार्य में रत हमारे प्रचारक-प्रचारिकाओं को इसमें सिर्फ अपना प्रतिबिम्ब ही नहीं नजर आएगा, अपितु उन्हें भी इससे एक नई चेतना, नई राह और नई सूझ-बूझ प्राप्त होगी।" इसमें 'जीवन' और 'रेणु' दो मुख्य पात्र हैं एवं पूरी कथा उन्हींके माध्यम से बढ़ी है। इसमें हिन्दी-प्रचार के मार्ग में उत्पन्न होनेवाली बाधाओं का बड़ा ही ललित आख्यान हुआ है। रचना-प्रचारधर्मी होते हुए भी औपन्यासिक तत्वों से हीन नहीं है।

हंसते-हंसते जीना :[2]

श्रीछगनलाल जैन की कहानियों का यह संग्रह इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इसमें संकलित कहानियां श्रेष्ठ हैं, बल्कि इसलिए कि असम प्रदेश एवं वहां के वातावरण तथा मिट्टी की गन्ध से ओत-प्रोत इन कहानियों का अपना वैशिष्ट्य है। यदि कहानीकार उपदेशक और प्रचारक होने से अपने को बचा लेता तो शायद ये कहानियां उत्तम होतीं।

1. प्रकाशक—साहित्य सेवा सदन, गुवाहाटी, असम, सन् 1963 ई०।
2. प्रकाशक—उपरिवत्, 1960 ई०।

मुकूल[1] :

श्री रोका की कुल ग्यारह कहानियो के इस सकलन की अधिकाश कहानिया कहानीपन से हीन हैं। यो, 'मुकुल' ही ले-देकर अच्छी कही जा सकती है, जिसपर सग्रह का नामकरण भी किया गया है।

कहानी की होली[2] .

चन्द्रभूषण शर्मा 'भूषण' के इस सकलन की सभी रचनाग्रो पर कहानी की अभिधा सीमित अर्थ में ही लागू होती है। कहानियो के अतिरिक्त इसमे साहित्येतिहासात्मक निबन्ध, रम्य रचना और गद्यगीत भी सकलित कर लिए गए है। यों, अधिकाश सकलित रचनाए हैं कहानी ही। 'रक्तपति की खोज', 'श्री जडभरतनाथ अभिनन्दन ग्रन्थ', 'होली मे नया व्यवसाय' जैसी रचनाए हास्य से अधिक शिष्ट व्यग्य को उपस्थित करने मे समर्थ हैं। भाषा की साफगोई के साथ-साथ व्यग्य का पैनापन प्राय सभी रचनाग्रो मे देखा जा सकता है।

कुछ कहानिया[3] :

इस सग्रह मे छह कहानीकारो—मोती मदरासी, शारदा शकर कोचक, ओमप्रसाद दुबे, धर्मदेव तिवारी, महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी और राजेन्द्रप्रसाद—की कुल तेरह कहानिया सकलित है। इनमे प्रथम दो लेखक ही अहिन्दी भाषी हैं, शेष हिन्दी-भाषी। यो, हिन्दी-भाषियो मे धर्मदेव तिवारी की कहानिया ही कहानीपन की दृष्टि से खरी है। अहिन्दी-भाषियो मे कोचक की कहानियो से मोती मदरासी की कहानिया बीस पडती हैं। इस सग्रह की 'मोमाइबाटा गढ' और 'बूढे सुइत का स्वप्न'—इन दो कहानियो की ऐतिहासिक-सास्कृतिक पृष्ठभूमि ग्रसम ही है। सब मिलाकर यह सग्रह ग्रसम से ग्रद्यावधि प्रकाशित कहानी-सग्रह मे सर्वोत्तम उपलब्धि है।

उपर्युक्त सग्रहो के कहानीकारो के अतिरिक्त अहिन्दी-भाषी कहानीकारो का यहा प्राय अभाव-सा है। चर्चित कहानीकारो मे ले-देकर मोती मदरासी ही ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने सबसे अधिक कहानिया लिखी हैं। इसके अतिरिक्त नवारुण वर्मा ने भी थोडी कहानिया लिखी हैं जिनमे 'परशुराम का कुठार' ('सारिका' मे प्रकाशित) अधिक चर्चित हुई थी एव उसका गुजराती मे अनुवाद भी किया गया था।

नाटक :

इन्सान की खोज[4]

छगनलाल जैन द्वारा रचित 'इन्सान की खोज' ही इस विधा की प्रथम कृति है। यह एक ध्वनि-एकाकी है। है यह रेडियो प्रसारण के लिए ही, पर विशेष प्रायोजनो के साथ इसे रगमच पर भी सफलतापूर्वक ग्रवतरित किया जा सकता है। 'दो शब्द' मे

---

1. प्रकाशक—श्रीरोका, सादिया, ग्रसम, सन् 1960 ई०।
2. प्रकाशक—विद्या सेवा सदन, पलटन बाजार, गुवाहाटी, सन् 1963 ई०।
3. भारती प्रकाशन, गुवाहाटी 1 सन् 1970 ई० में प्रकाशित।
4. नवभारती प्रकाशन, कलकत्ता-7 से सन् 1949 ई० में प्रकाशित।

व्यक्त ग्रानन्द कौसल्यायन की इस उक्ति "इस एकांकी का अपना टेक्नीक है—नया। भाषा चुलबुली न सही किन्तु चुस्त ग्रौर परिमार्जित है। सन्देश या उपदेश जो किसी भी कृति की जान है, वह इस नाटक में प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त हुआ है—ग्रादमी दानव से मानव बने ग्रौर मानव से देवता।" से शायद किसी पाठक, दर्शक या श्रोता को आपत्ति नहीं होगी। वस्तुतः यह टेकनीक ग्रौर विषयवस्तु, दोनों दृष्टियों से नवीन है।

संघर्ष[1]

छगनलाल जैन का यह नाटक सन् 1942 ई० के स्वातन्त्र्य-समर पर आधारित है। इसमें भारतीय जनता ग्रौर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के संघर्ष को ही विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया गया है। लेखक यह मानकर चला है कि "जीवन का इतिहास विभिन्न प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों के संघर्ष का इतिहास है। जहां संघर्ष नहीं, वहां गति नहीं, उन्नति नहीं, जीवन नहीं।" इस नाटक में बहुलता है पुरुष पात्रों की ही—नारी पात्र केवल सरला ही है। यह नाटक कई बार सफलतापूर्वक अभिनीत भी हो चुका है। इसकी प्रस्तावना में आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा है कि "पुरानी तथा नवीन पीढ़ी के विचारों में जो संघर्ष चल रहा है, उसका अच्छा चित्र लेखक ने खींचा है।" रचना निश्चय ही अपने विषय की अकेली ग्रौर उत्तम है।

सीमान्त सिन्दूर

चन्द्रभूषण शर्मा 'भूषण' के 'सीमान्त सिन्दूर' का प्रकाशन सन् 1962 ई० के आस पास हुआ था एवं वह कदाचित् "असम की परिस्थिति से सम्बन्धित प्रथम नाटक" भी था। अद्यावधि पुस्तक के अनुपलब्ध होने के कारण उसके सम्बन्ध में कुछ भी कहना असम्भव है।

कवच[2]

तरुण आजाद डेका कृत 'कवच' नाटक आकाशवाणी से उनके पूर्वप्रसारित रूपक 'मूला गाभरू' का ही किंचित् परिवर्तित-परिवर्धित रूप है। ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित यह नायिका-प्रधान नाटक है। इसकी नायिका मूला गाभरू है। उसका पति आहोम सेनापति फ्रासेंग बरगोहाइ युद्ध में मारा जाता है। उसके लिए मूला गाभरू ही अपने को अपराधिनी मानती है, क्योंकि युद्धक्षेत्र में जाने के पूर्व उसे वह 'कवच' नहीं दे सकी थी। यहां कवच का अर्थ धातुनिर्मित आवरण नहीं, बल्कि वह विशेष वस्त्र है जिसे एक रात में ही सूत कातने से वस्त्र बुनने तक की प्रक्रिया पूर्ण कर आहोम माताएं अपने पुत्रों को, बहनें अपने भाइयों को ग्रौर पत्नियां अपने पतियों को देती थीं। मूलागाभरु द्वारा अपने पति को कवच नहीं दिए जाने का कारण था उस समय उसका (मासिक धर्म के कारण) अपवित्र होना। पति के मृत्युपरान्त मूला गाभरू अपनी सहेलियों सहित स्वयं युद्ध में कूद पड़ी ग्रौर युद्ध करते करते अपने प्राण त्याग दिए। इस युद्ध में आहोमों की पराजय विजय में बदल गई। असम की ऐतिहासिक नारियों में वीराङ्गना मूला गाभरू का नाम देश प्रेम के लिए सदा अमर रहेगा। यहां इसी घटना के आधार पर मूला-

1 वही, सन् 1950 में प्रकाशित।

2 प्रकाशन—असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी, 1968 ई०।

गाभरू के चारित्रिक वैशिष्ट्य को नाटककार ने नाटक का निर्माण किया है। यह नाटक भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हो चुका है।

तरुण आज़ाद डेका आकाशवाणी के गुवाहाटी केन्द्र से सम्बद्ध हैं। नाटक लिखना, अनूदित करना एवं उसे प्रसारित करना और कराना उनके लिए न केवल जीविका का साधन है, बल्कि अब वही हॉबी भी है। इन कलाओं में वे दक्ष हैं। नाट्य-विधा के अन्तर्गत इनकी अनेक मौलिक रचनाएं प्रसारित और प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमें नई दुनिया (एकांकी), खूनी इंसान (नाटक), बरगीत, बिहु, गोपालपरीया लोकगीत, मणिपुर, कामरूप, मीराबाई, रानी दुर्गावती रुक्मिणी : शोणित कुंवरी (रूपक) इत्यादि विशेष महत्त्व के हैं। श्री डेका के अनूदित नाटकों की चर्चा यथावसर की गई है। संक्षेप में यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि असमी-भाषियों में हिन्दी के मौलिक नाटक-लेखन में तरुण आज़ाद डेका अद्यावधि अग्रगण्य हैं।

रानी जयमती

शंकरलाल शर्मा का यह नाटक भी नायिका प्रधान है। इसका आधार भी ऐतिहासिक है। ऊपर नवारुण वर्मा के इसी नाम के काव्य की चर्चा की गई है। कथा-सूत्र वही है। उसे ही यहां नाटकीय रूप भर दिया गया है और किसी प्रकार की नवीनता नहीं है।

भरत-माण्डवी[1]

उमेशचन्द्र मधुकर की 'भरत-माण्डवी' भी एक चरित्रप्रधान काव्य नाटक है। इसमें प्रसिद्ध पुराण-चरित्र भरत के वैशिष्ट्य को ही नवीन सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। लेखक की स्वीकृति है कि 'यदि वाल्मीकि प्रधानतः सीता के कवि थे, यदि तुलसी प्रधानतः राम के कवि थे और यदि मैथिलीशरण गुप्त प्रधानतः उर्मिला के कवि थे तो मैं प्रधानतः भरत का कवि हूं।" इस नाटक के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि लेखक ने "भरत के चरित्र को घटना-प्रवाह के भीतर स्थापित करके नया वैशिष्ट्य ला दिया है। यह चरित्र अब इस काव्य के द्वारा 'पाजिटिव कैरेक्टर' का रूप ले सका है।" मधुकर का यह काव्य-नाटक रंगमंच पर भी खरा उतरा है एवं दर्शकों में पुनः-पुनः सराहा गया है।

उपर्युक्त नाटककारों के अतिरिक्त कई अन्य लेखकों ने भी इस विधा पर लेखनी चलाई है। इस दृष्टि से प्रतापचन्द्र शर्मा का 'सीमान्त-संग्राम का एक दृश्य' (एकांकी) महेन्द्र डेका का भूदान (एकांकी) इत्यादि प्रमुख हैं। ये सभी 'राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित हैं।

जीवनी और संस्मरण :

वन्दनं-स्मृति-ग्रन्थ[2]

असम के लोकप्रिय नेता एवं प्रथम प्रधानमन्त्री (उस समय प्रान्तीय सरकार

---

1 भरत माण्डवी नाट्य-समिति, कालीबाड़, असम, 1970 ई०।
2 वन्देमा प्रकाशन, डिब्रुगढ़, असम, सन् 1952 ई०।

के मुख्यमन्त्री को प्रधानमन्त्री ही कहा जाता था) श्री गोपीनाथ बरदलै की मृत्यु के उपरान्त उनकी स्मृति में प्रकाशित इस ग्रन्थ में प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय नेताओं तथा कई साहित्यकारों के संस्मरण संकलित किए गए हैं। इसमें कई रचनाएं असमी भी हैं जिन्हें देवनागरी लिपि में ही मुद्रित किया गया है। इसमें प्रकाशित दशाधिक संस्मरण साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं। संस्मरणों के एकत्र संकलन की दृष्टि से यह असम की न केवल प्रथम बल्कि विशिष्ट देन है। साथ ही अपने विषय की यह अकेली पुस्तक है।

विद्यार्थी गांधीजी

हिन्दी के प्रचारक श्रीरजनीकान्त चक्रवर्ती 'अरुण' की यह लघु रचना नव सिखुओं, मुख्यतः किशोरों की दृष्टि से अधिक उपयोगी है। इसमें लेखक ने गांधीजी के विद्यार्थी-जीवन के कतिपय अंशों का प्रेरणादायक रूप में वर्णन प्रस्तुत किया है।

शंकरदेव[1]

श्रीरजनीकान्त चक्रवर्ती 'अरुण' की यह पुस्तक 'समाज विकासमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित है। इसमें असम के महापुरुष भक्तप्रवर शंकरदेव की संक्षिप्त जीवनी एवं उनकी कुछ चुनी हुई 'अमृतवाणी' दी गई है। पुस्तक एक विशेष उद्देश्य—'बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई'—से प्रेरित है। रचना किशोरोपयोगी है।

असम-गौरव[2]

श्री विचित्रनारायण दत्त बरुवा की इस पुस्तक में असम और उसके निवासियों का प्रथम संक्षिप्त परिचय दिया गया है। तदुपरान्त असम के कतिपय ऐतिहासिक पुरुषों की संक्षिप्त जीवनियां रखी गई हैं। इसमें कुल अठारह चरित्रों का निरूपण हुआ है। अन्तिम दो खण्डों में सन् 1926 ई० के पाडू-कांग्रेस और सन् 1942 ई० के आन्दोलन के विवरण प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकार यह पुस्तक संक्षिप्त होते हुए भी अधिक उपयोगी बन सकी है।

साहित्यरथी लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा[3]

असमी के साहित्यरथी लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा की जन्मशतवार्षिकी के अवसर पर इस लघु पुस्तिका का प्रकाशन असम साहित्य सभा के प्रचार विभाग की ओर से किया गया था। इसमें बेजबरुवा के जीवन, महत्त्व इत्यादि के साथ-साथ उनके साहित्यकार के विभिन्न रूपों—सम्पादक, आलोचक, कहानीकार, कवि, व्यंग्यकार, नाट्यकार इत्यादि का संक्षिप्त किन्तु सटीक परिचय दिया गया है। पुस्तक आकार में लघु होने के बावजूद उपलब्धि में महान् इसलिए हो सकी है कि हिन्दी में यह अपने विषय की एकमात्र रचना है। ऐसी छोटी-छोटी पुस्तकों के प्रकाशन की आज और अधिक

---

1. सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1960 ई०।
2. लायर्स बुकस्टाल, गुवाहाटी।
3. असम साहित्य सभा, जोरहाट, सन् 1968 ई०।

आवश्यकता है।

लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै[1]

श्री चित्र महन्त ने इस पुस्तक मे असम के लोकप्रिय नेता एव प्रथम प्रधानमन्त्री श्री बरदलै की जीवनी और उनके महत्त्व का सविस्तार वर्णन किया है। इसके पूर्व इन्होंने असमी म भी बरदलैजी की जीवनी लिखी थी। उसकी लोकप्रियता से प्रेरित होकर इन्होंने हिन्दी म भी इस स्वतन्त्र पुस्तक की रचना की है। सरल किन्तु ललित भाषा म लिखी गई यह पुस्तक अपने विषय की हिन्दी मे एकमात्र महान् उपलब्धि है। राष्ट्रपुरुषो की ऐसी जीवनिया न केवल हिन्दी के भाण्डार की वृद्धि करती हैं, बल्कि एक विशिष्ट अभाव की पूर्ति भी करती हैं।

इन पुस्तको के अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे भी इस विधा की कई रचनाए बिखरी पडी हैं। इस दृष्टि से चित्र महन्त की 'मिजो जाति' (रिपोर्ताज) राममागर सिंह की 'त्रिपुरा' (रिपोर्ताज), छगनलाल जैन की 'नीलमणि फुकन मेरी नजरों में' (सस्मरण), माइति ग्रेटिस एस० लिंगवा की 'खासी पर्वत की नारी जीवन' (रिपोर्ताज), सोमनाथ उपाध्याय का 'असम की आदि जाति कछारी' (रिपोर्ताज), राजकुमार इन्द्रजीत सिंह की 'मणिपुर एक दृष्टि' (रिपोर्ताज), सुमति तालुकदार की 'नीलमणि फुकन पर एक दृष्टि' (सस्मरण) इत्यादि विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं।

ज्ञान का साहित्य

कामाख्या माहात्म्य[2]

श्री शिवकृष्ण शर्मा और श्री विष्णुकान्त शर्मा-कृत इस लघु पुस्तिका मे असम के प्रसिद्ध शक्तिपीठ कामाख्या का सक्षिप्त इतिहास, विभिन्न पुराणो मे प्राप्त माहात्म्य एव उसके वर्तमान रूप का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तीर्थ-विवरणिका की दृष्टि स इस पुस्तक का महत्त्व है।

कामरूप-कामाख्या[3]

कामाख्या के प्रधान पुजारी प०. धरणीकान्तदेव शर्मा की यह पुस्तक भी पूर्वविवर्णित पुस्तक की तरह ही तीर्थ विवरणिका-साहित्य है। पूर्वचर्चित पुस्तक की अपेक्षा इसमे इतिहास और पौराणिक माहात्म्य का अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है। साथ ही इसमे वर्तमान रूप और भौगोलिक परिवेश का भी यथार्थ वर्णन कर दिया गया है। इसीलिए यह पुस्तक पूर्व पुस्तक की अपेक्षा अधिक उपयोगी बन सकी है।

असम का इतिहास[4]

तरुण आजाद डेका ने अपने इस पुस्तक मे असम मे आहोम शासन का सक्षिप्त

1 लेखक—चित्र महन्त, सरोज प्रकाशन, इलाहाबाद 2. सन् 1975 ई०।
2 वरुआ समिति, कामाख्या।
3 वही, सन् 1962 ई०।
4 असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति 1974।

या देवनागरी में मूल पाठ और उसका हिन्दी गद्य में अनुवाद इस पुस्तक में दिया गया है। पुस्तक में असमी-साहित्य और कवि विषयक परिचय बड़े विस्तार से दिया गया है। इससे पुस्तक अधिक उपयोगी हुई है। छपाई-सफाई की दृष्टि से भी पुस्तक उत्तम है।

कवियत्री-माला—नलिनीबाला देवी[1]—उपरिवर्णित पुस्तक की तरह ही इसमें असमी की कवयित्री नलिनीबाला देवी की कुल पन्द्रह कविताएं अपने मूल रूप में देवनागरी लिपि में मुद्रित हुई हैं एवं उनके साथ-साथ दाईं ओर उसका अनुवाद हिन्दी गद्य में दिया गया है। *साथ ही भूमिका भाग असमी साहित्य (सन् 1826 से आज तक)* और कवयित्री का आवश्यक परिचय विस्तार से दिया गया। इस संग्रह में नलिनीबाला देवी की प्रतिनिधि कविताएं आ गई हैं।

बरगीत[2] (शंकरदेव कृत)—असम में वैष्णव मत के प्रवर्तक महापुरुष शंकरदेव की ब्रजावली में रचित पुस्तक 'बरगीत' के इस संकलन में मूल पाठ और उसकी व्याख्या प्रथम असमी लिपि में तदुपरान्त मूलपाठ देवनागरी लिपि और व्याख्या हिन्दी में एवं उसके पश्चात् मूलपाठ रोमन लिपि और व्याख्या अंग्रेजी में दी गई है। *इस प्रकार यह त्रिभाषी पुस्तक बनी है। इसमें शंकरदेव के सभी बरगीत (कुल 34)* आ गए हैं। हिन्दी में प्रकाशित बरगीत की यही प्रथम पूर्णकृति है।

भाषानाटक-संग्रह[3]—माताप्रसाद गुप्त के प्रधान सम्पादकत्व में जगदीशचन्द्र माथुर एवं दशरथ ओझा द्वारा सम्पादित इस बृहदाकार ग्रन्थ में मध्यकालीन असमी वैष्णव भक्तों—शंकरदेव, माधवदेव, गोपालद्विज, रामचरण ठाकुर, दैत्यारि ठाकुर और गोपालदेव के कुल बाईस अंकिया नाटकों को देवनागरी में लिप्यंतरित कर सम्पादित किया गया है। इनके अतिरिक्त इसमें उड़ीसा, नेपाल, मिथिला इत्यादि में लिखे गए *कतिपय नाटक भी समन्वित हैं। 'पाठकों के लिए संकेत' शीर्षक के अन्तर्गत लिप्यंतरित-*सम्पादित करते समय किए गए परिवर्तनों को स्पष्ट भी कर दिया गया है। एकत्र सम्पादित करने के लिए सम्पादकों की युक्ति है कि 'जिन भाषा शास्त्रियों ने इन नाटकों की भाषा के विषय में विचार प्रकट किए हैं उनमें से किसी ने भी निश्चित रूप से इनकी भाषा को किसी प्रदेश विशेष की वर्तमान भाषा की मान्यता नहीं दी है। दूसरा कारण यह कि जिन दिनों ये नाटक रचे गये थे उन दिनों 'बंगला', 'मैथिली', 'हिन्दी' इत्यादि वर्तमान नामों का प्रचलन ही नहीं हुआ था। × × × इस देशी भाषा का तत्कालीन रूप अन्तर-क्षेत्रीय था, वर्तमान हिन्दी-बंगला, असमिया की तरह क्षेत्रीय नहीं।" इसी-लिए इन नाटकों की भाषा को 'देशी भाषा' अथवा केवल 'भाषा' कहा गया है। यों, असम में इस भाषा का सर्वप्रचलित नाम ब्रजावली है। डॉ० दशरथ ओझा का मत है कि "हमारे देश में भाषा और साहित्य के इतिहास में ये भाषा नाटक उस एकसूत्री, व्यापक और सार्वदेशिक प्रवृत्ति की शृंखला के रूप में समादृत होने चाहिए जो पूरी होने से पहले ही छिन्न भिन्न हो गई। यदि वह पूरी हो जाती तो कौन जाने हमारे देश—विशेषतः उत्तरी भारत—की भाषा और साहित्य का एकीकृत स्वरूप कितना

---

1 वही।
2 बरगीत समूह—सम्पादक—हरिनारायणदत्त बरुवा, दत्तबरुवा कम्पनी, नलबारी, सन् 1965 ई०।
3 प्रधान सम्पादक—डॉ० माताप्रसाद गुप्त, के० एम० मुंशी इंस्टिट्यूट, आगरा, द्वारा सन् 1971 में प्रकाशित।

भग हो पाता।" नाटको के मूल पाठ के पूर्व इसमे एक सौ इकसठ पृष्ठों की विस्तृत भूमिका दी गई है जिसम उनसे सम्बन्धित विभिन्न आयामों पर विचार किया गया है। यों कालिराम मेधि कृत 'अंकावली' की भूमिका मे दी गई नाटककारो की जीवनियो का बिना तार्किक छान-बीन किए ही इसमे उनका अनुसरण किए जाने के कारण कई असंगतियाँ भी आ गई हैं। इसके बावजूद यह एक मानक कृति है, इसमे दो मत नही। हिन्दी के भण्डार म यह ग्रन्थ एक अमूल्य उपलब्धि है।

माधवदेव के नाटक[1]—प्रस्तुत पुस्तक पहले 'प्राच्य-भारती' माधवदेव-विशेषांक के रूप म प्रकाशित हुई थी। थोडे परिवर्तनो के पश्चात् उसे ही पुस्तक का रूप दिया गया। इसम महापुरुष माधवदेव द्वारा ब्रजावली मे लिखित सभी नाटको को हिन्दी पाठको की दृष्टि से देवनागरी म लिप्यंतरित कर मुद्रित किया गया है। इस सम्बन्ध में पुस्तक की भूमिका म स्पष्ट एव आवश्यक संकेत किए गए हैं। साथ ही भूमिका मे माधवदेव की जीवनी एव उनके सभी नाटको का परिचयात्मक विवरण भी दिया गया है। यह पुस्तक उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सन् 1975-76 मे पुरस्कृत भी की गई है।

रुक्मिणीहरण[2] (नाटक, शंकरदेव कृत)—शंकरदेव कृत 'रुक्मिणीहरण नाट' का यह देवनागरी लिपि म मुद्रित रूप है। प्रारम्भ में एतद्विषयक आवश्यक परिचय भी दिया गया है।

शंकरदेव के नाटक[3]—प्रस्तुत पुस्तक भी प्रथम 'प्राच्य भारती' के 'शंकरदेव विशेषांक' के रूप मे मुद्रित और प्रकाशित हुई थी। बाद मे, मूलपाठ के पूर्व छियालिस पृष्ठो की एक लम्बी भूमिका म शंकरदेव के नाटको पर सर्वांगीण विश्लेषण के साथ उनका पुस्तकाकार प्रकाशन किया गया है। सम्पादन और लिप्यंतरण सम्बन्धी आवश्यक संकेत भी कर दिए गए हैं जो पूर्वचर्चित 'माधवदेव के नाटक' के संकेतानुसार ही प्राय हैं। इसकी मौलिकता भूमिका भाग मे प्रतिपादित शंकरदेव के नाटक-विषयक विभिन्न विचारो म ही निहित है।

महापुरुष शंकरदेव . ब्रजबुलि-ग्रन्थावली[4]—इस ग्रन्थ में शंकरदेव की उन रचनाओ का एकत्र संकलन और सम्पादन किया गया है जिनकी भाषा ब्रजावली (सम्पादक के अनुसार, ब्रजबुलि) है। इस दृष्टि से इसमे उनके छह नाटको—पत्नी-प्रसाद, पारिजात-हरण, कालिदमन, केलिगोपाल, रुक्मिणी हरण और रामविजय, बरगीतो (कुल 34) एव दो भटिमाओ को इसमे स्थान मिला है। मूलपाठ के पूर्व एक लम्बी भूमिका रखी गई है, जिसम ब्रजबुलि भाषा और साहित्य, महापुरुष शंकरदेव एव उनके नाटको और गीतो पर सविस्तार विचार किया गया है। पूर्व मुद्रित एव प्रकाशित असमी ग्रन्थो के आधार पर ही इसके पाठ सम्पादित किए गए हैं। यों, भूमिका म लिखित शंकरदेव की जीवनी मे कई तथ्यात्मक भूलें हो गई हैं। इसके

---

1 सम्पादक—कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', प्राच्य भारती प्रकाशन, गुवाहाटी द्वारा दिसम्बर 1974 में प्रकाशित।

2 सम्पादक—ताराकान्त झा, प्राप्तिस्थान—फैंसी बाजार, अखबार घर, गुवाहाटी।

3 सम्पादक—कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', प्राच्य भारती प्रकाशन, गुवाहाटी द्वारा दिसम्बर 1975 में प्रकाशित।

4 डॉ० लक्ष्मीशंकर गुप्त द्वारा सम्पादित एव हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा, सन् 1975 ई० में प्रकाशित।

यह अनुवाद है। पहले यह अनुवाद 'राष्ट्रसेवक' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। जैसा कि नाम से ही विदित है इसमें श्री नीलमणि फुकन जी के साहित्य-कला विषयक विचारों को वाणी मिली है। अपने विषय की यह सर्वथा स्वच्छ और स्पष्ट रचना है। अनुवाद भी उत्तम है।

अध्यात्म जगत् की सैर—राधानाथ फुकन की अध्यात्म विषयक इस पुस्तक का श्रीमती निरुपमा फुकन ने हिन्दी में अनूदित कर स्वयं प्रकाशित भी कराया है। इसमें अध्यात्म और मानव-मन को शांति देनेवाले उदात्त विषयों का सरस, ललित एवं भावपूर्ण रूप में वर्णन किया गया है। अपने विषय की यह ख्यातिलब्ध पुस्तक है। अनुवाद प्रायः उत्तम ही कहा जाएगा।

असमिया साहित्य की रूप-रेखा—यह प्रदेश की भाषा से तो नहीं, पर प्रदेश की भाषा और उसके साहित्य के अधीत विद्वान डॉ० विरिंचिकुमार बरुवा की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ असामिज लिट्रेचर' नामक पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है। इसमें द्वितीय महासमर तक के असमी साहित्य का संक्षिप्त परिचय है। एक सौ छत्तीस पृष्ठों की इस लघु पुस्तिका में बड़े सटीक रूप में सम्पूर्ण असमी साहित्य का आवश्यक विवरण आ गया है। अनुवाद की भाषा बड़ी योग्य और सटीक है। यह सर्वोत्तम अनुवाद का उदाहरण माना जा सकता है। इसके अनुवादक कमलनारायण देव थे।

असमिया साहित्य—यह असम के प्रसिद्ध लेखक और भूतपूर्व संसद-सदस्य श्री हेम बरुआ की पुस्तक 'असामिज लिट्रेचर' का हिन्दी रूपान्तर है। तीन सौ दो पृष्ठों की इस पुस्तक में श्री बरुआ ने असमी-साहित्य की विकास-यात्रा को अपेक्षित विस्तार से निरूपित किया है।

लौहित्य और नीलाचल—यह पुस्तक भी श्री हेम बरुआ की प्रसिद्ध पुस्तक 'दि रेड रिवर ऐण्ड दि ब्लू हिल' का हिन्दी रूपान्तर है। प्रकाशकीय सूचना से विदित है कि इसके अधिकांश भाग के अनुवादक श्री सुरेन्द्रनाथ साहू हैं। इस पुस्तक में कुल सात अध्याय और चार परिशिष्ट हैं। यह पुस्तक अपने समग्र रूप में सम्पूर्ण असम एवं उसके निवासियों, इतिहास, भाषा, साहित्य इत्यादि का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।

शंकरदेव—महेश्वर नेओग की इसी नाम की पुस्तक का यह बांकेबिहारी भटनागर द्वारा किया गया हिन्दी रूपान्तर है। इसमें शंकरदेवकालीन पृष्ठभूमि, शंकरदेव की जीवनी, वैष्णव सम्प्रदाय, सामाजिक पुनर्गठन, वेदान्तिक विचारधारा, साहित्य इत्यादि का संक्षेप में आरेखन प्रस्तुत किया गया है।

लाचित बरफुकन—असम के प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ० सूर्यकुमार भूञा की पुस्तक का यह हिन्दी रूपान्तर है, इसमें लाचित बरफुकन की उपलब्ध जीवनी एवं प्रसिद्ध शराई घाटी के ऐतिहासिक युद्ध का प्रामाणिक विवरण है।

लाचित बरफुकन—असमी के प्रसिद्ध नाटककार प्रवीण फुकन के इसी नाम के नाटक का यह हिन्दी रूपान्तर है। इसका रूपान्तर छगनलाल जैन ने किया है। इसमें शराई घाटी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक युद्ध की मुख्य घटना को नाटक की कथावस्तु के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें न केवल लाचित बरफुकन की वीरता, बल्कि असम की सांस्कृतिक गरिमा को भी शब्द-बद्ध किया गया है।

माधुरी—पद्म कुमारी गोहाइ की कहानियों को अनुवाद कर शंकरलाल शर्मा

ने इस संग्रह को स्वयं प्रकाशित कराया था। इस संग्रह में उनकी प्रायः सभी प्रतिनिधि कहानियाँ तो हैं ही, यही असमी कहानियों का हिन्दी में अनूदित एवं प्रकाशित प्रथम संग्रह भी है।

प्रणिमा : असमिया कहानी विशेषांक—यह कोई पुस्तक नहीं, बल्कि शरद देवेश द्वारा सम्पादित 'प्रणिमा' का विशेषांक (नवम्बर-दिसम्बर, 1972 ई०) है जिसमें दामोदर जोयानी द्वारा असमी के बारह कहानीकारों की एक-एक कहानी और व्यंग्य रचना अनूदित होकर एकत्र प्रकाशित हुई हैं। साथ ही 'असमिया साहित्य में लघु कथा,' शीर्षक से अनुवादक का ही एक परिचयात्मक लेख भी है जिसे इसमें प्रकाशित कहानियों की भूमिका के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। चूँकि सभी कहानियाँ दामोदर जोयानी द्वारा ही अनूदित हैं, इसीलिए इसे विशेषांक नहीं एवं पुस्तकाकार ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

प्राचीन असमिया साहित्य-- असमी भाषाविद् डॉ० वाणीकान्त काकति की पुस्तक 'पुरनि असमीया साहित्य' का यह हिन्दी रूपान्तर है। इसके रूपान्तरकार नरनाथ भट्टाचार्य हैं। नाम से ही विदित है कि यह प्राचीन असमी साहित्य को ऐतिहासिक पद्धति पर ब्यौरेवार रूप में विवेचित करनेवाली पुस्तक है। श्री भट्टाचार्य ने अपने स्नातकोत्तर अध्ययन के एक विशेष पत्र के रूप में इसका अनुवाद प्रस्तुत किया था।

कपिली के आर-पार—असमी के प्रसिद्ध कवि और उपन्यासकार नवकान्त बरुआ के उपन्यास 'कपिलि पारिया साधु' का यह अनुवाद कपिली नदी के तटवर्ती निवासियों के जीवन के यथार्थ चित्रांकन के लिए प्रसिद्ध है। यथार्थता को कवि-मानस की भावुकता ने अधिक काव्यात्मक बनाया है। इसकी कथा की दुखात्मक परिणति तब होती है जब रूपै को अपने पिता धीरसिंह का श्राद्ध करने से रोक दिया जाता है। उस तभी यह भी ज्ञात होता है कि वह धीरसिंह का पुत्र नहीं, बल्कि कपिली की बाढ़ में बहकर आया हुआ व्यक्ति है। कपिली के तटवर्तियों का उक्त नदी से निरंतर संघर्ष चलता रहता है। इसमें उसी संघर्ष को सजीवता से उपस्थित करने में उपन्यासकार की सफलता निहित है।

मिरि बिटिया—रजनीकांत बरदलै के सामाजिक उपन्यास 'मिरि जीयरी' का यह अनुवाद युगजीत नवलपुरी ने किया है। इसमें मिरि समाज के आचार-विचार, रीति रिवाज का जंकि और पानेइ की प्रेम-कथा के माध्यम से स्पष्ट अंकन हो गया है। इस प्रेम-कथा की दुखात्मक परिणति उपन्यास में दिखाई गई है।

शतघ्नी—भारत पर चीनी आक्रमण की घटना पर आधारित बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य के इस उपन्यास को हिन्दी में अनूदित किया है आकाशवाणी के गुवाहाटी केन्द्र के निदेशक गोपालदास ने जो नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, से प्रकाशित है। अपने विषय पर यह केवल असमी में ही नहीं, कदाचित भारतीय भाषाओं में भी लिखा जानेवाला प्रथम उपन्यास है।

उपर्युक्त पुस्तकों पर गौर करने से स्पष्ट है कि (उपन्यास-8, साहित्येतिहास-3, जीवनी-2, कहानी-2, पुराणकथा-2, नाटक-1, साहित्यकला-1, अध्यात्म-1 और प्रान्त एवं प्रान्तीय संस्कृति-1) कुल इक्कीस पुस्तकें ही अनूदित-प्रकाशित हुई हैं। इनके अतिरिक्त श्री नवारुण वर्मा द्वारा अनूदित **'पितरों के हाड'** (नवकान्त बरुआ-कृत 'ककादेउतार हाड'), **'बादल छट गए'** (योगेशदास कृत 'डावर आरु नाइ') एवं

पटियाला तथा फूलवश के ग्रन्य राज्यो मे हिन्दी कवियो और विद्वानो को ग्रपरिमित प्रोत्साहन मिला। पटियाला दरबार म कई पीढियो तक निरन्तर कविया को ग्राश्रय मिलता रहा। इन ग्राश्रय-प्राप्त कविया म कुछ के नाम है—केशोदास, धर्मसिह, जतीदास, रामदास, बसन्तसिह (ऋतुराज), भगवानसिह, मूलासिह, राममिह, चन्द्रशेखर वाजपेयी, पतैराम, देवीदित्ता राय, उमादम (भवानीदास), बनारसीदास, रूपचन्द, कृष्ण कवि, निहालचन्द, वशी पडित, ईश्वर कवि, मन कवि, नन्द कवि ग्रादि।

कवि केशोदास रचित 'वार ग्रमरसिह' की स्वल्प चर्चा यहां समीचीन होगी। इस काव्य के रचयिता के जीवन के सम्बन्ध म विशेष सामग्री प्राप्त नही है, परन्तु 'वार ग्रमरसिह' की रचना का ग्रन्त साक्ष्य इस बात की पुष्टि करता है कि इसकी रचना पटियाला नरेश ग्रमरसिह के राजत्व-काल (सन 1765 80) मे हुई होगी। इस रचना की पृष्ठभूमि एक ऐतिहासिक प्रसग भटियाना के युद्ध (सन् 1766) से है। पटियाना राज्य के निर्माता महाराजा ग्रालासिह की मृत्यु के बाद उनका पौत्र ग्रमरसिह राजगद्दी पर बैठा। इस रचना म राजा ग्रमरसिह ग्रौर उनके पास के भट्टी मुसलमानो के शासन क्षेत्र भटियाना के मध्य युद्ध का वणन है। इस रचना से एक उदाहरण प्रस्तुत है

ग्रमरसिह चढ चलयो भूप।
ग्रत तेजवत मुन्दर सरूप॥
जहा वजयो दमामा घोर धार।
सब चढी सैन शास्तर सभार॥
स्वरन बरन ग्रर पति रग।
फहिरें धुजा निशान सग॥
मॅगल चलत तहा ग्रति प्रबत।
सम स्याम ग्रग उज्ज्वल मुदन॥
मुन्दर सधूर राजें सुभाल।
गज गाह घोर चुदा रमाल॥

मध्ययुगीन पजाब के हिन्दी साहित्य मे कुछ परम्पराए समानान्तर रूप से विकसित हुई। इन परम्पराग्रो म सबसे पुष्ट परम्परा सिख-गुरुग्रो तथा उनके शिष्यो की थी। गुरुग्रो तथा गुरु दरबार के कुछ ग्रन्य कवियो की रचनाग्रो का उल्लेख किया जा चुका है। गुरु गोविन्दसिह के पश्चात् ग्रनेक सिख कवियो ने ब्रजभाषा म गुरु-इतिहास लिखे। ब्रजभाषा मे गुरु इतिहास लिखने की परम्परा बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण तक ग्रबाध रूप से चलती रही।

ऐसे कवियो मे सर्वप्रथम उल्लेख सन्त सन्तरेण का किया जा सकता है। सन्तरेण उदासी सम्प्रदाय से सम्बन्धित सन्त थे, जिनका जन्म सन् 1741 मे हुग्रा था। इनके उपलब्ध ग्रन्था मे मन प्रबोध, पच परमेश्वर ग्रौर नानक विजय ग्रादि हैं। सन्तरेण ग्रन्थावली मे इन ग्रन्था का उल्लेख इस प्रकार किया हुग्रा है

मन प्रबोध ग्रन्थ सो प्रथम जानिए।
दुतिय नानक विजय ग्रन्थ पहिचानिए॥
तृतीय नानक बोध ग्रन्थ पहचान रे।
हा वचन सग्रह ग्रन्थ सु चतुर्थ मान रे॥

(हिन्दू) धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करने वाले, चरित्र और नीति की शिक्षा देनेवाले तथा स्वदेश, स्वधर्म एवं संस्कृति का गौरव-भाव निर्माण करने वाले थे। स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी स्वतन्त्रानंद, आचार्य रामदेव, सत्यदेव परिव्राजक, भाई परमानंद, लाला देवराज, इन्द्र विद्यावाचस्पति, गुरादित्ता खन्ना, आचार्य विश्वबन्धु, महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती आदि लेखकों की रचनाओं ने हिन्दी में एक विशिष्ट निबन्ध-शैली का विकास किया।

साहित्यिक विषयों पर निबन्ध लिखने वालों में डॉ० इन्द्रनाथ मदान, डॉ० रमेश्पाल सैनी, डॉ० यश गुलाटी, गुरचरण सिंह मोंगिया, डॉ० वीरेन्द्र मेहदीरत्ता, डॉ० मनमोहन सहगल आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

हिन्दी समालोचना के क्षेत्र में पंजाब का विशेष योगदान नहीं है। इस क्षेत्र में ले-देकर एक ही नाम अखिल-हिन्दी स्तर का है—डॉ० इन्द्रनाथ मदान (जन्म 1910)। डॉ० मदान पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी के आदि प्राध्यापक कहे जाते हैं। अंग्रेजी पर भी समान अधिकार होने के कारण डॉ० मदान की गणना अभी भी उन गिने-चुने लेखकों में है जिन्होंने अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी के बारे में लिखा है। सन् 1939 में प्रकाशित 'माडर्न हिन्दी लिट्रेचर' इस प्रकार की प्रारंभिक पुस्तकों में है।

आधुनिक हिन्दी आलोचना को डॉ० मदान की महत्त्वपूर्ण देन उनकी आधुनिकता की अवधारणा और साहित्य को परखने का यह निकष है। वे आधुनिकता का एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं, जिसके मूल में वैज्ञानिक दृष्टि रहती है जो किसी सत्य को उसके अन्तिम या चरम रूप में स्वीकार नहीं करती। दूसरे शब्दों में यह 'प्रश्न-चिह्न की निरन्तरता है' और इसीलिए 'प्रक्रिया' है। आधुनिक की इस अवधारणा के आधार पर डॉ० मदान ने हिन्दी की समकालीन कविता, कहानी और उपन्यास का विधिवत् अध्ययन प्रस्तुत किया है। हिन्दी में आधुनिकता की चर्चा नई नहीं है, परन्तु आधुनिकता की अवधारणा का व्यापक अध्ययन, उसे विश्लेषित करने का सजग प्रयास और साहित्य के मूल्यांकन की दृष्टि से निकष रूप में उसके उपयोग की दृष्टि से डॉ० मदान का हिन्दी आलोचना को योगदान अद्वितीय है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता सभी विधाओं में लिखा है और साथ ही आलोचना के क्षेत्र में भी अपना दखल रखा है। इस क्षेत्र में उनका लगाव विशेष रूप से कहानी विधा को लेकर रहा है। अश्क की आलोचनाएं साहित्यिक आलोचनाएं कम, वैयक्तिक प्रतिक्रियाएं अधिक हैं। 'हिन्दी कहानी और फैशन' (सुरेन्द्र सिन्हा को दिया हुआ इंटरव्यू) और 'हिन्दी कहानी एक अन्तरंग परिचय' इस क्षेत्र की उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं।

देवेन्द्र इस्सर का नाम हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं में समान रूप से चर्चित है। पश्चिमी संसार में उभरी आधुनिक चिंतन-प्रवृत्तियों का उनका गहरा अध्ययन है। साहित्य के सन्दर्भ में इन चिन्तन-पद्धतियों को विश्लेषित और मूल्यांकित करने वाली उनकी पुस्तक 'साहित्य और आधुनिक युग-बोध' इस दृष्टि से उनकी महत्त्वपूर्ण कृति है।

डॉ० सत्यपाल चुघ की आलोचना का क्षेत्र हिन्दी का उपन्यास साहित्य है। 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि', 'अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि' उनकी

दय' जैसी पत्रिकाए बन्द हो गई हैं। हिन्दी पत्रकारिता मुख्य रूप से दो बडे सस्थानो (टाइम्स ऑफ इडिया और हिन्दुस्तान टाइम्स) मे सीमित हो गई है। देश के विभिन्न भागो से ऐसी अल्प साधनयुक्त, अव्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन होता रहता है जिन्हें आज 'लघु पत्रिका' कहा जाता है। ऐसी अधिकाश पत्रिकाए स्वल्प-जीवी होती है। पजाब मे भी ऐसी पत्रिकाओ का प्रकाशन होता रहता है आज भी 'साहित्य निर्झर' (चडीगढ) 'सौरभ' (पटियाला) जैसी पत्रिकाए निकल रही हैं। सरकारी पत्रिकाए ('जागृति', चडीगढ और 'पजाब सौरभ', पटियाला) साहित्यिक गतिविधियो के विकास एव प्रोत्साहन मे अपनी भूमिका का निर्वाह करती रहती हैं।

हिन्दी साहित्य को पजाब की देन एक और दृष्टि से भी अविस्मरणीय है आज देश मे हिन्दी का प्रकाशन व्यवसाय अग्रेजी को छोडकर अन्य किसी भी भारती भाषा से बडा है। इस व्यवसाय को आधुनिक व्यावसायिक स्तर पर स्थापित करने उसमे नये से नये प्रयोग करने, उसमे सुरुचि लाने और उसे व्यावसायिक सफलता ि बिन्दु तक ले जाने मे सबसे बडा योगदान पजाबी प्रकाशको का है।

विभाजन के पूर्व लाहौर मे राजपाल एण्ड सज और हिन्दी भवन आदि सस्थाओ ने हिन्दी पुस्तको के प्रकाशन का जो महत् काय प्रारम्भ किया था, व स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दिल्ली मे विशेष रूप से विकसित हुआ। आज दिल्ली हिन्द प्रकाशन व्यवसाय का सबसे प्रमुख केन्द्र है। राजपाल एण्ड सज, राजकमल प्रकाशन (प्रा० लि०), नेशनल पब्लिशिग हाउस, राधाकृष्ण प्रकाशन, उमेश प्रकाशन, पजाबी पुस्तक भण्डार, हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, स्टार पब्लिकेशन्स प्रा० लि०, आत्मा राम एण्ड सन्ज आदि अनेक प्रमुख प्रकाशन सस्थाओ के सचालक पजाबी हैं इलाहाबाद मे लोक भारती, नीलाभ प्रकाशन और रचना प्रकाशन की स्थिति भी ऐसी ही है।

12

हिन्दी साहित्य को जम्मू-कश्मीर की देन

डॉ० निज़ाम उद्दीन

अहिन्दी भाषी जम्मू-कश्मीर प्रदेश भारत का मणिमुकुट है। यहाँ के उत्तुंग हिमशिखर, निर्मल जल के निर्झर, चिनार-चीड़-देवदार की हरिताभ वृक्षावलियाँ, वैष्णो देवी और अमरनाथ के पाप-कलुषहारी दिव्य तीर्थस्थान चिरकाल से देश-विदेश के लोगों का मन आकृष्ट कर रहे हैं। अतः इस भू-स्वर्ग-प्रदेश का सम्बन्ध भारत के अन्य हिन्दी भाषी तथा हिन्दीतर प्रदेशों से शताब्दियों से अविच्छिन्न रहा है, (1) असंख्य साधु-सन्त भारत के विभिन्न स्थानों से तीर्थ-यात्रा करने यहाँ आते थे, चूँकि वे हिन्दी उर्दू या हिन्दुस्तानी में ही कश्मीरियों से बातें करते थे इसलिए कश्मीरी-भाषी लोग भी टूटी फूटी हिन्दी में उनसे बातचीत कर लेते थे। यही नहीं बल्कि साधु-सन्तों द्वारा गाए जानेवाले गीतों-पदों को (विशेषकर कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि के पदों-गीतों को) सुनकर गाते थे। फलस्वरूप कुछ भावुक और संवेदनशील व्यक्ति हिन्दी में तद्रूप भक्ति भावना-सिक्त पदों की रचना करने का अभ्यास करते थे। इस प्रकार यहाँ के लोगों का हिन्दी से सम्पर्क बना रहता था। (2) बहुत से प्रवासी लोग—विशेषकर व्यापारी लोग यहाँ आकर व्यापार करते और फिर बाद में यहीं बस जाते। उनका स्थानीय लोगों से मेलजोल बढ़ता रहता और इस मेलजोल तथा व्यापार का माध्यम अधिकतर हिन्दी ही रहता, इस कारण हिन्दी का यहाँ शनैः शनैः प्रचार भी किसी सीमा तक होता रहता। (3) असह्य भीषण शीत के प्रकोप के कारण कश्मीर के श्रमिक-मजदूर रोटी रोजी की तलाश में अन्य प्रदेशों में चले जाते क्योंकि कश्मीर में उन्हें शीतकाल में कोई कामधन्धा नहीं मिल पाता था। मैदानी प्रदेशों में पहुँचकर ये लोग काफी हिन्दी या हिन्दुस्तानी सीख लेते थे। उनके द्वारा कश्मीर में हिन्दी का प्रचार-व्यवहार किया जाता था। (4) कश्मीर प्राचीन काल में संस्कृत का अध्ययन-केन्द्र रहा। यहाँ शिवस्वामी, मंखक, बिल्हण, कल्हण, प्रवरसेन, भामह, वामन, उद्भट, रुद्रट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र आदि संस्कृत के महान आचार्य हुए हैं। उन्होंने संस्कृत का प्रचार तो किया साथ ही उनके माध्यम से दूसरे प्रान्त के लोगों ने ऐसे ज्ञानागार प्रदेश से बहुत कुछ सीखा। शंकराचार्य ने आकर कश्मीर में शैवमत के प्रचार को अधिकाधिक बल प्रदान किया। अनेक कश्मीरी पण्डित हरिद्वार, बनारस आदि तीर्थस्थानों पर जाते थे उनके माध्यम से यहाँ हिन्दी के प्रचार में काफी वृद्धि हुई। इन धार्मिक, व्यापारिक या आर्थिक कारणों से कश्मीर का सम्पर्क हिन्दी से बहुत पहले ही स्थापित हो चुका था। (5) इन प्रेरक स्रोतों के अतिरिक्त पर्यटन ने भी हिन्दी के व्यवहार में यहाँ काफी भाग लिया और हिन्दी

कविता में चुभता, खरा व्यंग्य भी दर्शनीय है। कवि के रूप में गंगादत्त 'विनोद' छन्द-बद्ध कविता के समर्थक ही अधिक हैं, अतः परम्परावादी हैं। प्रचार की दृष्टि से उन्होंने 'हिन्दी व्याकरण' नामक पुस्तक लिखी। 'ज्ञानदर्शन' और 'मनिमन्थन' गद्य-कृतियां हैं। 'मतिमथन' निबन्ध-संग्रह है, जिसमें छोटे-बड़े बीस निबन्ध संकलित हैं। जम्मू और कश्मीर की सांस्कृतिक दर्शन तथा साहित्य-सम्बन्धी अच्छी सामग्री यहां दी गई है। संस्कृत कवि चण्डीदास पर भी दो निबन्ध हैं। वेदों में डुग्गर, डोगरी-भाषा और साहित्य, कश्मीर का शैवदर्शन, कश्मीर का प्रत्यभिज्ञान, वितस्ता-माहात्म्य आदि निबन्ध अधिक ज्ञानवर्धक और अनुसन्धानात्मक हैं।

'चण्डीदास ग्रन्थावली' का उन्होंने अनुसंधानात्मक सम्पादन किया जिसमें राम-काव्य-कृष्णकाव्य एवं उमापार्वती, त्रिकुटा दरबारीय कन्या-विवाह, भगवान गदाधर आदि महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने चण्डीदास की 11 पाण्डुलिपियों को खोजकर विद्वत्तापूर्वक सम्पादित किया है।

'रघुनाथ गुणोदय—एक समीक्षा' उनका शोधग्रन्थ है। इसमें 'रघुनाथ गुणोदय' नामक संस्कृत महाकाव्य पर विस्तृत समीक्षा दी है। इस ग्रन्थ के मुख्य स्तम्भ हैं—कवि की प्रामाणिक जीवनी, काव्य-सम्बन्धी कथावस्तु, अलंकार, रस, छन्द, गुण रीति। इन्हीं के परिप्रेक्ष्य में विद्वान समीक्षक ने ग्रन्थ की शोधात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है।

हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से भी गंगादत्तजी ने काफी कार्य किया। 'कश्मीर पथ-प्रदर्शन' नाम से हिन्दी में एक अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद किया। पत्रिकाओं में अनेक हिन्दी लेख प्रकाशित हुए हैं। 'हिन्दी साहित्य मण्डल' जम्मू के प्रधान रहे और आजकल डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट जम्मू की कार्यकारिणी के सदस्य हैं। वर्षों से जम्मू-कश्मीर प्रदेश में हिन्दी-संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में शासकीय कालेजों में कार्यरत हैं।

चमनलाल सप्रू—(जन्म 1935), प्रो० चमनलाल सप्रू आजकल शासकीय महिला महाविद्यालय, श्रीनगर में हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं। उनकी मातृभाषा हिन्दी है। वह कश्मीर में कई एक शिक्षा संस्थाओं तथा सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। 'कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के संस्थापक सदस्य और मंत्री रहे हैं। जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सक्रिय सदस्य हैं। 'कश्यप' मासिक पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादक थे। कई एक पाठ्य पुस्तकों का भी इन्होंने सम्पादन किया है। 'कश्यप', 'योजना', 'शीराज़ा', 'साहित्य-संदेश', 'धर्ममार्ग' आदि में उनके लेख प्रकाशित हो चुके हैं। मौलिक रूप में अब तक उनका एक निबन्ध-संग्रह 'सन्तूर के स्वर' प्रकाशित हुआ है। इसमें लेखक ने अपने पूर्व प्रकाशित निबन्धों को पुस्तकाकार रूप प्रदान किया है। पुस्तक के आरम्भ में कश्मीर के इतिहास से सम्बन्धित दो निबन्ध हैं। शेष आठ निबन्ध आलोचनात्मक हैं जो सब के सब कश्मीरी साहित्य पर आधृत हैं। यह उनके 'सुन्दर कलात्मक और विचारगर्भित' लेखों का संग्रह है। "उनका ध्येय कश्मीरी संस्कृति को हिन्दी के सशक्त माध्यम द्वारा भारतीय जन-जीवन तक पहुंचाना रहा है। कश्मीर की इस सांस्कृतिक थाती की मधुर धड़कनों को 'सन्तूर के स्वर' में गूंथकर प्रो० महोदय ने विलक्षण विदग्धता का परिचय दिया है।" (प्रो० काशीनाथ दर) संगृहीत निबन्धों का अवलोकन करने से लेखक की सांस्कृतिक रुचि एवं राष्ट्रीय भावना स्पष्ट होती है। हिन्दी और कश्मीरी पर उनका समान अधिकार है।[1]

[1] निबन्ध-संग्रह जम्मू-कश्मीर कल्चर अकादेमी द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है।

जवाहरलाल हण्डू ने हिन्दी में अपना शोधप्रबन्ध प्रकाशित किया—'कश्मीरी तथा खड़ी बोली के लोक-गीतों का तुलनात्मक अध्ययन'। यह शोधग्रन्थ भारत सरकार द्वारा अहिन्दी-भाषी लेखक की कृति के रूप में पुरस्कृत भी हो चुका है। इस ग्रन्थ में लेखक ने खड़ी बोली के और कश्मीरी के विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। वैवाहिक गीतों की करुण-स्वर लहरी अत्यन्त मार्मिक और पाठकों को करुणार्द्र करने वाली है। विद्वान लेखक ने गीतों की परम्परा, गीतों के विभिन्न रूप, गीतों में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भावना आदि दृष्टियों से इस ग्रन्थ में पर्यवेक्षण किया है। जवाहरलाल हण्डू कश्मीरी-भाषी हैं और उनका यह शोधग्रन्थ श्रमसाध्य है।

जवाहरलाल रैणा ने दो पुस्तकों का संपादन किया, (1) 'चौराहे पर खड़े बारह चेहरे', इसमें जम्मू के 12 कवियों की कविताओं को संगृहीत किया गया है। सभी चेहरे जाने-पहचाने हैं। जवाहर रैणा निर्मल विनोदी जैसे नये उदीयमान कवि भी सम्मिलित हैं। सुभाष भारद्वाज को संग्रह में प्रथम स्थान दिया गया है, क्योंकि वही नई कविता के प्रथम हस्ताक्षर हैं (जम्मू में)। इस संग्रह से ज्ञात होता है कि जम्मू के कविगण अपने क्षेत्र—जम्मू में कितनी गहरी अनुभूति के साथ काव्य-सर्जन में संलग्न हैं। (2) 'प्रिज्मों में बटी किरणें' के जवाहरलाल रैणा सहयोगी संपादक हैं। यह एक कहानी संग्रह है जिसमें जम्मू के स्थानीय कहानीकारों को स्थान दिया गया है।

जवाहर कौल दिल्ली में 'दिनमान' के सम्पादक मण्डल में शामिल हैं और हिन्दी-सेवा में कार्यरत हैं।

जियालाल हण्डू ने यों तो निबन्ध-व्याकरण पर छात्रोपयोगी कई पुस्तकें लिखीं लेकिन उनका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—'कश्मीरी और हिन्दी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन'। यह एक शोधग्रन्थ है। इसपर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से लेखक को पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई। इसमें लेखक ने सन् 1300 से सन् 1925 के सूफीकाव्य का ही समावेश किया है। आरम्भ में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का विवेचन है, तदुपरान्त सूफीमत पर विचार-विमर्श किया गया है, फिर कश्मीर में सूफियों के आगमन और कश्मीर तथा भारत में सूफी-सम्प्रदाय, सूफी केन्द्र, सूफी सिद्धान्तों की दार्शनिक पृष्ठभूमि का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया है। सूफी प्रबन्धकाव्यों, मुक्तकाव्यों पर पृथक्-पृथक् विवेचना की गई है। कश्मीरी और हिन्दी के सूफी प्रबन्धकारों और मुक्तककारों का विशद परिचय दिया है। "साम्य और वैषम्य के मौलिक कारणों के प्रस्तुतीकरण के समय विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए पूर्ववर्ती प्रभाव तथा साधनापद्धति के सादृश्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण को भी विशेष रूप में प्रस्तुत किया गया है। पारस्परिक देन और उनके मूलभूत कारणों को इसमें यथानुकूल ढंग से उद्भासित किया गया है। यह एक मनोरंजक तथ्य है कि जब हिन्दी में सूफी प्रबन्ध काव्य का प्रवाह बहुत कुछ क्षीण हो गया था, कश्मीर में सूफी प्रबन्ध काव्य उसी समय जन्म ले रहा था।" यह ग्रन्थ प्रेमाश्रयी शाखा के शोधकर्ताओं, जिज्ञासुओं के लिए अत्यधिक उपादेय है। लेखक ने जहाँ-तहाँ कश्मीरी कविताओं के उद्धरण दिए हैं साथ ही उनका हिन्दी भावार्थ भी दे दिया है जिससे पाठकों को कश्मीरी कविता की मूल भावना को समझने में सुविधा रहे।

ज्योतीश्वर पथिक—(जन्म 1940) उनका 'रत्नभून' नामक कविता-संग्रह

प्रकाशित हो चुका है। डोगरी-भाषी पथिक मूलतः शृंगारी कवि हैं। उनकी कविता में कहीं-कहीं नैराश्य भावना भी विद्यमान है। या कविताएं बहुत मार्मिक और सुन्दर हैं। उनकी कविता उर्दू से प्रभावित है। उनका यथार्थवादी चित्रण प्रभावशाली होता है। जो उन्हें कवि मानने से इन्कार करता है उससे उन्हें बहुत कुढ़न होती है। हो सकता है यह कवि की हीनता या कुण्ठित भावना की उपज हो। कवि के नव गीत बहुत प्रशस्य हुए हैं।

दीदार सिंह—उनका 18 कहानियों का संग्रह 'धुंधलके' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इन सभी को कहानी की संज्ञा देना कहां तक उचित है, यह एक विचारणीय प्रश्न है और विवादास्पद भी हो सकता है। 'सूनी-सूनी हर जगह' जैसी रचनाएं भाव-प्रधान ललित निबन्धों की कोटि में रखी जा सकती हैं। ऐसे लेखक का फलक बहुत व्यापक और विविधतापूर्ण है। जीवन के भौतिक अभाव, मानसिक प्रतिक्रियाओं का लेखा-जोखा उनकी कहानियों में प्रस्तुत है। सामान्य-सी बात को हृदयस्पर्शी मोड़ पर खड़ा करना इन कहानियों की विशेषता है। उनकी नारियां परिवेश से विद्रोह नहीं कर पाती, छटपटाकर समायोजन कर लेती हैं। (शीराज़ा, मार्च 74, पृ० 80)।

नरेन्द्र खजूरिया—(1933-1971) स्व० नरेन्द्र खजूरिया 36 वर्ष की भरी जवानी में देखते-देखते चल बसे। यह प्रमुख रूप से डोगरी कहानीकार माने जाते हैं। डोगरी साहित्यकार—कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार के रूप में उनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने डोगरी कहानी में डुग्गर प्रदेश की संस्कृति को सबसे अधिक उजागर किया है। उनका बड़ा गुण था हास्य-व्यंग्य। नरेन्द्र ने क्या-क्या नहीं सहन किया—क्या नहीं भोगा जीवन में! शुरू में दुकानों पर सिगरेट सप्लाई, मिलिटरी कैंटीन में 90 रु० मासिक वेतन पर sales boyship, इसके बाद 50 रु० मासिक की मास्टरी और अन्त में चलकर 'शीराज़ा' त्रैमासिक के सम्पादक। उन्होंने लगभग दस वर्षों तक 'शीराज़ा' का सम्पादन सुयोग्यता एवं कुशलता से किया। हिन्दी में उनके तीन ग्रन्थ प्रकाशित हुए

1. रास्ता, कांटे और हाथ (नाटक)
2. रास्ते में (कहानी-संग्रह)
3. सात एकांकी (एकांकी संग्रह)

'रास्ता, कांटे और हाथ'—यह तीन अंकों का नाटक है। इसमें समाज का यथार्थवादी चित्रण किया है। लोभ लोलुप मनोरथराम गांववालों से कम मूल्य पर शुद्ध घी खरीदकर, उसमें मिलावट करके अधिक मूल्य पर बेचता है। उसे गांव वालों की प्रगति में, उनकी शिक्षा में अपनी बड़ी हानि मालूम पड़ती है—"सब लोगों के बच्चे पढ़ जाएंगे तो दूसरे काम कौन करेगा?" रामसेवक (नौकर) कर्तव्य-सजग है। मनोरथराम का छोटा बेटा ज्ञान अधिक समझदार मालूम होता है, वह अपने गांव को उन्नत देखना चाहता है। रसिया अपने बाप के काले करतूतों में बराबर का साथी रहता है, जबकि ज्ञान उस काले धन्धे से दूर रहता है। रसिया तो इतना पतित है कि वह पाखण्डी साधू स्वामी के निर्देशित मार्ग पर चलकर खूब मिलावट का धन्धा करता है और अपने भाई की मंगेतर गंगा पर भी बुरी दृष्टि डालने से नहीं चूकता। गंगा, अनाथ बालिका, इसी घर में पालित पोषित की गई, जवान हुई। उसमें त्याग की भावना और गांव की उन्नति की इतनी अधिक उत्कण्ठा

है कि वह अपनी स्वर्गीय माताजी की आभूषण-सम्पदा गांव के सरपंच को गांव की उन्नति हेतु दे देती है ताकि उसकी स्व० माता की आत्मा किंचित् तो शांति प्राप्त कर सके। लेखक ने मनोरथराम और स्वामी को मिलावट के धन्धे में जेल भिजवाया। इससे स्पष्ट होता है कि लेखक समाजोन्नति के लिए एक स्वस्थ वातावरण व शासन का हिमायती है। "मन की घुटन और कुण्ठाओं ने कहानियों, नाटकों के रूप में निकास पाया। अपने आंचलिक रीतिरिवाज जो वर्तमान की प्रगतिशील और स्वस्थ वायु के अभाव में अभी प्राचीन घुटन में तड़प रहे थे, प्रकाश में आए। नरेन्द्र की लेखनी ने उपेक्षिता और पद-दलिता डोगरी नारी की व्यथा को वाणी प्रदान की। उसको भेड़-बकरी और निरीह गाय की स्थिति से उठाकर अपने पांवों पर खड़ा होने की हिम्मत प्रदान की।' (शीराज़ा, मार्च 72, सम्पादकीय)

नरेन्द्र खजूरिया ने डोगरी में प्रेमचन्द और टालस्टाय के मार्ग को ही आगे बढ़ाया और डोगरी भाषा की गोद भरी। उनके 'नीला अम्बर काले बादल' (प्रकाशित 1968) पर सन् 1971 को मरणोपरान्त साहित्य अकादेमी ने पुरस्कृत किया। इस अल्पजीवी साहित्यकार ने अपनी हिन्दी रचनाओं के द्वारा, 'शीराज़ा' के सम्पादन द्वारा जम्मू-कश्मीर में हिन्दी को अच्छे प्रचार-प्रसार में योग दिया।

निर्मल विनोद (जन्म 1950)—निर्मल विनोद डोगरी-भाषी हैं। हिन्दी में उन्होंने छठे दशक में लिखना शुरू किया। पारिवारिक वातावरण आर्यसमाजी है। उनमें राष्ट्रीयता की भावना अधिक प्रखर है। उनका 'पत्थरों का दरिया' कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका है। कवि ने यह पुस्तक स्व० दुष्यन्त कुमार की स्मृति में समर्पित की है। कविताओं में मोहक संगीत का माधुर्य है। नये बिम्बों के द्वारा उन्होंने आधुनिक युग-बोध को चित्रित किया है। कवि की रोमाण्टिक और यथार्थवादी देशभक्ति की प्रबल भावना के स्वर आकर्षक हैं। उर्दू गजल के प्रति कवि में बहुत अधिक मोह है उर्दू शब्दावली का भी अधिक प्रयोग है। छन्दमुक्त शैली में उन्होंने सजीव गीतों का सृजन किया है। वर्तमान पीढ़ी की निराशा, विवशता, कुण्ठा सभी को उन्होंने प्रकट करने का प्रयास किया है।

निर्मला दर का उपन्यास 'निर्झरिणी और पत्थर' एक सामाजिक उपन्यास है। भले ही यह लेखिका की प्रथम कृति हो लेकिन इसकी भाषा शुद्ध और परिष्कृत है। कथानक को बिना किसी बिखराव के और व्यवस्थितरूप में प्रस्तुत किया है। घटनाएं और दूसरे प्रसंग प्रतिपाद्य को सुस्पष्ट रूप देने में सहायक हुए हैं। यह कृति केन्द्रीय सरकार द्वारा अहिन्दी भाषी प्रान्त के हिन्दी लेखक योजना के अन्तर्गत पुरस्कृत की जा चुकी है। लेखिका कश्मीरी भाषी है।

बन्सीलाल सूरी—स्व० बन्सीलाल सूरी डोगरी-भाषी लेखक थे। उनका कवि-हृदय राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत था। वेदान्त, उपनिषद् का भी प्रभाव उनपर काफी था। आधुनिक समस्याओं को, विशेषकर सामाजिक विडम्बनाओं को अधिक जागरूकता तथा नवीन उत्तेजना के साथ स्वर प्रदान किए हैं। उनके नए प्रयोग, नये बिम्ब प्रभावशाली थे।

मोहनकृष्ण दर—उन्होंने कई एक पुस्तकें रची हैं, 'केसर के फूल', (कहानी-संग्रह), 'चिनार के पत्ते (कश्मीरी लोक-कथाएं), 'सूखे पत्ते', (कहानी-संग्रह), 'महान आत्मा (निबन्ध-संग्रह), मनोरम कश्मीर। मोहनकृष्ण दर का कश्मीर की धरती से

बहुत प्रेम है। वह मानो कश्मीर की संस्कृति को अपनी कृतियों के द्वारा उजागर करना चाहते हैं। उनका 'मनोरम कश्मीर' एक ऐसी पुस्तक है जिसमें कश्मीरी लोगों का रहन-सहन, कश्मीर का इतिहास, कश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य, कश्मीर के प्राचीन स्मारक-चिह्न, यहां का संगीत-नृत्यकला, कश्मीर के तीर्थस्थान आदि का विशद चित्रण किया है। कश्मीर के दर्शनीय स्थानों, यहां के सुन्दर मौसम सभी का अच्छा चित्रण किया है। यह पुस्तक जनसाधारण को, विशेषकर पर्यटकों को अधिक उपयोगी सामग्री प्रदान करेगी। लेखक ने कश्मीर की प्रकृति, दर्शन, कला और साहित्य को एक स्थान पर एकत्रित किया है।

मोहन निराश—(जन्म 1934) मोहन निराश कश्मीरी-भाषी हैं, कश्मीरी में न लिखकर हिन्दी में लिखते हैं। कश्मीरी में वह सुन्दर अनुवाद करते रहते हैं। रेडियो कश्मीर, श्रीनगर में वर्षों से कार्य करते हैं। उन्होंने पत्रिकाओं में अपने को कवि के रूप में स्थापित किया। पहले छन्दबद्ध कविता करते थे और अपने मधुर गीतों को सस्वर गाकर श्रोताओं को मुग्ध कर लेते थे। बाद में नई कविता की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने अभी तक पुस्तकाकार रूप में अपनी एक ही पुस्तक प्रकाशित की है वह है 'कृष्ण मेरा पर्याय'। यह पुस्तक जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। हिन्दी-उर्दू संगम श्रीनगर द्वारा भी उन्हें सम्मानित किया गया। इसमें 35 रचनाएं संकलित हैं। मानवीय संवेदना को कवि ने पूर्ण तन्मयता के साथ मुखरित किया है। इन कविताओं में विविध शैलियों का प्रयोग है और है जीवन का नया उन्मेष, नया परिवेश और नई आस्था। "मानव को मानव रूप में देख उसकी कमजोरियों और इच्छाओं को उभारा है और नये प्रतीकों, नये प्रयोगों के माध्यम से कुछ उन स्थितियों को चित्रित किया है जो आज की प्रयोगवादी कविता-अकविता आदि की पहचान है।" (शीराज़ा, सितम्बर 1971, पृ० 58)। ये कविताएं उन कवियों और उनके समीक्षकों को करारा जवाब है जो विशेष प्रकार के शब्दों के प्रयोग को ही कवि-कौशल की पूर्णता मानते हैं। जो चौंकाने के लिए बुद्धि के बालों की फजीहत को ही कविता बनाकर प्रस्तुत करते हैं और उनको भी महज खून बरसाने के लिए सस्ती उत्तेजना उभारने वाले शब्द-विन्यास को ही दर्पपूर्वक कविता समझते हैं। इस कवि की भाषा वैचारिक रूप से निर्मल स्वच्छता प्राप्त करने में सफल हुई है। उसमें अचूक सम्प्रेषण शक्ति है, क्योंकि कवि के पास अपना कुछ है और उस कुछ में वह भीगा हुआ है। मोहन निराश 'दागदार जिन्दगी (के) रक्त बवंडर' के कवि हैं। इस जिन्दगी से उनका गहरा सरोकार है। (प्रकर, 1971, पृ० 16) वह कश्मीरी रूपों का हिन्दी में सुन्दर अनुवाद करते रहते हैं। कम लिखकर भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

मधुप शर्मा—(जन्म 1934) पृथ्वीनाथ शर्मा 'मधुप' कश्मीरी-भाषी हैं और वर्षों से कविता-मन्दिर में श्रद्धा-सुमन चढ़ाते आ रहे हैं। 'वे मुखर क्षण' नामक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। दूसरी इनकी पुस्तक है 'कवि श्रीमाला परमानन्द'। 'नीलजा' और 'गल्पसौरभ' का सम्पादन भी किया। 'कश्मीरी स्वयं शिक्षक' देवनागरी लिपि में कश्मीरी को सीखनेवालों के लिए सरल वाक्यों द्वारा अंकित किया गया है। उन्होंने जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी के आदेश से कश्मीरी लोकगीतों का पद्यमय अनुवाद 'वाणी वितस्ता की' के नाम से किया। मधुपजी एक ऐसे कवि हैं जो सीधे-एवं सहज रूप में अपने भावों को व्यक्त करते हैं, किसी प्रकार का वाग्जाल या शब्दा-

डम्बर उनके यहा देखने को नही मिलता । उनके गीतो मे गगीतात्मकता अधिक पाई जाती है । जीवन की घुटन, कुण्ठा, निराशा सभी उनकी कविताओ मे विद्यमान है । कश्मीरी लोकगीतो को विभिन्न दृष्टियो एव रूपो में सकलित कर उनका हिन्दी में अच्छा सरल और स्वाभाविक भावानुवाद प्रस्तुत किया है ।

मनसाराम चंचल— चचल की अब तक कई कृतिया प्रकाशित हो चुकी हैं—

1. अश्रुमाल, 2 सुषमा (कविता-सग्रह) 3. पजाब जीवन और साहित्य 4 भारतदर्शन, 5. महापुरुष (जीवनिया) 6 बालगीत (20 देशप्रेम के बालसुलभ गीतों का सग्रह) 7 किसीसे न कहना (कहानी-सग्रह) ।

चचलजी मुख्यत शृगारी कवि हैं । उनकी गज़लें और गीत प्रणय की तरलता से तरलित अत्यन्त भावपूर्ण हैं । उनके गीतो की प्रवाहशीलता, छन्दयोजना सजीव हैं ।

'पजाब : जीवन और साहित्य' मे पजाब प्रदेश की सम्पूर्ण झाकी—पजाब का इतिहास, लोकजीवन, प्रेमगाथाए, वीरता सभी कुछ का विशदता से चित्रण किया गया है। 'किसीसे न कहना' उनकी कहानियो का सग्रह है । प्रत्येक कहानी रोचकता और सरसता को सजोती हुई स्थानीय वातावरण को प्रस्तुत करती है । कहानियो के पात्र इस प्रदेश (जम्मू) का प्रतिनिधित्व करते हुए जिन घटनाओ और समस्याओ के वाहन बनते हैं उनसे यह कहानिया मानव-समाज की हो जाती हैं जिनमे जीवन की विविधता पर प्रकाश पडता है। मामू-भीगे चावल, बीसवी सदी का राम, आत्मा का पुजारी, मीमात रक्षक आदि कहानिया सुन्दर बन पडी हैं ।

चचलजी ने दैनिक हिन्दी 'मिलाप', 'कश्मीर समाचार', 'डुग्गर समाचार' आदि पत्र-पत्रिकाओ का सम्पादन-कार्य भी किया । जम्मू प्रदेश मे हिन्दी प्रचारकों म उनका अपना एक विशेष स्थान है और उस प्रदेश के वह एक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं ।

रतनलाल शात—(जन्म 1938) अभी तक उनका एक ही कविता सग्रह 'छोटी किरणें' प्रकाशित हुआ है और अब उन्होंने हिन्दी के स्थान पर अपनी मातृभाषा कश्मीरी मे ही अधिक रुचिपूर्वक लिखना आरम्भ कर दिया है। वह समझते है कि हिन्दी में लिखने पर उन्हे वह स्थान प्राप्त नही हो सकता जो अपनी मातृभाषा कश्मीरी मे लिखने पर प्राप्त हो सकता है। शातजी आरम्भ से ही नई कविता की ओर झुके थे और उनकी 'छोटी किरणें' मे सकलित तथा बाद मे पत्रिकाओ मे प्रकाशित कविताओ मे नई कविता का रूप अधिक उभरता रहा है । उनके नये प्रयोग अन्य नये कवियों की भाति धूमिल एव अस्पष्ट हैं लेकिन कुछ कविताए स्तरीय तथा जीवत और मार्मिक अनुभूति व सवेदना से परिपूर्ण हैं। कवि कुण्ठा और निराशा के वातावरण से दो-चार होता भी नज़र आता है । शातजी शोध-कार्य मे रत हैं । और वर्षों से शासकीय कॉलेजो मे हिन्दी का अध्यापन सुयोग्यता से कर रहे हैं ।

रमेश मेहता—(जन्म सन् 1947) इन्होंने छठे दशक से रचनात्मक कार्य आरम्भ किया और अब तक मौलिक रूप मे एक कविता-सग्रह प्रकाशित किया है—'खुले कमरे बन्द द्वार' (1972)। इसमे कुल 32 कविताए सकलित हैं। इनमे कविवर के युवा-मानस ने तत्कालीन स्थितियो का अवगाहन कर युगचेतना का मुखरित किया है । परिणामत. इन कविताओ के मूल स्वर कुण्ठा और सत्रास के हैं। मोहभग की स्थितियो को उजागर करने के साथ व्यक्तित्व की सुरक्षा एव उसकी उपयोगिता तथा सार्थकता को लेकर जिन प्रश्नो ने कवि को कुरेदा है वही इन कविताओ मे वाणी पा गए हैं । "विभाजन

मे ग्रनास्था के रहने पर भी विमक्त मन स्थितियो के ढोने के लिए ग्रपने को विवश अनुभव करता हू क्योकि ग्रास्था ग्रनास्था, मिलन-बिछोह, सगत ग्रसगत के तनावपूर्ण क्षणो मे ही मेरा कवि या कहानीकार कुछ समझ पाने मे, कुछ कह पाने मे समर्थ होता है।" (प्रिज्मो मे बटी किरणें, पृ० 43)।

रमेश मेहता ने रचनात्मक कार्य ग्रधिक भले ही न किया हो लेकिन हिन्दी-प्रचार का कार्य ग्रधिक किया है। 'शीराजा' त्रैमासिक का सम्पादन सुयोग्यता स कर रहे हैं। 'सहस्रमुखी' शीर्षक से बन्सीलाल सूरी की कविताग्रो का सकलन प्रकाशित किया। इसके ग्रतिरिक्त 'प्रतिनिधि कहानिया : कश्मीरी' ग्रौर 'प्रतिनिधि कहानिया डोगरी' का भी सम्पादन किया। जम्मू प्रदेश मे उनका स्थान ग्रच्छे कवि के रूप म माना जाता है। कई साहित्यिक सस्याग्रो से सम्बद्ध होकर हिन्दी का प्रचार-कार्य रुचि-पूर्वक कर रहे है। ग्रपनी मातृभापा डोगरी मे लिखने की उनकी रुचि नही।

विद्यानाथ गुप्त— (जन्म 1923) डॉ० विद्यानाथ गुप्त जम्मू विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग मे रीडर हैं। उनकी ग्रब तक दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है, (1) मेरे गीत ग्रधूरे है। (2) हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना। "गुप्तजी कोमल भावनाग्रो के गीतिकार हैं। उनके गीतो म कल्पना का वैभव, भावो की सुकुमारता, सगीत की मधुरता मोहक हैं। 'पुनरपि' ग्रगीत के युग म कवि की यह गीतिका कई ग्रर्थों म सराहनीय है। कुछेक स्थलो पर बच्चन के गीतो जैसी रवानी इन गीतो मे झलक उठती है। पाच सात गीतो म प्राकृतिक सौन्दर्य, देशप्रेम, कृषक-जीवन, युग-परिवर्तन ग्रादि के स्वरो को झकृत किया है। फिर भी कलात्मक सौन्दर्य को निखारना, भावप्रकाशन मे तीव्रता, सघनता, ग्राकर्षण पैदा करना होगा। गीतो मे कवि का हृदय करुण चीत्कार करता है।" (सम्भावना (1-2) पृ० 103)।

डॉ० गुप्त ने ग्रपने शोध-ग्रन्थ मे राष्ट्रीयता के स्वरूप को काव्यरचनाग्रा म गहन एव सूक्ष्म दृष्टि से परखने का प्रयास किया है। प्राचीनकाल से लेकर ग्राधुनिक युग तक देशप्रेम की ग्रविरल प्रवहमान धारा को ग्रपने ग्रन्थ मे समेटने का प्रयास किया है। राजनीतिक ग्रान्दोलनो को भी विस्तार से स्पष्ट करते हुए उसकी पृष्ठभूमि में हिन्दी कविता का मूल्याकन किया है। लेखक गाधीजी की राजनीतिक विचारधारा के ऋण को हिन्दी साहित्य के लिए चिरस्मरणीय तथा उल्लेखनीय मानता है। राष्ट्रीय विचारधारा के परिप्रेक्ष्य मे हिन्दी काव्य का विवेचन सुन्दर बन पडा है।

वेद राही—वेद राही ने जम्मू कश्मीर सरकार के सूचना विभाग से प्रकाशित होनेवाली 'योजना' नामक पत्रिका को 1959 से 1960 तक कुशलता से सम्पादित किया, उसका 'सस्कृति विशेषाक' तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण निकला था। उन्होने फिर फिल्म-जगत म प्रवेश किया ग्रौर दो फिल्मे बनाई 'दरार' ग्रौर 'प्रेमपर्वत'। ग्राजकल बम्बई म रहकर ही फिल्मी जगत् म फिल्म निर्माण करते है। उनके तीन कहानी सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—1 सीमा का पत्थर (1962), 2 टूटते वृक्ष, नई पौध (1965) ग्रौर 3 दरार (1971)। 'दरार' नामक कहानी-सग्रह को जम्मू-कश्मीर कल्चरल ग्रकादेमी ने पुरस्कृत भी किया है।

दरार म कुल 9 कहानिया है ग्रौर जिस कहानी के ग्राधार पर इसका नाम-करण किया गया है, वह ग्रन्त मे रखी गई है। परन्तु वह एक सशक्त कहानी है ग्रौर यदि उसे पिछले दशक की सर्वश्रेष्ठ कहानियो म परिगणित किया जाए तो कोई ग्रत्युक्ति न

होगी। 'दरार' केवल इसलिए महत्त्वपूर्ण कहानी घोषित की जा सकती है कि युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई यह एक प्रामाणिक अनुभूति की कहानी है। वह पाठक पर स्थायी प्रभाव डालती है। इसमे मानव-चरित्र की जटिलता का सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है। कहानी की पृष्ठभूमि मे है 1965 का पाकिस्तानी आक्रमण। "दरार मे साधारण नागरिक पर, जो कि लडाई के मोर्चे से बिल्कुल करीब है, पडनेवाले युद्ध के प्रभाव का चित्रण किया गया है। यह प्रभाव आतक का प्रभाव है जिसे मूर्त करने मे लेखक को पूरी सफलता मिली है। सग्रह की बाकी कहानिया महानगरो के नागरिक जीवन की त्रासदिया हैं। 'हर रोज' मे पत्नी का महगाई से परेशानी तथा, 'खास-उल-खास' में नायक के शादी के चक्कर मे बाहर निकलने की व्याकुलता है। 'बर्फ' मे वर्तमान आर्थिक व्यवस्था का अभिशाप है। इन कहानियो मे जिन पात्रो के जीवन में त्रासदिया घटी हैं उनमे अधिकाश शराबी हैं। इन कहानियो मे जीवन अपनी वास्तविकता मे अत्यधिक प्रबल है।" (सचेतना, मार्च '71)

शशिशेखर—(जन्म सन् 1935) डॉ० शशिशेखर कश्मीरी-भाषी हैं और हिन्दी के प्रसिद्ध कवि है। उन्होंने कश्मीरी महाकाव्य 'बाणासुर कथा' को पी-एच० डी० के अध्ययन का विषय बनाया और उपाधि प्राप्त की। विद्वानों ने उनके परिश्रम को मुक्तकण्ठ से सराहा है। उनका यह शोध-प्रबन्ध अभी अप्रकाशित है। कविवर शशिशेखर का कविता-सग्रह 'थोडा-सा आकाश' नाम से कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है। शेखरजी को विद्यार्थी जीवन स कविता रचने मे रुचि थे। उन्होंने एक सवेदनशील कवि का हृदय प्राप्त किया। उनकी कविता में असन्तोष, आक्रोश, कुण्ठा, निराशा के स्वर अधिक प्रखर है। वह किसी भी पुरानी परम्परा से समझौता करने को तैयार नही हैं। उनका काव्य नवीन युगचेतना, यान्त्रिक सभ्यता और वैयक्तिकता के परिवेश म सयुक्त है। कवि की अहवादिता अति तक पहुच गई है, उसकी सारी वेदना कविता द्वारा निर्गत हुई है। इस सग्रह के 'आत्मवक्तव्य' मे कवि ने स्वीकार किया है कि वह अज्ञेय मे अत्यधिक प्रभावित हुआ है। कवि की धारणा है कि वैज्ञानिक सभ्यता ने मनुष्य को पशु बना दिया है। वह मशीन-वासना का क्रीतदास बन गया है। कवि को ऐसी सभ्यता से सख्त नफरत है। कवि निरन्तर असफलताओं और सघर्षों से खम ठोककर मुकाबला करने को तैयार है। शेखरजी की नई कविता अत्यधिक प्रभविष्णु है और उसमे अनेक अछूते बिम्बो की योजना की गई है। शिल्प एव प्रयोग की दृष्टि से शेखर कश्मीर के कवियो मे सिरमौर हैं।

उन्होने लल्लेश्वरी का सक्षिप्त जीवन-चरित लिखकर उनके 'वाखो' का हिन्दी म भावानुवाद प्रस्तुत किया है। उनका यह अनुवाद अत्यन्त सुन्दर और सर्वथा उचित है। 'कहा था ऋषि ने' नामक ग्रन्थ मे उन्होंने कश्मीर के सूफी सन्त शेख नूरुद्दीन वली के कश्मीरी पद्यो का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। ऐसे पद्यो का अनुवाद करते हुए शेखर ने कश्मीरी शब्दो को नि सकोच अपनाया है। शेखरजी कश्मीर की साहित्यिक गतिविधिया मे सक्रिय भाग लेते रहे हैं। उन्होंने 'योजना' के सम्पादन मे भी सहयोग दिया और 'कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के एक सदस्य रहे। उन्होने 'एक अपरिचित आकाश' के सम्पादन भी म सहयोग दिया।

शिबन कृष्ण रैणा—(जन्म 1942) डा० शिबनकृष्ण रैणा ने कश्मीर विश्व विद्यालय से सन् 1962 मे एम० ए० (हिन्दी) करके कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से

'कश्मीरी तथा हिन्दी कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन' विषय लेकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। श्रीनगर में उन्होंने कुछ समय तक 'प्रकाश' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया। डॉ० शिवनकृष्ण मूलतः हिन्दी अध्यापन में संलग्न हैं लेकिन उनका विशेष योगदान यह है कि कश्मीरी के श्रेष्ठ साहित्य को वह हिन्दी-संसार तक (अनुवाद के माध्यम से) पहुंचाने के लिए साधनारत हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकें ये हैं

(1) कश्मीरी भाषा और साहित्य (1972)। सम्भवतः यह पहली पुस्तक है जिसमें कश्मीरी भाषा और साहित्य को हिन्दी में अंकित किया गया है। ग्रन्थ के आरम्भ में कश्मीरी भाषा का सुस्पष्ट इतिहास प्रस्तुत किया गया है। कश्मीर का भौगोलिक परिवेश, आदिकाल (1250-1400) में लल्लद्यद और शेख नूर उद्दीन वली के दार्शनिक विचारों का सुन्दर वर्णन किया है। गीतिकाल में (1550-1750) हब्बाखातून आदि की शृंगारिक रचनाओं का वर्णन है। लेखक ने इस ग्रन्थ में वर्तमान कश्मीरी साहित्यकारों तक की कविताओं का सोदाहरण विवेचन किया है।

(2) 'प्रतिनिधि संकलन कश्मीरी,' यह पुस्तक ज्ञानपीठ, दिल्ली से सन् 1973 में प्रकाशित हुई। इस संकलन में सम्पादक ने कश्मीर के आधुनिक (1900 के बाद के) साहित्यकारों की रचनाओं का हिन्दी भाषान्तर दिया है। यहां कहानी, कविता, प्रहसन, व्यंग्य, रेखाचित्र तथा संस्मरण दिए गए हैं। अनुवाद इतना सुन्दर और भावपूर्ण है कि वह अपने में मौलिक-सा प्रतीत होता है, यों कहीं-कहीं कुछ हल्कापन रह गया है, विशेषकर कविताओं के अनुवाद में। लेकिन सम्पादक को अपने उद्देश्य में पूर्ण साफल्य प्राप्त हुआ है, उसने कश्मीरी आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं को हिन्दी माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिनका अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि कश्मीरी साहित्यकार प्रगतिशील है, गत्यात्मक है, जीवन की वर्तमान विसंगतियों में जीते हुए उनका चित्रण करते हैं। आज नई कविता का स्वरूप कश्मीरी कविता में भी समान रूप से अभिव्यंजित है।

(3) कश्मीरी रामायण—'रामावतार चरित' का हिन्दी में लिप्यन्तरण और अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस काव्य की भूमिका डॉ० कर्णसिंह ने लिखी है। कश्मीर की लोकप्रिय रामायण का भावानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण के साथ पहली बार किया गया है। कश्मीरी रामायण को सम्यक् रूप से हृदयगम करने के लिए इसका हिन्दी अनुवाद सहज, सरल और स्वाभाविक है। डॉ० रैणा का रचनात्मक कार्य अभी निर्बाध रूप से जारी है और निकट भविष्य में 'कश्मीर की श्रेष्ठ कहानियां', 'कश्मीर के श्रेष्ठ एकांकी', 'ललद्यद' (लल्लेश्वरी) आदि उनकी पुस्तकें आनेवाली हैं।

श्यामलाल शर्मा—डोगरी और हिन्दी में समान रूप से लिखनेवाले श्यामलाल शर्मा इस समय डोगरी शब्दकोश के सम्पादन में सहयोग दे रहे हैं। उन्होंने डोगरी में कई ग्रन्थों का सम्पादन किया है। हिन्दी में भी उन्होंने कई ग्रन्थ सम्पादित किए हैं यथा 'कश्मीरी लोककथाएं', डोगरी लोककथाएं', 'डोगरी काव्य-सुषमा', 'हमारा साहित्य' (1971-1972)। 'शीराजा' पत्रिका का भी उन्होंने (जून '71 से '73 तक) सम्पादन किया। उस समय उन्होंने 'शीराजा' के सम्पादकीय ज्ञानवर्धक लिखे हैं, साथ में देशानुराग की भावना से भी वे आप्यायित हैं। उन्होंने 'ब्रह्मवाणी' मासिक पत्रिका का 1965 में सम्पादन किया था जो लगभग एक वर्ष तक जारी रहा। मौलिक ग्रन्थों में उन्होंने 'प्रेमनाथ डोगरा : एक व्यक्तित्व' (जीवनी) हिन्दी में और डोगरी में 'त्रिवेणी'

(निबन्ध-संग्रह) तथा 'भगवत् दिया कथा' नामक ग्रन्थों की रचना की। जम्मू प्रदेश की सभी पत्रिकाओं में उनके लेख प्रकाशित हुए हैं। 'डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट निबन्धावली' का सम्पादन उन्होंने चार भागों में किया। यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। श्री श्यामलाल शर्मा साहित्य-साधना में निरन्तर गतिशील हैं।

डॉ० संसारचन्द्र—(जन्म 1917, मीरपुर, पाकिस्तान), डॉ० संसारचन्द्र आजकल जम्मू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हैं। उन्होंने कश्मीर, अम्बाला, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में अध्यापन का कार्य किया। 'काव्य में अन्योक्ति' और 'अलंकारों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' नामक ग्रन्थों पर उन्होंने क्रमशः पी-एच० डी० और डी० लिट्० की उपाधियाँ धारण कीं। अब तक उन्होंने 35 पुस्तकें हिन्दी, डोगरी, पंजाबी, संस्कृत में लिख चुके हैं। उनके कई एक ग्रन्थों को पंजाब, उत्तरप्रदेश, जम्मू-कश्मीर, हरियाणा, भारत सरकार की ओर से पुरस्कृत किया जा चुका है। आलोचना शोध, निबन्ध, हास्य-व्यंग्य, काव्यशास्त्र, व्याकरण, जीवनी सभी विधाओं में ग्रन्थों की रचना, उनका सम्पादन किया है। अब तक डॉ० संसारचन्द्रजी के सुयोग्य निर्देशन में 30 शोधकर्ताओं ने पी एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। सम्प्रति पी एच० डी० के साथ वह डी० लिट्० की उपाधि के लिए भी शोधार्थियों का सुयोग्य निर्देशन कर रहे हैं। उनके कुछेक मौलिक ग्रन्थों का संक्षिप्त आलोचनात्मक परिचय अपेक्षित है

1 'हिन्दी काव्य में अन्योक्ति' इस कृति में अन्योक्ति को अलंकार के अतिरिक्त सौन्दर्य का स्रोत मानते हुए उसकी प्रबन्धकाव्यों के लिए आध्यात्मिक एवं लौकिक आधार-रूप में व्याख्या की गई है। हिन्दी साहित्य के बृहत् परिप्रेक्ष्य में अन्योक्ति से सम्बद्ध महाकाव्य तथा मुक्तकादि साहित्य-रूपों का प्रामाणिक मूल्यांकन प्रथम बार इसी शोध-प्रबन्ध में किया गया है। अन्योक्ति के विविध कार्यक्षेत्रों का सूक्ष्म परिशीलन इस ग्रन्थ में हुआ है।

2 'साहित्य अनुभूति और विवेचन', यह 19 निबन्ध का एक मौलिक संग्रह है। इसमें भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक युग के छायावादी काव्य-युग तक के प्रसिद्ध काव्यकारों की कृतियों का मूल्यांकन किया गया है। जायसी, सूर, तुलसी, पंत तथा महादेवी के काव्यगत वैशिष्ट्य पर नये धरातल पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

3 'आकलन और समीक्षा', काव्य-शास्त्र और कविता के बदलते परिदृश्यों में सम्बन्धित निबन्धों को इसमें संकलित किया गया है। कबीर, बिहारी के काव्य पर गम्भीरता से चिन्तन, अलंकारों के मूल—उत्प्रेक्षा, अपह्नुति पर मौलिक चिन्तन, चीनी आक्रमण के समय हिन्दी कविता में नवीन जागरण के स्वर आदि इस संग्रह की विशेषताएँ हैं।

डॉ० संसारचन्द्र की हास्य व्यंग्य-प्रधान मौलिक कृतियाँ—(1) 'सटक सीताराम', इसके निबन्ध सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर आधारित हैं। समाज में फैले कदाचारों पर लेखक ने तीव्र व्यंग्याघात किया है। (2) 'अपनी डाली के काँटे', इसमें उन लोगों की कलई खोली गई है जो परोक्ष में चुगलखोर और प्रत्यक्ष में मधुर भाषी या दस्तर-खोर बने रहते हैं। चापलूस लोगों की दुनिया पर तीव्र व्यंग्य-विनोद-भरा यह संग्रह हिन्दी-साहित्य में लोकप्रिय हुआ है। (3) 'बातें यह झूठी

सुभाष भारद्वाज—पाचवें दशक के जम्मू के प्रसिद्ध कवि सुभाष भारद्वाज एक विद्रोही और वामपथी कवि के रूप मे काव्य-क्षितिज पर 'ताण्डव' (1960) के साथ उदित हुए। इसके साथ उनका 'रेत का सागर' कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। 'गद्याजलि' नाम से भी एक पुस्तक उन्होने प्रकाशित की। प्रो० सुभाष भारद्वाज नई कविता के सूत्रधार के रूप मे जम्मू मे प्रसिद्ध हैं। राजनीतिक व्यवस्था, समाजगत विषमता, आक्रोश, रोष के स्वर उनकी कविता मे अधिक प्रखर हैं। कवि जैसे वर्तमान व्यवस्था को समूल उखाडना चाहता है। कोकिल की मधुर कुहू मे कवि यही कुछ कहता सुनाई पडता है। विषम को ध्वस्त कर, राख बनाकर कवि सत्य-शिव-सुन्दर को उत्पन्न करना चाहता है। तन्द्रा, टूटी नींद, दर्पण, कागज की वेदना आदि प्रतीक उन्हे अधिक प्रिय है। वर्षो से प्रो० महोदय जम्मू प्रदेश मे हिन्दी-अध्यापन के साथ प्रचार-प्रसार में भी व्यस्त रहते हैं।

सत्यवती मलिक—(जन्म 1906) यो तो वह कश्मीरी-भाषी हैं, लेकिन अब काफी समय से दिल्ली मे रहती हैं। उन्होने हिन्दी मे कई कहानी-संग्रह रचे हैं। (1) दो फूल (2) वैसाख की रात (3) अमिट रेखाए। सत्यवती की कहानिया गृहस्थ-जीवन और वात्सल्य की मादकता से आपूरित है। उन्होने नारी-जीवन के विविध चित्र आकर्षक और मनोज्ञ रूप मे प्रस्तुत किए है। कहानिया पश्चिमी शैली से अधिक प्रभावित हैं।

प्रो० पुष्प—(जन्म 1917) कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान है। उन्होने यद्यपि मौलिक रूप मे कोई ग्रन्थ नहीं रचा। लेकिन हिन्दी प्रचार के कार्य मे उनका अपना विशेष योगदान रहा है। उन्होने जम्मू मे (अपने अध्यापन-काल मे) 'हिन्दी परिषद्' की स्थापना की। जम्मू मे उन्होने पहली बार कालेज पत्रिका मे हिन्दी रचनाओ को सकलित किया। श्रीनगर मे 'हिन्दी-संस्कृत मण्डल' की स्थापना की। सन् 1939 में 'चन्द्रोदय' और फिर 'महावीर दल' नामक पत्रिकाओ के प्रकाशन-सम्पादन मे सहयोग दिया। हिदी मे उन्होने 'जान-पहचान' एक प्राइमर लिखा तथा कई पुस्तकों का सम्पादन किया, जैसे (1) गद्याजलि, (2) पद्याजलि, (3) आधुनिक हिन्दी पद्य परिचय (4) हिन्दी पद्य प्रवेशिका, (5) हिन्दी गद्य प्रवेशिका। इनके अतिरिक्त उनके कई श्रेष्ठ शोधनिबन्ध विभिन्न ग्रन्थो मे सकलित किए गए हैं, मैथिलीशरण अभिनन्दन ग्रथ में 'कश्मीरी रामकथा', सम्मेलन पत्रिका के 'कला-संस्कृति' अक मे 'कश्मीरी लोकगीतों मे सांस्कृतिक अभिव्यक्ति', शकर कुरूप अभिनन्दन ग्रन्थ मे 'कश्मीरी कविता म लयात्मकता' नाम निबन्ध का मलयालम अनुवाद, चतुर्दश भाषा निबन्धावली मे 'कश्मीरी भाषा और साहित्य', हिन्दी साहित्य-कोश मे 'कश्मीरी'—ये सभी सन्दर्भ ग्रन्थ है और उनमे प्रकाशित प्रो० पुष्प के शोध निबन्ध उनका अविस्मरणीय योगदान है। यो उर्दू मे 'महजूर' और 'आजाद' पुस्तकें भी उन्होंने लिखी हैं।

हरिकृष्ण कौल—(जन्म 1934), प्रो० हरिकृष्ण कौल कश्मीरी भाषी प्रथम हिन्दी कहानीकार है जिन्हें हिन्दी कहानी जगत् मे एक स्थान प्राप्त है। उन्होने 'धर्मयुग', 'सारिका', साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', 'आजकल', 'नई कहानिया' आदि पत्रिकाओ मे अपनी मौलिक रचनाए प्रकाशित कर विशेष यश प्राप्त किया। अब तक मौलिक रूप मे उनका एक कहानी-संग्रह 'इस हमाम मे' प्रकाशित हुआ है, उस पर लेखक को भारत सरकार ने 500 रु० का पुरस्कार भी प्रदान किया था। 'इस संग्रह म 9 कहानिया

सगृहीत हैं। कथानक की दृष्टि से उन्हें यथार्थवादी एव प्रगतिवादी कहा जाएगा। शिल्प की दृष्टि से भी उनमें वैविध्य है। यहा यथार्थ और फंतासी का अच्छा मिश्रण है। उन्होंने अपनी रचनाओ मे अपने परिवेश को ही नही स्वय अपने-आपको भी समझने की कोशिश की है। कृत्रिम मुखौटो के नीचे छिपी हुई, उस समाज की कुत्सित वृत्तियो को अनावृत्त करने का प्रयत्न किया है, जो आपके चारो ओर है।" 'इस हमाम मे' नामक कहानी का तो कई भाषाओ मे अनुवाद भी हो चुका है।

उन्होंने कश्मीरी से हिन्दी में कुछ ग्रन्थो का अनुवाद भी किया; मोतीलाल क्यम् के प्रसिद्ध कश्मीरी नाटक 'छाया' का हिन्दी अनुवाद 'छाय' नाम से किया। कुछेक कश्मीरी कहानियो का भी हिन्दी-अनुवाद किया। 'हिन्दी गद्य गरिमा' पाठ्य पुस्तक का सपादन भी उन्होंने किया। उनका नया कहानी-सग्रह 'अगले दिन' शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

अर्जुन रैणा का कहानी-सग्रह 'केसर के फूल' प्रकाशित हो चुका है। इसमे कश्मीरी जन-जीवन की विभिन्न झाकियो को चित्ताकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। उनका यह सग्रह आचलिक साहित्य की उल्लेखनीय उपलब्धि माना जा सकता है। यहा न तो घटना है और न ही पात्रो का नाटकीय क्रियाकलाप। प्राकृतिक एव मानवीय सौन्दर्य प्रभविष्णु हैं। कश्मीर जीवन की पारदर्शिता इस सग्रह मे अवलोकनीय है।" (शीराजा, मार्च '74)

शकर शर्मा पिपासु—पिपासुजी के अब तक दो कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, (1) चाद, (1) सीमा का पछी। वह दोनों ही प्रकार की कविताए रचते हैं—छन्दोबद्ध रूप मे और मुक्तक छन्द में। उनकी कविता मे नया काव्य-कौशल और नवीन ओजस्विता है। कवि छायावाद से अधिक प्रभावित है—'तेरा नाम अमर हो मुझ से, मैं फिर तुझसे अमर बनू' तथा 'विरह तुम्हारा अमर गान है मिलन मौन अस्पन्दित सा।'

प्रेमनाथ दर (जन्म 1914) ने भी कई पुस्तकें लिखी हैं। (1) 'घर की बात', यह एक एकाकी-सग्रह है। इसके अतिरिक्त 'कागज के वासुदेव' और 'नीली आखें' नाम से दो उपन्यास भी लिखे हैं। 'घर की बात' पुरस्कृत हो चुका है।

विमला रैणा—'प्यासा पानी' (उपन्यास), 'बुझे दीप', 'हम तुम और वह' (कहानी-सग्रह), 'आहें और मुस्कान' (एकाकी-सग्रह) और 'तीन युग' नामक कृतिया प्रकाशित हो चुकी हैं।

जानकी नाथ कमल—(जन्म 1914) वेदान्त तथा कश्मीर शैव-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन इनका प्रिय विषय रहा है। अत उनकी कविता में अध्यात्मिकता का पुट मिलता है। वह सन् 1933 से कविता रचने मे रत हैं लेकिन आजतक उनका कोई कविता-सग्रह प्रकाशित नही हो सका; हा, पत्र-पत्रिकाओ मे अवश्य उनकी कविताए स्थान पाती रही हैं। हिन्दी, सस्कृत और अग्रेजी का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया है। पहले कश्मीरी मे भी लिखते थे और 'श्रद्धा-पोष' नाम से उनकी कश्मीरी कविताओं का सग्रह सन् 1942 में प्रकाशित हो चुका था। उनकी 'गायत्री मन्त्र भाष्य' नामक पुस्तिका हिन्दी मे प्रकाशित है। मूल गायत्री मन्त्र के साथ हिन्दी अनुवाद दिया गया है। अग्रेजी मे शैव दार्शनिक सन्तवर लक्ष्मण जू के दो भाषणो को सम्पादित किया है। हिन्दी मे उनका कविता-सग्रह 'विक्षिप्त वीणा' अभी तक अप्रकाशित है। इसमे कवि"

ने अपने जीवन के सुख-दुख-मिश्रित अनुभवों का चित्रण किया है।

बदरीनाथ कल्ला शास्त्री—बदरीनाथ शास्त्री कश्मीर में हिन्दी संस्कृत के प्रचारक हैं। वह कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन और कश्मीर साहित्य सम्मेलन से सम्बद्ध रहे हैं। उन्होंने 'मानस-दर्पण' नामक ग्रन्थ का संपादन किया जिसमें स्थानीय स्तर पर आयोजित मानस सेमिनार 1974 में पढ़े गए निबन्धों को संकलित किया गया है। 'प्रकाश', 'शीराजा', 'वितस्ता', 'कोशुर समाचार', 'युवक' आदि पत्रिकाओं में उन्होंने कश्मीर तथा कश्मीरी भाषा विषयक निबन्ध दिए हैं। कुछ निबन्ध इनके शोध-स्तर के हैं। सम्प्रति कश्मीरी भाषा शब्द-कोश के सम्पादन में सहयोग दे रहे हैं।

काशीनाथ दर—प्रो० काशीनाथ दर सुयोग्य प्राध्यापक और कुशल पत्रकार है। उन्होंने कई वर्षों तक 'कश्यप' नामक मासिक पत्रिका का संपादन किया। अब तक कई एक पाठ्य पुस्तकें संपादित कर चुके हैं। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पर उनका समान अधिकार है। हिन्दी में अब तक कोई मौलिक ग्रन्थ तो नहीं लिख सके, परन्तु हिन्दी में उनके लेख प्रकाशित हुए हैं। गतवर्ष अंग्रेजी में संस्कृत कवि क्षेमेन्द्र पर एक पुस्तिका लिखी थी जो एक अच्छा शोध-निबन्ध है। हब्बाखातून पर भी इसी प्रकार की शोधात्मक पुस्तिका अंग्रेजी में लिखने वाले हैं। प्रो० दर ने जरूर कम लिखा है लेकिन उन्होंने दूसरों को उंगली पकड़कर लिखना सिखाया, यही उनका स्मरणीय योगदान है। वह कई एक शिक्षा संस्थाओं तथा सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। जम्मू-कश्मीर *राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के आजकल उपप्रधान हैं।*

प० त्रिलोकीनाथ गंजू—(जन्म 1931) डॉ० गंजू ने 'कश्मीरी भाषा का उद्भव और विकास' शोध-प्रबन्ध पर कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर से *1975* में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। उनके शोध-प्रबन्ध की मूल मान्यताएं 'वितस्ता' (खण्ड 10, अंक 1) में प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने डॉ० ग्रियर्सन की मान्यता के विरुद्ध कश्मीरी को वैदिक संस्कृत से उत्पन्न बतलाया है और यह सिद्ध किया है कि आज भी कश्मीरी में बहुत-से वैदिक संस्कृत के शब्द प्राप्य हैं—कुछेक अपने मूल रूप में और कुछेक परिवर्तित रूप में। विद्वानों ने उनका यह कार्य काफी सराहा है। डॉ० गंजू ने 'प्रकाश', 'कश्यप', 'वितस्ता' में भी *कश्मीर के शैव दर्शन और कश्मीरी भाषा सम्बन्धी* लेख लिखे हैं। पुस्तक रूप में उनकी कोई मौलिक रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हुई। 'त्रिक आश्रम' से उनका सम्बन्ध है। 'भारतीय भाषा-विज्ञान की भूमिका' नामक ग्रन्थ में उन्होंने कश्मीरी भाषा का प्रतिनिधित्व किया।

डॉ० भूषण लाल कौल डी० लिट्० के कार्य में रत है। उन्होंने अब तक लगभग एक दर्जन शोध-निबन्ध लिखे हैं। महजूर पर वह साधिकार लिखते है। वह उनका पी-एच० डी० का विषय रहा है। इनकी भी अभी तक कोई मौलिक कृति प्रकाशित नहीं हुई।

केदारनाथ शर्मा—इन्होंने हिन्दी में कई एक पुस्तकें रची है, *1 सिन्धु-सभ्यता* का आदि केन्द्र हड़प्पा, 2 भारत की सांस्कृतिक परम्परा, 3 सिन्धु-सभ्यता और अथर्ववेद, 4 भारतीय पुरातत्त्व (भाग 1, 2)। इनके अतिरिक्त कोई आठ के लगभग भारत-दर्शन सम्बन्धी पुस्तकें रची हैं। इन स्थानों में अजन्ता, नालन्दा, आदि शामिल हैं। इन्होंने सोमदेव भट्ट के कथासरित्सागर का तीन भागों में हिन्दी अनुवाद किया है, परन्तु अप्रकाशित है। डोगरी में उनका निबन्ध-संग्रह 'निबन्धावली' प्रकाशित हो

चुका है।

मोतीलाल क्यमू मूलत: कश्मीरी नाटककार हैं। उनकी हिन्दी में भी 'तीन असत एकांकी' नामक नाट्य कृति प्रकाशित हो चुकी है। साहित्य अकादेमी (जम्मू-कश्मीर) ने उसे पुरस्कृत भी किया है। अवतार कृष्ण कौल ने 'सरहद और प्यार' लघुउपन्यास रचा है। दुर्जय छेवाग प्रथम लद्दाखी भाषी हैं जिन्होंने हिन्दी में एम० ए० किया और लद्दाखी लोकगीतों पर शोधकार्य कर रहे हैं तथा इस समय शासकीय डिग्री कॉलेज, सोपोर (कश्मीर) में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। जम्मू-कश्मीर से अभी तक किसी मुसलमान छात्र ने हिन्दी में एम० ए० नहीं किया, लेकिन निकट भविष्य में मुसलमान छात्र-छात्राएं हिन्दी में एम० ए० करने वाले हैं। अब मुसलमानों में भी जो प्रगतिशील विचार-धारा के व्यक्ति हैं वे हिन्दी के प्रति झुकते जा रहे हैं। जहां यह बात उत्साह-वर्धक है वहां दूसरी बात निराशाजनक यह है कि रतनलाल शांत, हरि कृष्ण कौल जैसे हिन्दी के अच्छे कवि और प्रसिद्ध कहानीकार हिंदी को छोड़कर कश्मीरी में रचनात्मक कार्य अधिक रुचि से कर रहे हैं। वे यह समझते हैं कि उनका भविष्य हिन्दी की अपेक्षा कश्मीरी में अधिक उज्ज्वल है। यों कश्मीरी है भी अभी अविकसित भाषा—यानी इसकी लिपि अवैज्ञानिक है, अभी तक उसका कोई टाइप तक नहीं बना। दूसरे उसका साहित्य भी अधिक सम्पन्न नहीं, एक प्रकार से अर्धविकसित ही है। डोगरी के मुकाबले में उसकी प्रगति अत्यधिक मंद है। यह बात ध्यातव्य है कि कश्मीर में गत एक दशक से कोई हिन्दी पत्रिका देखने को नहीं मिली। हिन्दी पत्रिका के अभाव में भी कश्मीर में हिन्दी के अधिक अनुकूल वातावरण तैयार नहीं हो सका। इसके विपरीत जम्मू में कई एक छोटी-बड़ी पत्रिकाएं वर्षों से निकलती रही हैं, भले ही वे अल्पजीवी रही हैं, परन्तु उनके माध्यम से जम्मू में कई एक अच्छे हिन्दी साहित्यकार उभरे हैं।

